जैनाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वर (श्रीआत्मारामजी) महाराज

जन्म संवत् १८९३ स्वर्गवास संवत् १९५३

ॐ

दोहा

वीर प्रभु गुरु आतमा, वल्लभ विजय उपदेश।
मंडलयह जारी हुआ, पुस्तक प्रचार उद्देश ॥

॥ ❋ सूचना ❋ ॥

विदित हो कि आजकल धार्मिक सामाजिक और देशोन्नति आदि सर्व प्रकार की उन्नतियों में सब से पहिले विद्या की जरूरत है और उस के प्रचार पहले पुस्तक प्रचार की आवश्यकता है बिना पुस्तकों के किसी प्रकार की विद्या का प्रचार नहीं होसका, खासकर जैन समाज की शीघ्र उन्नति न होने का यही कारण है कि पुस्तक प्रचार पर प्रबल लक्ष्य नहीं दिया जाता ? यदि कुछ ग्रन्थ छपे भी हैं तो वो दुगुनी लागत पर बिकते हैं, जिस से अन्य मतावलंबी क्या ! जैनी भी पासतक नहीं फटकते ? इतने दाम लावें कहां से ? जो एक के पांच देकर ग्रन्थ पढ़े ! हजारों ग़रीब भाई मौन धारजाते हैं और कीमत विशेष होने से लाभ नहीं उठा सकते ! और अमीरों को सिवाय धन बटोरने के फुरसत नहीं होती ? तो कहिये धर्मका प्रचार कहांसे होवे,बस ! भाईयों इस दशा को देखकर और महात्मा "श्रीमान् मुनि वल्लभविजय जी महाराज के उपदेश को सुनकर कुछ सज्जन पुरुषों से रहा न गया और तत्काल चन्दा करके "श्री-आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचार मंडल" इसी कमी को पूरा करने वास्ते स्थापित करदिया जिसका उद्देश यही रहेगा कि जो रुपया चन्दे में आया और आता रहेगा उस में से जैन ग्रन्थ छपाकर मंदी कीमत पर पबलिक की सेवा में भेट किये जावें और उसकी लागत आनेपर या फन्ड बढ़ने से, दूसरे ग्रन्थ प्रेस में छपने को भेजे जावें इसी प्रकार (यके बाद दीगरे) एक के बाद दूसरा सर्व साधारण के लाभ वास्ते प्रकाश करते रहेंगे जिससे अमीर ग़रीब सब भाई लाभ उठावेंगे, और अन्यमती भी मन्दी कीमत देखकर जैन सिद्धांतों का आनंद लेसकें इस मंडल के स्थापित होते ही जिन महाशयोंने दान देकर सदा के वास्ते श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचार मंडल को चिरायुः किया है उन दानी महाशयों को वारंवार धन्यवाद देने के अलावा उनके मुबारिक नाम और और रुपया दान धन्यवाद सहित पुस्तक के अंत में प्रकाशित किया गया है ॥

सब से पहले स्थापित होते ही इस मंडल ने यह ग्रंथ जो कि आपके हाथ में है जिस की प्रशंसा समस्त भारत में गुंजरही है प्रसिद्ध वकता स्वर्गवासी कलिकाल सर्वज्ञ समान जैनाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वर (श्री-आत्माराम जी) महाराज विरचित है विशेष मांग आने पर चतुर्थवार प्रकाशित कियागया है पहले इस ग्रन्थ की कांपीयां कम छपने और भाषा के बदलने आदि कारणों से लागत बहुत रही तिस पर भी इतनी मांग आई कि ग्रन्थ हाथोंहाथ बिकगया अब चतुर्थवार पहली लागत से भी आधी किमत पर रुपया १।) की जगह ॥=) में प्रकाशित कियागया है ॥

प्रूफ आदिके देखभाल का परिश्रम पण्डित न मिल ने से असिस्टेंट सक्रेटरी भाई टीकमचंदजी जौहरी दिल्ली निवासी ने उठाया जिसके वास्ते उनको धन्यवाद दिया जाता है और दृष्टि दोष से जो कोई अशुद्धि रहगई हो उसकी क्षमा चाहते हैं ॥ तथास्तु

श्रीआत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचार मंडल

दिल्ली (पंजाब)

श्रीवीर सम्वत् २४३५। श्रीआत्म सम्वत् १४। विक्रम सम्वत् १९६६ ई० सन् १९०९

❀ उपोद्घात ❀

नित्यानंदपद प्रयाण सरणी श्रेयोविभिः सारिणी।
संसारार्ण वतारणे कतरणी विश्वर्द्धि विस्तारिणी॥
पुण्यांकूरभर प्ररोहधरणी व्यामोह संहारिणी।
प्रीत्यस्ताजिनतेऽखिलार्त्ति हरणी मूर्त्तिमनो हारणी॥ १ ॥

अनंत ज्ञान दर्शन मय श्रीसिद्ध परमात्मा को तथा चार निक्षेपायुक्त श्री अरिहंत भगवंतको और शाश्वती अशाश्वती असख्य जिन प्रतिमाको त्रिकरण शुद्धि से नमस्कार करके इस ग्रन्थके प्रारंभ में मालूम किया जाता है कि प्रथम प्रश्नोत्तरमें लिखे मूजिब ढुंढक मत अढ़ाईसौ वर्ष से निकला है जिसमें अद्यापि पर्यंत कोई भी सम्यक्ज्ञावान् साधु अथवा श्रावक हुआ होवे ऐसे मालूम नहीं होता है, कहांसे होवे ? जैनशास्त्र से विरुद्ध मतमें सम्यक्ज्ञान होनेका संभवही नहीं है, उत्पत्ति समय में इस मतकी कदापि कितनेक वर्ष तक अच्छी स्थिति चली हो तो आश्चर्य नहीं परन्तु जैसे इन्द्र जालकी वस्तु घने काल तक नहीं रहती है तैसे इस कल्पित मतका भी घने वर्षसे दिन प्रति दिन क्षयहोता देखने में आता है, क्योंकि अनजानपन से इस मत में साधु अथवा श्रावक बने हुए घनेप्राणी जब जैन शास्त्र के सच्चे रहस्य के ज्ञाता होते हैं तो जैसे सर्प कांचलीको त्याग के चला जाता है ऐसे इस मत को त्याग देते हैं और जैनमत जो तपागच्छ में शुद्धरीति देश कालानुसार प्रवर्त्तता है उसको अंगीकार करते हैं, इसी प्रकार इस ग्रन्थ के कर्त्ता महामुनिराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी)महाराजभी जैन सिद्धांतको वांचकर ढूंढक मतको असत्य जान कर कितनेही साधुओ के साथ ढूंढक पंथको त्यागकर पूर्वोक्त शुद्ध जैनमत के अनुयायी बने, जिनके सदुपदेश से पंजाव मारवाड़ गुजरात आदि देशों में घने ढूंढियोंने ढुंढकमतको छोड़कर तपागच्छशुद्ध जैनमत अंगीकार किया है॥

तपागच्छ यह बनावटी नाम नहीं है परन्तु गुणनिष्पन्न है क्योंकि श्रीसुधर्मास्वामी से परंपरागत जैनमतके जो ६ नाम पड़े हैं उनमें से यह ६ छठा नाम है जिन ६ नामोंकी सविस्तर हकीकत तपागच्छ की पट्टावलि में है * जिस से मालूम होता है कि तपागच्छ नाम मूल शुद्ध परंपरागत है और ढुंढकमत विनागुरुके निकला हुआ परंपरा से विरुद्ध है॥

---

* देखो जैन तत्त्वा दर्शका बारहवा परिच्छेद।

इस ढूंढक मत में जेठमल नामा एक रिख साधु हुआ है उसने मदा कुमतिके प्रभावसे तथागाढ मिथ्यात्व के उदयसे स्वपर को अर्थात् रचनेवाले और उसपर श्रद्धा करनेवाले दोनोंको भव समुद्र में डुबोनेवाला समकितसार (शल्य) नामा ग्रन्थ १८६५ में बनाया था परन्तु वोह ग्रन्थ और ग्रन्थका कर्त्ता दोनोंही अप्रमाणक होनेसे कितनेक वर्षतक वोह ग्रन्थ जैसाका तैसाही पड़ा रहा, सम्वत् १९३८ में गोंडल (काठियावाड़) निवासी कोठारी नेमचंद हीराचंद अपनी दुर्गतिकी प्राप्ति में अन्यको साथी बनानेके वास्ते राजकोट (काठियावाड़) में छपाकर प्रसिद्ध किया ॥

पूर्वोक्त ग्रन्थके खण्डन रूप सम्यक्त्वशल्योद्धार नामा यह ग्रन्थ श्रीतपगच्छाचाय श्री १००८श्रीमद्विजयानंदसूरि प्रसिद्ध नाम श्रीआत्मारामजी महाराज ने सम्वत् १९४० में बनाया जिसको सम्वत् १९४१ में भावनगर (काठियावाड़) की श्रीजैनधर्म प्रसारक सभाने अहमदावादमें गुजराती बोली में और गुजराती ही अक्षरों में छपवाकर प्रसिद्ध किया, परन्तु पंजाव मारवाड़ादि अन्य देशों में उसका प्रचार न होनेसे वड़ौदास्टेटनिवासी परमधर्मी शेठ गोकल भाईने प्रयास लेकर शास्त्री अक्षरोंमें सम्वत् १९४३ में छपाकर जैसाका वैसाही प्रसिद्धकिया तथापि बोलीका फरक होने से अन्य देशों के प्रेमी भाइयोंको यथायोग्य लाभ नहीं मिला इसवास्ते शेठ गोकल भाई की खास प्रेरणा से श्रीआत्मानंद जैन सभा पंजाबकी आज्ञानुसार अपने प्रेमी शुद्ध जैनमताभिलाषी भाइयोंके लिये यथाशक्ति यथामति इस ग्रन्थ को सरल भाषा में छपवानेका साहस उठाया है, और उससे निश्चय होता है कि आप लोग इस ग्रन्थको सम्पूर्ण पढ़कर मेरे उत्साहकी वृद्धि जरूर ही करेंगे ॥

यद्यपि पूर्वे बहुत बुद्धिमान आचार्योंने इस ढूंढकमतका सविस्तर खण्डन पृथक्२ ग्रन्थोंमें लिखा है। श्रीसम्यक्त्वपरीक्षा नामक ग्रन्थ अनुमान दशहजार श्लोक प्रमाण है उसमें ढूंढकमती की बनाई ५८ बोलकी हुंडीका सविस्तर उत्तर दिया है। श्रीप्रवचनपरीक्षा नामा ग्रन्थ अनुमान वीस हजार श्लोक है उस में ढुंढकमत की उत्पत्ति सहित उनके किये प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं। श्रीमद् यशोविजयोपाध्याजीने लींबड़ी (काठीयावाड़) निवासी मेघजी दोसी जो ढूंढक थे उनके प्रतिबोध निमित्त श्रीवीरस्तुति रूप हुंडीस्तवन बनाया है। जिसका बालावबोध सूत्रपाठ सहित सविस्तर पण्डित शिरोमणि श्रीपद्मविजयजी महाराज ने बनाया है। जिसकी श्लोक संख्या अनुमान तीन हजार है उस में भी सम्पूर्ण प्रकार ढूंढकमत का ही खन्डन है। ढूंढकमत खण्डन नाटक इस नाम का ग्रन्थ गुजराती में छपा प्रसिद्ध है जिस में भी ३२ सूत्रों के पाठों से ढुंढक पक्षका हास्य रस युक्त खण्डन किया है ॥

इत्यादि अनेक ग्रन्थ ढुंढकमत के खण्डन विषयिक विद्यमान् हैं तो उसी मतलबके अन्य ग्रन्थ बनानेका वृथा प्रयास करना योग्य नहीं है ऐसा विचार के केवल समकितसार के कर्त्ता जेठमलकी स्वमति कल्पनाकी कुयुक्तियों के उत्तर लिखने वास्तेही ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ के बनानेका प्रयास किया है ॥

ढुंढियोंके साथ कई बार चर्चाहुई और ढुंढियोंको ही पराजय होती रही पण्डितवर्य्य श्रीवीरविजयजी के समय में श्रीराजनगर (अहमदाबाद) में सरकारी अदालत में विवाद हुआ था जिस में ढुंढिये हार गये थे इस विवादका सविस्तर वृत्तांत "ढुंढियानोरासड़ो" इस नाम से किताब छपी है उस में है। पूर्वोक्तचर्चाके समय समकित सार का कर्त्ता जेठमल भी हाजर था परन्तु पराजयकोटि में आकर वह भी पलायन कर गया था, इसतरह वारंवार निग्रह कोटि में आकर अपने हृदय में अपनी असत्यताको जानकर भी जिन दुर्मति कल्पना से कुयुक्तियों का संग्रह करके समकितसार जैसा ग्रन्थ बनाना यह केवल अपनी मूर्खताही प्रकट करनी है ॥

आधुनिक समय में भी कितनेही ठिकानें जैनी और ढुंढियोंकी चर्चा होती है वहां भी ढुंढिये निग्रहकोठि में आकर पराजयको ही प्राप्त होते हैं * तथापि अपने हठको नहीं छोड़ते हैं, यही इनकी सम्पूर्ण मूर्खता का चिन्ह है। ढुंढक मतके आदि पुरुषका मूल आशय जिन प्रतिमा के निषेधका ही था, और इसी वास्ते उसने जिनप्रतिमा क सम्बंधी परिपूर्ण हकीकत वाले जो जो सूत्र थे उनका निषेध किया, इसतरह निषेध करने से उन सूत्रों की अन्य बातोंका भी निषेध होगया और इससे इन ढुंढियों को बहुत बातें जैनमत विरुद्ध अंगीकार करनी पड़ीं ॥

महुवा (काठीयावाड़) में श्रीमहावीरस्वामी के समयकी श्रीमहावीरस्वामी की मूर्त्ति है जो कि अद्यापि पर्यंत श्री जीवत्स्वामी की प्रतिमा कहाती है ॥

औरंगाबाद में अनुमान २४०० वर्षसे पहिले का श्रीपद्मप्रभस्वामीका मंदिर है जिस के वास्ते अंग्रेज ग्रंथकार भी साक्षी देते हैं ॥

श्रीशत्रुंजय तीर्थों पर हजारों ही वर्षोंके मंदिर विद्यमान हैं ॥

---

* अमृतसर, होश्यारपुर, फगवाड़ा, वंगीयां, जेजों प्रमुख स्थानों में जोजो कारंवाई हुई थी प्रायःपंजाबके सर्व जैनी और ढुंढिये जानते हैं कई क्षत्री ब्राह्मण वगैरह जानते हैं कि सभा मंजूर करके सभा के समय ढूंढिये हाजर नहीं हुए

श्रीसंप्रतिराजा जोकि श्रीमहावीरस्वामी के २९० वर्ष पिछे हुआ है उसने सवालाख जिनप्रासाद और सवाकोटि जिनबिंब कराये हैं जिन में से हजारों जिनचैत्य तथा जिनप्रतिमा ठिकाने २ देखने में आती हैं ॥

पोर्तुगाल के हंगरी प्रांत में बुदापेस्त शहर में श्रीमहावीरस्वामी की बहुत प्राचीन मूर्ति जमीन में से एक अंग्रेज को मिली, जिसको अंग्रेज बहादुरने बाग के बीच छत्री बनवाकर स्थापन किया है मूर्त्ति बहुत ही अद्भुत है जिसका फोटो लाहौर के रजिस्टरार स्टाइन साहिबका दिया हुआ हमारे पास है। इससे साफ जाहिर होता है कि एक समय वहां जैनधर्म जरूर था और जैनधर्म में मूर्त्तिका मानना प्रथम से ही है ॥

आजकाल मूर्त्तिके खंडन में कटिबद्ध आर्य्यसमाजके आचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपने ग्रंथों में मंजूर कर चुके है कि सबसे पहिले मूर्त्ति का मानना जैनियों से ही शुरू हुआ है और बाकी सर्व मतों वालोंने उनकी देखा देखी नकल करी है ॥

मथुरा के टीले में से श्रीमहावीरस्वामीकी मूर्त्ति निकली है जो बहुत प्राचीन है जिस के लेखको देखकर अंग्रेज विद्वान् जो कि कल्पसूत्रको बनावटी मानते थे वोह यथार्थ मानने लगगये है * परन्तु अफसोस है ढुंढियों पर, कि जो जैनी कहाके फेर जैनसूत्रको नहीं मानते है ॥

सन् १८८४ में पंडित भगवानूलाल इन्द्रजीने एक रसाला छपवाया था उस मे लिखा है कि उदयागिरि गुफामें हाथी गुफाके शिरे पर एक लेख खुदा हुआ है उसहाथी गुफामें लेखसे सिद्ध होता है कि नंदराजा जो कि श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाणसे थोड़े ही काल पीछे हुआ है वोह, तथा खारावेला नामा राजा जो ईसासे १२७ वर्ष-पहिले जन्मा था और ईसाके पहिले १०३ वर्ष गद्दी पर बैठा था वोह, जैनधर्मी थे और श्रीऋषभदेवकी मूर्त्तिकी पूजा करते थे ॥

इत्यादि अनेक प्रमाणों से जिन प्रतिमा का मानना पूजना जैन धर्मकी सनातन रीति सिद्ध होती है और इस ग्रन्थ में भी प्रायः जिन प्रतिमा संबंधी ही सविस्तर विवेचन शास्त्रानुसार करा है इसवास्ते स्थानकवासी ढूंढक लोगों को बहुत नम्रतासे विनतिकी जाती है कि हे प्रियमित्रों! जैनशास्त्र के प्रमाणों से, प्राचीन लेखों के प्रमाणों से प्राचीन जिन मंदिर और जिनप्रतिमायों के प्रमाणोंसे, अन्यमतियों के प्रमाणों से तथा अंग्रेज विद्वानोंके प्रमाणों से

---

* देखो प्रोफेसर बुल्हरसाहब की रिपोर्ट अथवा जैनप्रश्नोत्तर तथा तत्वनिर्णय प्रासाद ग्रंथ

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्रत्येक जैनी जिन प्रतिमा को मानते और वंदना नमस्कार पूजा सेवा भक्ति करते थे। तो फेर तुम लोक किस वास्ते हठ पकड़के जिन प्रतिमा का निषेध करते हो?इसवास्ते हठको छोड़कर श्रावकोंको श्रीजिनप्रतिमाका निषेध मतकरो जिससे तुमारा और तुमारे श्रावकों का कल्याण होवे॥

यद्यपि सत्यके वास्ते मरजी में आवे वैसा लिखने में कोई हरकत नहीं है तथापि इस पुस्तक में जो कोई कठिन शब्द लिखा गया होवे तो उस में समकितसार ही कारणभूत है क्योंकि "यादृशे तादृशमाचरेत्" इस न्याय से समकितसार में लिखी बातोंका यथायोग्य ही उत्तर दिया गया होगा, न किसी के साथ द्वेष है और न कठिन शब्दों से कोई अधिक लाभ है यही विचार के समकितसार की अपेक्षा इस ग्रन्थ में कोई कठिन शब्द रहने नहीं दिया है यदि कोई होवेगा भी, तो वोह फक्त समकितसार के मानने वालोंको हित शिक्षारूप ही होगा॥

इस ग्रन्थके छापनेका उद्देश्य मात्र यही है कि जो अज्ञानता के प्रसंग से उन्मार्गगामी हुए हों वोह भव्य जीव इसको पढ़कर हेयोपादेयको समझ कर सूत्रानुसार श्रीतीर्थंकर गणधर पूर्वाचार्य प्रदर्शित सत्य मार्ग को ग्रहण करें और अज्ञानी प्रदर्शित उन्मार्गका त्यागकर देवें, परन्तु किसी की वृथा निन्दा करनेका अभिप्राय नहीं है इसवास्ते इस पुस्तकको वांचने वालोंको सज्जनता धारन करके और द्वेष भाव को त्याग के आदि से अंत पर्यंत वांचके हंसचंचू होकर सारमात्र ग्रहण करना, मनुष्य जन्म प्राप्तिका यही फल है जो सत्यको अंगीकार करना,परन्तु पक्षपात करके झूठाहठ नहीं करना यही अंतिम प्रार्थना है॥

अफसोस है कि ग्रन्थ कर्त्ताके हाथ की लिखी इस ग्रन्थकी खास संपूर्ण प्रति हमको तलाश करने से भी नहीं मिली तथापि जितनी मिली उस के अनुसार जो प्रथमावृति में अशुद्धता रह गई थी इस में प्रायः शुद्ध की गई है और बाकीका हिस्सा जैसा का वैसा गुजराती प्रतिके ऊपर से यथाशक्ति उलथा किया गया है इस बात में खास करके मुनि श्रीवल्लभविजयजी की मदद लीगई है इसलिये इस जगह मुनिश्रीका उपकार माना जाता है साथ में श्री भावनगर की श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा का भी उपकार माना जाता है कि जिसने गुजरातीमें छपाकर इस ग्रन्थको हयात बना रक्खा जिससे

आज यह दिनभी आगया जो निज भाषा में छपाकर अन्य प्रेमी भाइयोंको इसका लाभ दिया गया ॥

दृष्टिदोषान्मतेर्मांद्या, यदशुद्धं भवेदिह ।
तन्मिथ्यादुष्कृतं मेस्तु, शोध्यमार्यै रनुग्रहात् ॥

श्रीसंघका दास जसवंतराय जैनी

लाहौर

श्रीआत्मानंद जैनसभा पंजाब के हुकमसे

☞ इस पुस्तक में अशुद्धी पत्र नहीं छपा है इसवास्ते सर्व पाठक सज्जनों से प्रार्थना है कि स्वयम् ही शुद्ध करलें और अशुद्धीपर क्षमाकरें ॥

अथ श्रीसम्यक्त्वशल्योद्धार ग्रंथस्य

विषयानुक्रमणिका ।

॥ ओम् ॥

सम्यक्त्व शल्योद्धार

॥ श्री जैनधर्मोजयति ॥

मूर्तिं निधाय जैनेंद्रीं सयुक्तिशास्त्रकोटिभिः ।
भव्यानां हृद्धिहारेषु लुम्पराड्ढराढकाकिल्विषम् ॥ १ ॥
सम्यक्त्व गात्रशल्यानां व्याप्यानां विश्वदुर्गतेः ।
कदङ्कुर्वक उद्धारं नत्वा स्याद्वाद ईश्वरम् ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

॥ ओं ॥ श्री वीतरागायनमः

(१)

ढुंढक मत की उत्पत्ति वगैरह ॥

प्रथम प्रश्न में ढुंढकमती कहते हैं '' भस्मग्रह उतरा और दया धर्मप्रसरा" अर्थात् भस्मग्रह उतरे बाद हमारा दया धर्म प्रकट हुआ, इस कथन पर प्रश्न पैदा होता है कि क्या पहिले दया धर्म नहीं था ? उत्तर-था ही परंतु श्रीकल्पसूत्र में कहा है किं श्री महावीर स्वामी के निर्वाणबाद दो हजार वर्षकी स्थिति वाला तीसमा भस्मग्रह प्रभु के जन्म नक्षत्र पर बैठेगा जिस सें दो हजार वर्ष तक साधु साध्वी की उदय उदय पूजा नहीं होगी. और भस्मग्रह उतरे बाद साधु साध्वी की उदय उदय पूजा होगी। भस्मग्रह के प्रभाव सें जिनकी पूजा मंद होगी उन की ही पूजा प्रभावना भस्मग्रह के उतरे बाद विशेष होगी. इसी मूजिब श्री आनंद विमल सूरि, श्रीहेमविमलसूरि, श्रीविजय दानसूरि,श्री हीर विजयसूरि और खरतर गच्छीय श्री जिनचंद्रसूरि वगैरहने क्रिया उद्धार किया तब से लेके आज तक त्यागी संवेगी साधुसाध्वी की पूजा प्रभावना

दिन प्रति दिन अधिकतर होती जाती है और पाखंडियों की महिमा दिन प्रति दिन घटती जाती है यह बात इस वक्त प्रत्यक्ष दिखाइदेती है, इस वास्ते श्री कल्पसूत्र का पाठ अक्षर अक्षर सत्य है, परंतु जेठमल्ल ढुंढक के कथनानुसार श्री कल्पसूत्र में ऐसे नहीं लिखा है कि गुरु विना का एक मुख बंधों का पंथ निकलेगा जिसका आचार व्यवहार श्री जैनमत के सिद्धांतों से विपरीत होगा उस पंथ वाले की पूजा होगी और तिसका चलाया दयामार्ग दीपेगा ! इसवास्ते जेठमल्ल का कथन सत्यका प्रति पक्षी है। लौकिक दृष्टांत भी देखो (१) जिस आदमी को रोग होया हो उस रोगकी स्थिति के परिपक्व हुए रोग के नाश होने पर वोही आदमी निरोगी होवे या दूसरा ? (२) जिस स्त्री को गर्भ रहा हो गर्भ की स्थिति परिपूर्ण हुए वोही स्त्री पुत्र प्रसूत करे या दूसरी ? (३) जिस बालक की कुड़माई (मांगनी) हुई हो विवाह के वक्त वोही बालक पाणिग्रहण करे या दूसरा ? इन दृष्टांतों मूजिब भस्मग्रह के प्रभाव से जिन साधु साध्वी की उदय उदय पूजा नहीं होती थी, भस्मग्रह के उतरे बाद तिनाक ही उदय उदय पूजा होती है, परंतु ढुंढक पहिले नहीं थे कि भस्मग्रह के उतरे बाद तिन की उदय उदय पूजा होवे इस वास्ते जेठमल्ल का लिखना सत्य नहीं है ॥

तथा श्री वंगचूलिया सूत्र में कहा है कि बाईस (२२) गोठिल्ले पुरुष काल करके संसार में नीच गति में और बहुत नीच कुल में परिभ्रमण करके मनुष्य भव पावेंगे, और सिद्धांत से विरुद्ध उन्मार्ग को स्थापन करेंगे जैन धर्म के और जिन प्रतिमा के उत्थापक निंदक होवेंगे और जगत् निंदनीक कार्य के करने वाले होवेंगे, इस मूजिब ढुंढक पंथ बाईस पुरुषों का निकाला हुआ है और इस समय यह बाईस टोले के नाम से प्रसिद्ध है ॥

॥ श्रीवंग्ग चूलिया सूत्र का पाठ ॥

तेसट्ठि ठमे भवे मज्झविसएसु सावय वाणीय कुलेसु पुढो पुढो समुप्पज्जिस्संसतितएणं ते दुवीस वाणीयगा उम्मुक्क बालवत्था विण्णाय परिणाय मित्ता दुट्ठा धिट्ठा कुसीला परवंचना खलुंका पुव्व भवामिच्छत्तभावओ जिणनग्गपडिणीया देवगुरु निंदणाया तहा रूवाणं समणाणं माहणाणं पडिदुट्ठकारिणा जिण पणत्तं तत्तमग्गहापरुविणो बहूणं नरनारी सहस्साणं-

पुरओ नियगप्पा निय कप्पियंकुमग्गं आघवेमाणा पणवेमाणा जिणपडिमाणं भंजणयाणं हिलंता खिसंता निंदता गरिहंता परिहवंता चेइयतीत्थाणि साहु णूणायेस उठ वाबइस्संति ॥

भावार्थ--त्रयसठमे (६३) भंव मध्यखंड के विषे श्रावक वनीये के कुल में जुदे जुदे उपजेंगे, वाद वे वाईसें वनीये वाल्यावस्था को छोड़ के विज्ञानसहित, दुष्ट, धीठ कुशीलिये, परकों ठगनेवाले, अविनति पूर्व भवकोमिथ्यात्व भाव से जिन मार्ग के प्र त्यनीक, (शत्रु) देव गुरु के निंदक, तथा रूप जे श्रमण माहण साधु उनके साथ दुष्टता के करने वाले, निज प्ररूपित धर्म के अनजान, हजारों नर नारियों के आगे अपने आप कल्पना करके कुमार्ग को सामान्य प्रकार कहते हुए, विशेष प्रकारे कहते हुए, हेतु दृष्टांत प्ररूपते हुए, जिन प्रतिमा के तोड़ने वाले, हीलना करते हुए, खींसना करते हुए, निंदा करते हुए, गरहा करते हुए, पराभव करते हुए, चैत्य (जिनप्रतिमा) तीर्थ, और साधु साध्वी को उत्थापेंगे ॥

तथा इसी सूत्र मे कहा है, कि श्रीसंघ की राशि ऊपर ३ ३ ३ वर्ष की स्थिति वाला धूमकेतु नामा ग्रह बैठेगा, औरातिसके प्रभाव सें कुमत पंथ प्रकट होगा, इस मूजिब ढुंढकों का कुमत पंथ प्रकट हुआ है, और तिस ग्रहकी स्थिति अब पूरी हो गई है, जिससें प्रति दिन इस पंथ का निकंदन होता जाता है । आत्मार्थी पुरूषों ने यह बात वंग्ग चूलिया सूत्र में देख लेनी ॥

समकितसार (शल्य) नामा पुस्तक के दूसरे पृष्ट की १९ मी पांक्ति में जेठमल्ल ने लिखा है कि "सिद्धांत देखके सम्वत [१५३१] में दया धर्म प्रवृत हुआ" यह बिलकुल झूठ है क्योंकि श्री भगवती सुत्र के २० में शतक के ८ में उद्देशे में कहा है किभगवान् महावीर स्वामी का शासन एक वीस हजार (२१०००) वर्ष तक रहेगा सो पाठ यह है ॥

गोयमा जंबुद्दीवे दीवे भारहेवास इमीसे उस्सप्पिणीए ममं एकवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसिज्जिस्सत्ति ॥भ०श०२० उ०८

भावार्थः—हे गौतम ! इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के विषे इस उत्स-

र्पिणी में मेरा तीर्थ एक वीसहजार [२१०००]बर्षतक प्रवर्त्तेगा ॥

इस से सिद्ध होता है कि कुमतियों ने दया मार्ग नाम रख के मुख बधों का जो पंथ चलाया है, सो वेश्या पुत्र के समान है, जैसे वेश्या पुत्र के पिता का निश्चय नहीं होता है,ऐसे ही इस पंथ के देव गुरु का भी निश्चय नहीं है, इस से सिद्ध होता है कि यह सन्मूर्छिम पंथ हुंडा अवसर्प्पिणी का पुत्र है ॥

श्री भगवती सूत्र के २५ में शतक के ६ छट्ठे उद्देशे में कहा है कि व्यावहारिक छेदोपस्थापनीय चारित्र विना गुरु के दिये आता नहीं है और इस पंथ का चारित्र देने वाले आदि गुरु कोई नहीं क्योंकि ढुंढक पंथ सुरत के रहने वाले लवजी जीवा जी तथा धर्मदास छींवे का चलाया हुआ है तथा इस का आचार और भेष बत्तीस सूत्र के कथन से भी विपरीत है. क्योंकि श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के पांच में संवर द्वार में जैन साधुके यह उपकरण लिखे हैं, तथा च तत्पाठः—पडिग्गहो पायबंधण पाय केसरिया पायठ्ठवर्ण च पडलाईतिन्नि नेव रयत्ताणं गोच्छओ तिन्निय पच्छागा रओहरण चोल पट्टक मुहणंतगमाइयं एयं पिय संजमस्स उववूहठठयाए ॥

भावार्थ—पात्र बंधन २ पात्र के शरिका ३ पात्रस्थापन ४ पडले तीन ५ रजस्त्राण ६ गोच्छा ७ तीन प्रच्छादक १० रजोहरण ११ चोलपट्टा १२ मुखवीस्त्रका १३ व गैरह उपकरण संजम की वृद्धि के वास्ते जानने ॥

ऊपर लिखे उपकरणों में ऊन के कितने, सूतके कितने, लंबाई वगैरह का प्रमाण कितना, किस किस प्रयोजन के वास्ते और किस रीति से वर्त्तने वगैरह कोई भी ढुंढक जानता नहीं है, और न यह सर्व उपकरण इन के पास है, तथा सामायिक प्रतिक्रमण दीक्षा, श्रावक व्रत. लोच करण, छेदोपस्थापनीय चारित्र, वगैरह जिस विधि से करते हैं, सो भी स्वकपोल कल्पित है. लंबा रजोहरण, विना प्रमाण का चोलपट्टा, औरकुलिंग की निशानी रूप दिन रात मुख बांधना भी जैनशास्त्रानुसार नहीं है, मतलब प्रायः कोई भी क्रिया इस पंथ की जैन शास्त्रानुसार नहीं है, इस वास्ते यह दासी पुत्र तुल्य हैं. इन में सेठाई का कोई भी चिन्ह नहीं है. अनंते तीर्थंकरों के अनंते शास्त्रों की आज्ञा से विरुद्ध इनका पंथ हइसै वास्ते किसी भी जैनमतानुयायी को मानना न चाहिये ॥

औरजो संघपट्टे का तीसरा काव्य लिखा है तिसमें तेरां (१३)खोट हैं, और तिस के अर्थ में जो लिखा है "नवानवा कुमत प्रगट थाशे„ सो

सत्य है वो नवीन कुमत पंथ तुमारा ही है, क्योंकि जैन सिद्धान्त से विरुद्ध है; और जो इस काव्य के अर्थ में लिखा है "छकायना जीव हणीने धर्म प्ररूपसे" इत्यादि यह सर्व महा मिथ्या है क्योंकि काव्याक्षरों में से यह अर्थ नहीं निकलता है इस वास्ते जेठा ढुंढक महा मृषा वादी था, और तिसको झूठ लिखने का बिलकुल भय नहीं था, इस वास्ते इस का लिखा प्रतीति करणे योग्य नहीं है ॥

तथा चौथा काव्य लिखा तिस में तेवीस [२३] खोट है, इस काव्य के अर्थ में जो लिखा है "हिंसा धर्म को राज सूर मंत्रधारीनी दीपती" इत्यादि सम्पूर्ण काव्यका जो अर्थ लिखा है सो महा मिथ्या और किसी की समझ में न आवे ऐसा है; क्योंकि काव्याक्षरों में से यह अर्थ निकलता नहीं है, इसी वास्ते मुंहबंधे महा मृषावादी अज्ञानी पशु तुल्य हैं, बुद्धिमानों को इनका लिखना कदापि मानना न चाहिये ॥

सतारवां काव्य लिखा तिस में [१७] खोट हैं और इस के अर्थ में जो लिखा है "छ काय जीव हणीने हींस्यायें धर्म कहे छे सूत्र वाणी ढांकीने कुपंथ प्रकरण देखो कारण थापी चैत्य पोसाल करावी अभो मार्गे घाले छे कीहांइ सूत्र मध्ये देहरा कराव्या न थी कह्यां" यह अर्थ महा मिथ्या हैं क्योंकि काव्याक्षरों में है नहीं इस वास्ते मुंहवधों का पंथ निःकेवल मृषावादियों का चलाया हुआ हैं ॥

तथा वीसमें काव्य में सात ७ खोट है और इस का जो अर्थ लिखा है सो सर्व ही महा मिथ्या लिखा है एक अक्षर भी सच्चा नहीं ऐसे मृषावादियों के धर्म को दया धर्म कहते हैं ?-ऐसा झूठ तो म्लेछ (अनार्य) भंगी भी लिखते बोलते नहीं हैं ॥

तथा इकीसमें [२१] काव्य में बारां [१२] खोट है तिस में ऐसा अधिकार है वेष धारी जिन प्रतिमा का चढावा खाने वास्ते सावद्य काम का आदेश देते हैं. यह तो ठीक है परंतु जेठे ढुंढक ने जो अर्थ इस काव्य का लिखा है, सो झूठा निःकेवल स्वकपोल कल्पित है ॥

तथा तीसमा काव्य लिखा है तिस में (१३) तेरां खोट हैं इसका अर्थ जेठे ने सर्व झूठ ही लिखा है संशय होवे तो वैयाकर्ण पंडितों को दिखा के निश्चय कर लेना ॥

पूर्वोक्त छे काव्य के लिखे अर्थों को देखने से सिद्ध होता हैकि समकित सार [शल्य] के कर्त्ता ने अपना नाम जेठमल्ल नहीं किन्तु

झूठमल्ल ऐसा सार्थक नाम सिद्ध कर दिया है अब विचार करना चाहिये कि जिस को पद पद्में झूठ बोलने का, उलटे रस्ते चलनेका, झूठे अर्थ करने का, और झूठे अर्थ लिखने का, भय नहीं तिस के चलाए पंथ को दया धर्म कहना और तिसधर्म को सच्चामानना यह विना भारीकर्मी के अन्य किस का काम है ? ॥

जो ढुंढक पंथ की उत्पाति जेठमल्ल ने लिखी है सो सर्व झूठी मिथ्या बुद्धि के प्रभाव से लिखी है, और भोले भव्य जीवोंको फसाने वास्ते विना प्रयोजन, तिस में सूत्र की गाथा लिख मारी परंतु इस ढुंढक पंथ की खरी उत्पत्ति श्री हीरकलश मुनि विराचित कुमति विध्वंसन चौपई तथा अमरसिंह ढुंढक के पडदादे अमोलकचंद के हाथ की लिखी हुई ढुंढक पट्टावलि के अनुसार नीचें मूजिब है ॥

ढुंढकमत की पट्टावली

गुजरात देश के अहमदावाद नगर में एक लुंका नामक लिखारी ज्ञान जी यति के उपाश्रय में पुस्तक लिखके आजीविका करता था एक दिन उस के मन में वेईमानी आनेसे एक पुस्तक के सात पत्रे बीचमेसे लिखने छोड दीये, जब पुस्तक के मालक ने पुस्तक अधूरा देखा, तब लुंके लिखारी की बहुत भंडी करके उपाश्रय में से निकाल दिया, और सब को कह दिया कि इस बेइमान से कोइ भी पुस्तक न लिखवावें, इसतरह लुंकाआजीविका भंग होने से बहुत दुःखी होगया और इस्से वो जैनमत का द्वेषी बनगया, जब अहमदावाद में लुंके का ज़ोर न चला तब वो वहां से चलके लींबड़ी गाम में गया, तहां लुंकेका संबंधी लखमशी वाणीया राज्य का कारभारी था, तिस को जाके कहा,भगवंत का धर्म लुप्त होगया है मैने अहमदावाद में सच्चा उपदेश करा परंतु मेरा कहना न मान के उलटा मुझ को मार पीट के तहां से निकाल दीया. तब मैं तेरे तरफ से सहायता मिलेगी ऐसे धार के यहां आया हूं, इस वास्ते जेकर तूं मुझ को सहायता करे तो मैं सच्चे दया धर्म की प्ररूपणा करूं इस तरह हलाहल विषप्रायः असत्य भाषण करके बिचारे कलेजाविना के मूढमति लखमशी को समझाया, तब उस ने उसकी बात सच्ची मान के लुंके को कहा कि तूं लींबडी के राज्य में बेधडक प्ररूपणा कर, मैं तेरे खान पानकी खबर रखुंगा, इस तरह सहायता मिलने से लुंके ने संवत १५०८ में जैन मार्ग की निंद्या करनी शुरू करी परंतु अनुमानें छव्वीस वर्ष तक तो उसका उन्मार्ग किसी ने अंगीकार नहीं करा, १५३४ में एक अकल का अंधा भूणा नामक वाणीया लुंके को मिला, तिसने महा मिथ्यात्व के उदय से लुंके का मृषा उपदेस

माना और लुंके के कहने से विना गुरु के भेष पहेन के मूढ अज्ञानी जीवों को जैन मार्ग से भ्रष्ट करना शुरू कीया ॥

लुंके ने इकतीस सूत्र सच्चे माने और व्यवहार सूत्र सच्चा नहीं माना और जहां जहां मूल सूत्र का पाठ जिन प्रतिमा के अधिकार का था, तहां तहां मनः कल्पित अर्थ लोगों को समझाने लगा ॥

भूणे (भाण जी) का शिष्य रूपजी संवत १५६८ में हुआ तिस का शिष्य संवत १५७८ महा सुदी ५ पंचमी के दिन जीवाजी नामक हुआ, तिस का शिष्य संवत १५८७ चैत्र वदि ४ चौथ को वृद्धवरसिंहजी हुआ, तिस का शिष्य संवत १६०६ में वरसिंह जी हुआ, तिसा शिष्य संवत १६४९ में जसवंत हुआ, इसके पीछे संवत १७०९ में बजरंग जी नामक लुंपकाचार्य हुआ, उस बजरंग जी के पास सूरत के वासी वोहरा वीरजी की बेटी फूलां बाइ के गोद लिये बेटे लवजी नामक ने दीक्षा लिये पीछे जब दो वर्ष हुए तब दशवैकालिक सूत्र का टब्बा वांचा वांचकर गुरु को कहने लगा कि तुम तो साधु के आचार से भ्रष्ट हो इस तरह कहने से जब गुरु के साथ लडाई हुई तब लवजी ने लुंपकमत और गुरु को त्याग के थोभणारिख* वगैरह को साथ लेकर स्वयमेव दीक्षा लीनी और मुंह के पाटी बांधी. उस लव जी का शिष्य सोम जी तथा कान जी हुआ, कान जी के पास गुजरात का रहने वाला धर्मदास छींबा दीक्षा लेने को आया परंतु वो कान जी का आचार भ्रष्ट जान कर स्वयमेव साधु बन गया. और मुंह के पाटी बांधली. इन के (ढुंढक के) रहने का मकान ढुंढ अर्थात फूटा हुआथा इस वास्ते लोकों ने ढूंढक नाम दीया, और लुंपकमति कुंवर जी के चेले धर्मसी, श्रीपाल और अमीपाल ने भी गुरु को छोड़ के स्वयमेव दीक्षा लीनी तिन में धर्मसी ने आठ कोटी पच्चक्खाण का पंथ चलाया सो गुजरात देश में प्रसिद्ध है ॥

धर्मदास छींपी का चेला धनाजी हुआ. तिसका चेला भुदरजी हुआ, और तिस के चेले रघुनाथ,जैमलजी और गुमानजी हुए इनका परिवार मारवाड़ देश में विचरता है, तथा गुजरात मालवे में भी है ॥

रघुनाथ के चेले भीखम ने तेरापंथी मुंह बंधों का पंथ चलाया।

लवजी ढुंढक मत का आदि गुरु (१) तिसका चेला सोम जी (२) तिसका हरिदास (३) तिस का वृंदावन (४) तिसका भुवानीदास (५) तिसका मलूकचंद (६) तिसका महासिंघ (७) तिसका खुशालराय

* इस का दूसरा नाम भूणा है ॥

(८ तिसका छजमल्ल (९) तिसका रामलाल (१०) तिसका चेला अमरसिंह (११) मींपिंडी में हुआ, अमरसिंह के चेले पंजाब देश में मुंहबांधे फिरते हैं ॥

कानजी के चेले मालवा और गुजरात देश में हैं ॥

समकितसार जिस के जवाब में यह पुस्तक लिखा जाता है तिसका कर्त्ता जेठमल्ल धर्मदास छींपे के चेलों में से था और वो ढुंढक के आचरण से भी भ्रष्ट था इसवास्ते तिसके चेले देवीचंद और मोतीचंद दोनों तिसको छोड़ के दिल्ली में जोगराज के चेले हजारीमल्ल के पास आ रहे थे दिल्ली के श्रावक केसरीमल्ल जोकि हजारीमल्ल का सेवक था तिसके मुंह से हमने देवीचंद मोतीचंद के कथनानुसार सुना है कि जेठमल्ल को झूठ बोलने का विचार नहीं था इतनाही नहीं किंतु तिसके ब्रह्मचर्य का भी ठिकाना नहीं था इसवास्ते जेठमल्ल ने जो लुंपकमत की उत्पत्ति लिखी है बिलकुल झूठी और स्वकपोल कल्पित है, और हमने जो उत्पत्ति लिखी है सो पूर्वोक्त ग्रंथों के अनुसार लिखी है इस में जो किसी ढुंढक या लुंपकको असत्य मालूम होवे तो उसने हमारे पास से पूर्वोक्त ग्रंथ देख लेने*

११ में पृष्ट में जेठमल्ल नें (५२) प्रश्न लिखे हैं तिनके उत्तर

पहिले और दूसरे प्रश्न में लिखा है कि चेला मोल लेते हो [१] छोटे लड़कों को विना आचार व्यवहार सिखाए दीक्षा देते हो [२], जबाब-हमारे जैन शास्त्रों में यह दोनों काम करने की मनाई लिखी है और हम करते भी नहीं हैं, पूज्य (डेरेदारयति) करते हैं तो वे अपने आप में साधुपनेका अभिमान भी नहीं रखते हैं परंतु ढूंढक के गुरु लुंकागच्छ में तो प्रायः हर एक पाट मोल के चेले से ही चला आया है और ढूंढक भी यह दोनों काम करते हैं तिनके दृष्टांत जेठमल्ल के टोले के रामचंद ने तीन लड़के इस रीति से लिये [१] मनोहरदास के टोले के चतुर्भुज ने मर्तानामा लड़का लिया है (२) धनीराम ने गोरधन नामा लड़का लिया है (३) मंगलसेन ने दो लड़के लिये हैं (४) अमरसिंह के चेले ने अमीचंद नामा लड़का लिया है [५] रूपांढूंढकणी ने पांच वर्ष की दुर्गी नामा लड़की ली है (६) राजां ढुंढणी ने तीन वर्ष की जीया नामा लड़की (७) यशोदा ढूंढणीने मोहनी और सुंदरीलड़की सात वर्ष की

* इस ढुंढक मत की पट्टावली का विस्तार पूर्वक वर्णन ग्रंथकर्त्ता ने श्री जैन तत्त्वादर्श में करा है इसवास्ते यहां संक्षेप से मतलब जितनाही लिखा है ॥

की (८) हीरां ढूंढणी ने छ वर्ष की पार्वती नामा लड़की (९) अमरसिंह के साधु ने रामचंद नामा लड़का फीरोजपुर में लिया जिस के बदले में उस के बाप को २५०) रुपये दिये (१०) बालकराम ने आठ वर्ष का लालचंद नामा लड़का (११) बलदेव ने पांच वर्ष का लड़का (१२) रूपचंद ने आठ वर्ष का पालीनामा डकौत का लड़का (१३) भावनगर में भीमजी रिखके शिष्य चूनीलाल तिस के शिष्य उमेदचंद ने एक दरजी का लड़का लियाथा जिसकी माता ने श्रीजिनमंदिर में आके अपना दुःख जाहिर किया था आखीर में अदालत की मारफत वो लड़का तिसकी माता को सपूर्द किया गया था (१४) इत्यादि सैंकड़ों ढूंढियों ने ऐसे काम किये हैं और सैंकड़ों करते हैं * इस वास्ते संवेगी जैन मुनियोंको कलंक देने वास्ते जेठमल्ल ने जो असत्य लेख लिखा है सो अपने हाथ से अपना मुख स्याही से उज्वल किया है ।

तीसरे प्रश्नका उत्तर–पंचवस्तुक नामा शास्त्र में लिखा है की दीक्षा वक्त मूल का नाम फिराके दूसरा अच्छा नाम रखना–

(४) चौथे प्रश्न में लिखा है कि "कान फड़वाते हो" उत्तर यह लेख मिथ्याहै क्योंकि हम कान फड़वाते नहीं हैं कान तो कान फटे योगी फड़वाते हैं ॥

(५) खमासमणे वहोरते हो (६) घोडा रथ वेहली डोली में बैठतेहो (७) गृहस्थ के घर में बैठके वहोरते हो (८) घरों में जाके कल्पसूत्र बांचते हो (९) नित्यप्रति उस ही घर वहेरते हो (१०) अंघोल करते हो (११)ज्यो-

---

* संवत् १९५१ चैत्र वदि ११ बृहस्पतिवार के रोज जब सोहनलाल को युवराज पदवी दी तब संवत्१९५२चैत्र सुदि १ के रोज लुधिहाना नगर में ढूंढियों ने ६२ बोल बनाये हैं उन में ३५ में बोल में लिखा है कि "आज्ञा बिना चेला चेली करना नहीं वारसों को खबर कर देनी बिना खबर मुंडना नहीं तथा दाम दिवा के तथा वेपरतीते को करना नहीं दीक्षा माहोत्सव में सलाह देनी नहीं दीक्षा वालेको ऊठ,बैठ,खाना दाना देना दिवाना शास्त्री हरफ सिखाने नहीं"।

– श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नव में अध्ययन में लिखा है कि नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध की माता मदनरेखा ने जब दीक्षा धारण करी तब उसका नाम सुव्रता स्थापन करा सो पाठ यह है।

"तीएवि तासिं साहूणीणं समीवे गहिया दिक्खाकय सुव्वयनामा तव संजमकुणमाणी विहरइ" इत्यादि ॥

तिष निमित्त प्रयुंजते हो (१२) फलवाणी करके देते हो(१३)मंत्र.यंत्र, झाड़ा, दवाई करते हो इन नव प्रश्नोंके उत्तर में लिखने का कि जैन मुनियों को यह सर्व प्रश्न कलंक रूप हैं क्योंकि जैन संवेगी साधु ऐसे करते नहीं हैं, परंतु अंतके प्रश्न में लिखे मुजिब मंत्र. यंत्र झाड़ा, दवाई वगैरह ढुंढक साधु करते हैं, यथा (१) भावनगर में भीमजी रिख तथा चूनीलाल (२) बरवाला में रामजी रिख (३) बोटाद में अमरसी रिख(४)धांगधरा में शामजी रिख वगैरह मंत्र यंत्र करते हैं यंत्र लिख के धुलाके पिलाते हैं कच्चे पाणीकी गड़वीयां मंत्र कर देते है अपने पासों दवाई की पुडीयां देते हैं बच्चों के शिर पर रजोहरण फिराते हैं वगैरह सब काम करते हैं इस वास्ते यह कलंक तो ढूढकों के ही मस्तकों पर है (१४) में प्रश्नमें जो लिखा है सत्य है क्योंकि व्यवहारभाष्य श्राद्धविधिकौमुदी आदि ग्रंथों में गुरुको समेला करके लाना लिखा है और ढूंढक लोक भी लेने वक्त वाजिंतर बजवाते हैं भावनगर में गोबर रिख के पधारने में और रामजी ऋष के विहार में वाजिंतर बजवाये थे और इस तरां अन्यत्र भी होता है * ॥

(१५) वें प्रश्न में " लड्डू प्रतिष्ठाते हो" लिखा है सो असत्य है ॥

(१६) सात क्षेत्रों निमित्त धन कढाते हो (१७) पुस्तक पूजाते हो (१८) संघ पूजा कराते हो और संघ कढाते हो (१९) मंदिर की प्रतिष्ठा कराते हो (२०) पर्युषणा में पुस्तक ढ्केके रात्रि जागा कराते हो यह पांच प्रश्न सत्य हैं क्योंकि हमारे शास्त्रों में इस रीति से करना लिखा है जैसे ढुंढक दीक्षा ढूंढक मरण में तुम महोत्सव करते हो ऐसे ही हमारे श्रावक देवगुरु संघ श्रुत की भक्ति करते हैं और इस करने से तीर्थंकर गोत्र बांधता है यह कथन श्रीज्ञाता सूत्र वगैरह शास्त्रों में है इसको देख के तुमारे पेट में क्यों शूल उठाता है? इन कामों में मुनिका तो उपदेश हैं, आदेश नहीं ॥

(२१) में प्रश्न में लिखा है "पुस्तक पात्र वेचते हो" इसका उत्तर-

हमारा कोईभी साधु यह काम नहींकरता है, करेतो वो साधुनहीं. परंतु ढूंढक और ढूंढकनीयां करतीहैं. दृष्टांत (१) अजमेरमें ढूंढनीयां रोटियांवेचती हैं

---

* रावलपिंडी शहर में पार्वती ढूंढकनी के चौमासे में दर्शनार्थ आए बाहरले भाइयों को महोत्सव पूर्वक नगरमें शहरवाळे लायेथे तथा हुशियारपुरमें सोहनलाल ढूंढक के चौमासे में मोती के परिवार में पुत्रोत्पत्ति के हर्ष में महोत्सव पूर्वक स्वामी जी के दर्शनार्थ आए थे पुत्र को चरणों पर लगा के. लड्डू बांटके बडी खुशी मनाई थी ।

जयपुर में चरखा कातती हैं (३) बलदेव गुलाब नंदराम और उत्तमचंद प्रमुख रिख कपड़े वेचते हैं (४) भियाणी में नवनिध ढूंढक दुकान करता है(५) दिल्ली में गोपाल ढूंढक हुक्के का तमाकु बनाके वेचता है (६) बीकानेर और दिल्ली में ढूंढनीयां अकार्य करती है (७) कनीराम के चेले राजमल ने कितने ही अकार्य किये सुने हैं (८) कनीराम का चेला जयचंद दो ढूंढक श्राविकायों को लेके भाग गया और कुकर्म करता रहा (९) वादाद में केशवजी रिख पछम गाम की बनीयाणी को लेके भाग गया है * यह तुमारे (ढुंढकके) दया धर्म की उदय उदय पूजा हो रही है ?

(२२) माल उगटावते हो (२३) आधाकर्मी पोसाल में रहते हो (२४) मांडवी (विमान) कराते हो (२५) टीपणी (चंदा) कराके रुपैये लेते हो (२६) गौतम पढवा कराते हो यह पांचों प्रश्न असत्य हैं, क्योंकि संवेगी मुनि ऐसे नहीं करते हैं, परंतु २३ में तथा २४ में प्रश्न मूजब ढुंढकों के रिख करते हैं ॥

(२७) संसार तारण तेला कराते हो (२८) चंदन बाला का तप कराते हो. यह दोनों प्रश्न ठीक है; जैसे शास्त्रों में मुक्तावलि कनकावलि, सिंहनिःक्रीडितादि तप लिखे हैं; तैसे यह भी तप है, और इस से कर्म का क्षय, और आत्मा का कल्याण होता है ॥

(२९) तपस्या कराके पैसा लेते हो (३०) सोना रूपाकी निश्रेणी (सीढी) लेते हो (३१) लाखा पड़वा कराते हो, यह तीनों ही प्रश्न मिथ्या हैं ॥

(३२) उजमणा कराते हो लिखा है. सो सत्य है, यह कार्य उत्तम है, क्योंकि यह श्रावक का धर्म है, और इस से शासन की उन्नति होती है, तथा श्राद्धविधि, संदेहदोलावलि वगैरह ग्रंथों में लिखा है ॥

(३३) पूज ढोवराते हो–सो श्रावक की करणी है, और श्रीजिन मंदिर की भक्ति निमित्त करते हैं ॥

(३४) श्रावक के पास मुंडका दिलाके डुंगर पर चढते हो । यह असत्य

---

* जगरांवा जिस्ना लुधियाना में रूपचद के दो साधु और अमरसिंह की साध्वी का संयोग हुआ और आधान रह गया सुना है, तथा बनूड में एक साधु ने अपना अकार्य गोपने के वास्ते छप्पर को आग लगादी ऐसे सुना है और समाणे में एक ढुंढक साधु को अकार्य की शंका से श्रावकों ने बारी मे बैठने से रोक दिया पट्टी में एक परमानंद के चेले के अकार्य से ढुंढक श्रावक रात्रि के वक्त थानक को ताला लगाते थे ।

है, क्योंकि अद्यापि पर्यंत किसी भी जैनतीर्थ पर साधु का मुंडका नहीं लिया गया है ॥

(३५) माला रोपण कराते हो । यह सत्य है मालारोपण करानी श्री महा निशीथ सूत्र में कही है ॥

(३६) अशोक वृक्ष बनाते हो, यह श्रावक का धर्म है ॥

(३७) अष्टोत्तरी स्नात्र कराते हो । यह श्रावक की करणी है, और इस सें अरिहंत पदका आराधन होता है, यावत् मोक्ष सुख कीं प्राप्ति होती है, श्रीरायपसेणी सूत्र प्रमुख सिद्धांतोंमें सतरां भेद सें यावत् अष्टोत्तरशत भेद तक पूजा करनी कही है ॥

(३८) प्रतिमा के आगे नैवेद्य धराते हो यह उत्तम है, इस सें अनाहार पद की प्राप्ति होती है । श्रीहरिभद्रसरि कृत पूजांपंचाशक, तथा श्राद्ध दिन कृत्य वगैरह ग्रंथों में यह कथन है ॥

(३९) श्रावक और साधु के मस्तकोपरि वासक्षेप करते हो, यह सत्यहै कल्पसूत्रवृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें कहाहै परंतु तुम (ढुंढक) दीक्षा के समय में राख डालते हो सो ठीक नहीं है, क्योंकि जैन शास्त्रों में राख डालनी नहीं कही है ॥

(४०) नांद मंडाते हो लिखा है, सो ठीक है, नांद मांडनी शास्त्रों में लिखी है । श्री अंगचूलिया सूत्र में कहा है कि व्रत तथा दीक्षा श्रीजिनमन्दिर में देनी— यतः

तिहि नखत्त मुहुत्त रविजोगाइय पसन्न दिवसे अप्पा वोसिरामि । जिणभवणाइपहाणखित्ते गुरू वंदित्ता भणइ इच्छकारि तुम्हे अम्हंपंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमण छट्ठाइं आरोवावणिया ॥

भावार्थ - तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त, रविजोग आदि जोग, ऐसे प्रशस्त दिनमें, आत्माकों पापसे वोसिरावे, सो जिनभवन आदि प्रधान क्षेत्रमें गुरुको वंदना करके कहे-प्रसाद करके आप हमको पांच महा व्रत और छट्ठा रात्रि भोजन विरमण आरोपण करो (देखो) ॥

(४१) पदीकचाक बांधते हो लिखा है, सो मिथ्या है।

(४२) वंदना करवाते हो, वंदना करनी सो श्रावकोंका मुख्यधर्म है।

[४३] लोगोंके शिर पर रजोहरण फिराते हो, यह काम हमारे संवेगी मुनि नहीं करते हैं, परंतु तुमारे रिख यह काम करते हैं, सो प्रथम लिख आए हैं।

[४४] गांठमें गरथ रखते हो अर्थात् धन रखते हो, यह महा असत्य है, इस तरह लिखने से जेठेने तेरवें पापस्थानक का बंधन किया है॥

[४५] डंडासण रखते हो लिखा, सो ठीक है, श्रीमहानिशीथ सूत्र में कहा है *

[४६] स्त्री का संघट्टा करते हो लिखा है, सो मिथ्या है॥

[४७] पगों तक नीची पछेवड़ी ओढते हो लिखा है, सो मिथ्या है, क्योंकि संवेगी मुनि ऐसे नहीं ओढते हैं, परन्तु तुमारे रिख पगकी पानी [आड्डियों] तक लंबा घघरे जैसा चोलपट्टा पहिरते है।

[४८] सूरिमंत्र लेते हो लिखा है सो गणधर माहाराज की परंपराय से है, इस वास्ते सत्य है॥

[४९] कपड़े धुलवाते हो लिखा है; सो असत्य है॥

[५०] आंबिल की ओलि कराते हो लिखा है सो सत्य है, महा उत्तम है, श्रीपालचरित्रादि शास्त्रों में कहा है, और इस से नव पद का आराधन होता है, यावत् मोक्ष सुख की प्राप्ति है॥

[५१] यति मरे बाद लड्डू लाहते हो लिखा है, सो असत्य है, हमने तो ऐसा सुना भी नहीं है, कदापि तुमारे ढूंढक करते हों, और इस से याद आगया हो ऐसे भासता है *

[५२] यतिके मरेबाद थूभ करातेहो-यह श्रावक की करणीहै, गुरु भक्ति निमित्त करना यह श्रावक का धर्म है; श्रीआवश्यक, आचार दिनकरादि सूत्रोंमें लिखा है और इस में साधुका उपदेशहै, आदेशनहीं॥

---

*श्रीव्यवहार सूत्र भाष्यादिकमें भी डंडासण रखना लिखा है॥

*सुननेमें आया है कि अमृतसरमें एक ढूंढनीके मरे बाद सेवकों ने पिंड भराये थे तथा पंजाब में जब किसी ढूंढीये या ढूंढनी के मरनेपर लोक एकत्र होते हैं तो खूब मिठाईयों पर हाथ फेरते है॥

ऊपर मूजिब [५२] प्रश्न जेठमलने लिखे हैं, सो महा मिथ्यात्व के उदयसे लिखे हैं, परंतु हमने इनके यथार्थ उत्तर शास्त्रानुसार दीये हैं, सो सुज्ञ पुरुषों ने ध्यान देकर वांच लेने ॥

अब अज्ञानी ढूंढिये शास्त्रों के आधार बिना कितनेकमिथ्या आचार सेवते हैं तिनकावर्णन प्रश्नों की रीतिसे करते हैं ॥

[१] सारादिन मुंह बांधे फिरते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[२] बैलकि पूंछ जैसा लंबा रजोहरण लटका कर चलते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[३] भीलों के समान गिलती बांधते हो, सो किस शा० ?

[४] चेला चेली मोल का लेते हो, सो किस शा० ?

[५] जूठे बरतनों का धोवण समूर्च्छिम मनुष्योत्पत्ति युक्त लेते हो और पीते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[६] पूज्य पदवी की चादर ओढते हो, सो किस शा० ? ॥

[७] पेशाब से गुदा धोते हो, सो किस शा० ?

[८] लोच करके पेशाबसे शिर धोते हो, सो किस शा० ?

[९] पैशाबसे मुहपत्ती धोते हो, सो किस शा० ?

[१०] भंगी चमार वगैरह को दीक्षा देतेहो, सो किस शा० ?

दृष्टांत—हांसी गाम में लालचन्द रिख हुआ था, जो जातिका चमार था, जिसने अंबाले शहरमें काल किया था, जिसकी समाध बनी हुई अब उस जगा विद्यमान है ॥

[११] छींबा, भरवाड, (गड़रिया) कहार, (झींवर) कलाल, कुंभार नाई वगैरह को दीक्षा देते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[१२] कलाल, छींबा, भरवाड, कुंभार वगैरह के घरका खाते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[१३] शय्यातर के घरका आहार पानी जाते आते लेते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[१४] विहार करते हुए ईरियावहि पडिकमते हो सो किस ० ?

[१५] काउसग्ग को ध्यान कहते हों,सो किस शा० ?

[१६] नदीमें आपतो ऊतरना परंतु आहार पानी नहीं लेजाना सो किस शास्त्रानुसार ?

[१७] प्रतिक्रमण करचुके पीछे खमाते हो, सो किस शा० ?

[१८] दो साधुओंकेबीच सात*पात्रे रखते हो, सो किस शा० ?

[१९] जिसके घरकी एक चीज असूझती होजावे तिसका घर सारा दिन असूझता गिणना, सो किस शास्त्रानुसार ?

दृष्टांत-काठीयावाड़ के गोंडल नामा शहर में संघाणी फ लीये (महल्ले) में एक ढुंढिया साधु गौचरी जाता था, तिसको एक ढूंढिये की खिड़की में प्रवेश करते हूए कुत्ता भौंका, ढूंडकने साधु को बुलाया तब साधुने कहा कि नहीं! आज तेरी खिड़की असूझती होगई, हम नहीं आवेंगे यह सुनके ढूंढियेने कहा किस्वामीजी! क्या कारण? ढूंढिये साधुने कहा "कुत्ता खुले मुंह से भौंका" ढूंढिये श्रावकने कहा स्वामीजी! स्वामी वेचरजी तो कुत्ता भौंकता है तोभी आते हैं, साधुने जवाब दीया "वोतो ऐसाही है, हम आनेवाले नहीं" ऐसे कहके साधु चलता हुआ उसवक्त एक मश्करा पास खड़ा हुआ पूर्वोक्त वार्त्तालाप सून के बोला कि स्वामीजी ! किसी गाम में प्रवेश करते हुए आपका भेष देख कर कुत्ता भौंकेतो आपको वो सारा गाम ही असूझता होजाता होगा !

[२०] वस्त्र लेके बदले का पच्चक्खाण कराते हो, सो किस० ?

[२१] जो वंदना करे उसको "दया पालो जी" कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[२२] एक अंक से अर्थात् नव रुपैये की किमत से उपरांत के वस्त्र नहीं लेने, सो किस शास्त्रानुसार ?

---

*मतलब एक साधु के तीन पात्रे और एक दोनों का इकठ्ठा जिस में पेशाब करते हो और जिसको मातरीया कहते हो ॥

[२३] धारणा मुजिब त्याग कराते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[२४] बारा पहरका गरम पानी लेते हो, सो किस शा० ?

[२५] जब दीक्षा देते हो तब पहिले इरियावहि पडिक्कमा के सब श्रावकों के पास वंदना कराके पीछे दीक्षा देते हो, सो किस० ?

[२६] चादर सफेद तो चोलपट्टा मलीन और चोलपट्टा सफेद तो चादर मलीन, सोकिस शास्त्रानुसार ?

[२७] किसी साधुके काल कियेकी खबर आवे अथवा कोई ढूंढिया साधु काल करजावे तो चार लोगस्स का काउसग्ग करते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[२८] खड़े होकर काउसग्ग करते हो तब दोहाथ लंबे करके और बैठके करते हो तो दोनों हाथ इकट्ठे करके, करते हो, सो किस० ?

[२९] पोतीया वन्ध बनाना और उसका ओघा बिना कपड़े रखना, साधुके भेषमें फिरना और मांगकर खाना, सो किस० ?

[३०] पूज्यजी महाराज जी कहना, किस शास्त्रानुसार ?

[३१] पूज्य पदवी के वक्त चादर देनी किस शास्त्रानुसार ?

[३२] चोलपट्टे के दोनों लड़ (किनार) घघरे की तरह सींकर अगले पासे चिनकर, पहिरते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

[३३] बड़ी दीक्षा देनी तब दशवैकालिकका छज्जिवणिया अध्ययन सुनाना, किस शास्त्रानुसार ?

[३४] जब पूज्य पदवी देतेहो तब चादरके किनारे पकड़नेवाले चारे जनों को एक विगयका या चीजका त्याग करातेहो, सो किस० ?

[३५] जंगल जाते हुए जिसमें पात्रा रखते हो, सो पल्ला रखना, किस शास्त्रानुसार ?

[३६] रात्रिको शिर ढकके बाहिर निकलना और दिनमें प्रभात से ही खुले किर फिरना, सो किस शास्त्रानुसार ?

(३७) धोवण वगैरह पानीमें से पूरे वगैरह जीव निकलें, तो तिस को कूप वगैरहके नजदीक *गिल्ली मिट्टी में डालते हो कि जहां* कच्ची मिट्टी तथा

निगोद वगैरहका भी संभव होता है, सो किस० ?

(३८) जब गृहस्थी के घर गोचरी जाना तो चोर की तरह घेर में प्रवेश करना और निकलना तब शाहुकार की तरह निकलना कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

(३९) आठ पहरका पोसह करे तो (२५) व्रतका फल कहते हो, सो०

(४०) दया पाले तो दश व्रतका फल बताते हो, सो किस०

(४१) सम्यक्त्व देते हो तब (२५) व्रत कराते हो, सो किस० ?

(४२) बड़ा सम्यक्त्व देते हो तब (१८०) व्रत कराते हो, सो कि० ?

(४३) व्रत बेला इत्यादि के पारणे पोरसी करे तो दूना फल कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(४४) बेले से लेकर आगे पांच गुने व्रत फलकी संख्या कहते हो,सो किस०

(४५) चार चार महीने आलोयणा करते हो सो किस० ?

(४६) पोसह करे तो ११ ग्यारवां बड़ा व्रत कहके उच्चराते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

(४७) ११ ग्यारवां छोटा व्रत करके पोसह पारना कहते हो, सो किस०

(४८) सामायिक करे तो नवमा व्रत कहके उच्चारना कहते हो,सो किस०

(४९) सामायिक करने वक्त एक दो मुहुर्त तथा दो चार घड़ीयां ऐसे कहना, किस शास्त्रानुसार ?

(५०) सामायिक पारने वक्त नवमा सामायिक व्रत कहके पारना, सो किस शास्त्रानुसार ?

(५१) व्रत करके पानी पीना होवे तो पोसह न करे, संवर करे,कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

(५२) जब कोइ दीक्षा लेनें वाला होवे तब उसके नाम से पुस्तक तथा वस्त्र पात्र लेते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(५३) जब आहार करतेहो तब पात्रोंके नीचे कपड़ा बिछाते हो, जिसका

---

* इस प्रश्नका मतलब यह है कि लगातार दो व्रत करेतो पाच व्रतका फलहोवे, तीन करे तो पच्चीस, चार करे तो सवासौ, पांच करे तो सवाछैसौ, छै व्रत करे तो सवा इकतीस सौ ३१२५ व्रतका फल होवे इत्यादि ॥

— गुजरात मारवाड के कितनेक ढुंढियों में यह रिवाज है ॥

नाम मांडला कहते हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

(५४) सामायिक जिस विधि से करते हो, सो किस० ?

(५५) सामायिक पारने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(५६) पोसह करने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(५७) पोसह पारने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(५८) दीक्षा देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(५९) संथारा करने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६०) श्रावक को व्रत देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६१) देवसी पड़िक्कमणेका विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६२) राइ पड़िक्कमणेका विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६३) पक्खी पड़िकमणेका विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६४) चौमासी पड़िकमणेका विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६५) सांवच्छरी पड़िकमणे का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६६) चौमासे पहिले एक महीना आगे आना कहते हैं, सो किस शास्त्रानुसार ?

(६७) सांझेकी पंचमी लग्यां संवच्छरी करनी,सो किस० ?

(६८) पूज्य पदवी देने का विधि किस शास्त्रानुसार ?

(६९) अनन्त चौवीसी पड़िकमणे में पढनी किस० ?

(७०) ढालां तथा चौपइयां बांचनीयां और थेइया २ मानना -सो किस शास्त्रानुसार ?

(७१) श्रावण दो होवें तो दूसरे श्रावणमें पर्यूषण करने किस० ?

(७२) भादों दो होवें तो पहिले भादों में पर्यूषण करने, किस० ?

(७३) नावा में बैठकेऊतरे तेलेका दण्ड कहते हो, सो किस० ?

(७४) लस्सी (छास) और शरबत (मीठापानी) पीकर एक दो मास कत रहना और कहना कि महिने के व्रत किये है, सो किस शास्त्रानुसार ?

(७५) एक साधुको महिने से ज्यादा तपस्या कराके सब साधु एक एक ठिकाने कल्पसे ज्यादा रहते हो, सो किस शास्त्रानुसार?

(७६) जब लोच करते हो, तब गृहस्थी को व्रत वगैरह कराके चढ़ावा लेते हो,सो लोच आप करना और दंड गृहस्थी को देना,सो किस शास्त्रनुसार

(७७) रजोहरण की डंडीपर कपड़ा लपेटना सो जीव रक्षा के निमित्त कहते हो,सो किस शास्त्रनुसार?

(७८) सफेद नवीन कपड़े पहनने किस शास्त्रानुसार ?

(७९) हमेशां सूर्य उदय होवे तब आज्ञा लेते हो, और पच्चक्खाण कराते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(८०) वुढेको डंडारखना, और को नहीं रखना कहते हो, सो किस० ?

(८१) मुहपत्ती बांधनें से वायुकाय की रक्षा होती है ऐसे कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(८२) हाथ में लटकाके गौचरी लातें हो, सो किस शास्त्रानुसार ?

(८३) अन्यतीर्थी के वास्ते भोजन करा होवे उसको कहना कि तुम को शंका न होवे तो दे दो, किस शास्त्रानुसार ?

(८४) रात्रि को सूई रखे तो एक व्रतका दंड कहते हो, सो ० ?

(८५) सूई टूट जावे तो बेले (दो व्रत) का दंड कहतेंहो, सो किस० ?

(८६) सूई खोई जावे ता तेले (३ व्रत) का दंड कहते हो, सा किस० ?

(८७) पांच पदकी तथा आठ पद की खमावणा कहते हो सो किस शा०?

(८८) शास्त्रों मे साधुओं के समुह को कुल गण संघ कहे हैं और तुम टोला कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(८९) मुहपत्ती में डोरा डालना और मुहके साथ बांधना सो किस शा०

(९०) ओघेकी डण्डी मर्यादा विनाकी लंबी रखनी सो किस शास्त्रानुसार'

(९१) वड़े बारां व्रत वैठके वोलने सो किस शास्त्रानुसार ?

(९२ छोटे वारां व्रत खड़ होके बोलने सो किस शास्त्रानुसार ?

(९३) जब नमुत्थुणं कहना तब पहिले थइ थूइ तथा नमस्कार नमुत्थुणं कहना सो किस शास्त्रानुसार?

(९४) नदी उतरके बेले तेलेका दंड लेना सो किस शास्त्रानुसार ?

(९५) रस्तेमें नदी आती होवे तो दो चार कोसके फेर में जाना। परंतु नदी नहीं उतरनी सो किस शास्त्रानुसार ?

(९६) जंगल जाना तब खंडीये (कपडे के,टुकडे) से गुदा पोछनी सो किस शास्त्रानुसार ?

(९७) सामायिकमें सोहागण स्त्री पंचरंगी मुहपत्ती बांधे, और विधवा एक रंगी बांधे, सो किस शास्त्रानुसार ?

(९८) दीवाली के दिनोंमें उत्तराध्ययन सुनाना सो किस० ?

(९९) भगवान महावीर स्वामीने दीवाली के दिन उत्तराध्ययन कहा कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(१०१) ओघेके ऊपर डोरेके तीन बंधन देने सो किस० ?

(१०२) ओघेकी दशियों में जंजीरी पावना सो किस० ?

(१०३) रजोहरण मोंढे (कंधे) पर डालके विहार करना सो किस ?

(१०३) प्रथम बड़ा साधु पांचपदकी खमावना करे पीछे छोटे साधु करे सो किस शास्त्रानुसार ?

(१०४) कंडरीकने एक हजार वर्ष तक बेले बेले पारणा किया कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(१०५) गोशालेके ११ लाख श्रावक कहतेहो सो किस० ?

(१०६) साधु चोली समान और गृहस्थी दावन समान सो किस० ?

(१०७) पडिकमणा आया पीछे बड़ी दीक्षा देनी सो किस० ?

(१०८) सोलां दिनकी अथवा तेरां दिनकी पाखी नहीं करनी सो किस शास्त्रानुसार ?

(१०९) पांचवें आरेके अंतमें चार अध्ययन दशवैकालिकके रहेंगे ऐसे कहते हो सो किस शास्त्रानुसार ?

(११०) पूनीया श्रावक की सामायिक कहते हो सो किस०

(१११) बेलेसे उपरांत पारिठ्ठावनीया आहार नहीं देना सो किस० !

(११२) सूत्रोंका त्याग कर देना, अपनी निश्राय नहीं रखने, सो किस शास्त्रनुसार ?

(११३) छोटी पूंजणीं रखनी सो किस शास्त्रानुसार ?

(११४) पोथीपर रंगदार डोरा नहीं रखना कहते हो सो किस० !

(११५) आप चिट्ठी नहीं लिखनी, गृहस्थी से लिखाना सो किस शास्त्रा०

(११६) कपड़े सज्जीसे नहीं धोने, पानीसे धोने सो किस० !

(११७) ध्यान पार कर मन चला, वचनचला काया चली, कहते हो सो किस०

(११८) पशमका कपड़ा नहीं लेना सो किस० * ?

(११९) कई जगह श्रावक पडिकणेमें श्रमणसूत्र कहते हैं सो किस शास्त्रा-नुसार, क्योंकि श्रमणसूत्र में तो साधुके पांच महाव्रत और गोचरी वगैरह की आलोयणा है ॥

(१२०) कई जगह ढूंढक श्रावक सामायिक बांधु ऐसे कहते हैं सो किस०

(१२१) विहार करने के बदले उठे कहते हो सो किस० ?

(१२२) एक जना लोगस्स पढ़लेवे और सर्व का काउसग्ग हो जावे सो०

(१२३) पर्यूषणापर्व में अंतगड़दशांग सूत्र वांचना सो किस० ?।

(१२४) कई जगह कल्पसूत्र वांचते हो और मानते नहीं हो सो सो किस०

(१२५) कई जगह पर्यूषणामें गोशालेका अध्ययन वांचते हो सो किस०

(१२६) कोई रिख मरजावे तो पुस्तक वगैरह गृहस्थी की तरह हिस्से करके वांटलेते हो सो किस शास्त्रानुसार ? दृष्टान्त—लींबड़ी में देवजी रि-खके बहुत झगड़े के बाद चारां हिस्से में वांटा गया है ॥

(१२७) धोलेरा तथा लींबड़ी वगैरह में पैसा वगैरह डालने के भंडारे बनाये है सो किस शास्त्रनुसार ? †

(१२८) धोलेरा में वाड़ी बनाई सो कि० ?

ऊपर के प्रश्न ढूंढकोंके आचार वगैरह के संबंध में लिखे हैं इनपर विचा र करने से प्रगटपणे मालूम होगा कि इनका आचार व्यवहार जैन शास्त्रों से विरुद्ध । है

सुज्ञजनो ! संवेगी जैन मुनि देश विदेश में विचरते हैं, तिन के उपकरण और क्रिया वगैरह प्रायःएक सदृश ही होती है,और ढूंढको के मारवाड़, मेवाड़ पंजाब, मालवा, गुजरात, तथा काठियावाड़ वगैरह देशों में रहने वाले रिखों

---

* लुधीहाना नगर में निकाले ढूंढियों के नूतन ६२ बोलो में लिखा है कि "पशम का कपड़ा दिन में नहीं ओढना रातकी बात न्यारी" ॥

† पंजाब देश शहर हुशियारपुरमें संवत् १९४८ के माघ महीने में पुस्तक के भंडारे के नाम से रुपये एकत्र किये थे जिस में कितनेक बाहिर नगर के लोग पीछे से भेजने को कहगए थे कितनेकने उसी वक्त दे दिये थे, अब सुनते हैं कि दे जाने वाले पश्चातापकरते हैं, और भेजने वाले मौनकर बैठे है और लेने वाले नाई और भाई दोनों को हजम कर गये हैं ॥

(ढूंढक साधुओं) के उपकरण, पोसह, प्रतिक्रमण वगैरह का विधी और क्रिया वगैरह प्रायः पृथक् पृथक् ही होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि क्रिया वगैरह स्वकपोल कल्पित है परन्तु शास्त्रानुसार नहीं है।

ढूंढक लोक मिथ्यात्वके उदय से बत्तीस ही सूत्र मान के शेष सूत्र पंचांगी तथा धर्म धुरंधर पूर्वधारी पूर्वाचार्यों के बनाये ग्रन्थ प्रकरण वगैरह मानते नहीं हैं तो हम उन (ढूंढकों) को पूछते है कि नीचे लिखे अधिकारों को तुम मानते हो, और तुमारे माने बत्तीस सूत्रों के मूल पाठमें तो किसी भी ठिकाने नहीं है तो तुम किसके आधार से यह अधिकार मानते हो ?

बत्तीस सूत्रोंके बाहिरके जो जो बोल ढूंढिये मानते हैं वे बोल यह हैं

(१) जंबू स्वामी आठ स्त्री ॥

(२) पांचसौ सत्ताईस की दीक्षा

(३) महावीर स्वामीके सत्ताईस भव।

(४) चंदनबालाने उड़दके बाकुले विहराए।

(५) चंदनबाला दधिवाहन राजाकी बेटी।

(६) चंदनबाला धन्ना शेठ के घर रही।

(७) चंदनबालाने छे महीने का पारणा कराया ॥

(८) संगम देवताका उपसर्ग।

(९) श्रीमहावीर स्वामी के कान में कीले ठोके।

(१०) श्रीमहावीरस्वामी ने (१४) चौमासे नालंदे के पाड़े कीए।

(११) श्रीमहावीरस्वामी को पूरण शेठने उड़दके बाकुलेदीने

(१२) श्रीमहावीरस्वामी से गौतमने वाद किया।

(१३) श्रीमहावीरस्वामीने चंडकोसीया समझाया।

(१४) श्रीमहावीरस्वामीने मेरुपर्वत कंपाया।

(१५) चेड़ा राजाकी सातों बेटी सती।

(१६) अभयकुमारने महिल जलाए।

(१७) श्रेणिक राजा चार बोल करे तो नरक में न जावे।

(१८) श्रेणिक के समझाने को भगड़बंब बनायाने

(४८) सत्ताधिकार १४८ प्रकृतिका ।
(४९) दश प्राण ।
(५०) जीवके ५६३ भेदकी बड़ी गतागती ।
(५१) बासठीये की रचना ।
(५२) भृगुपुरोहितादि के पूर्व जन्मका वृत्तान्त ।
(५३) भृगुपुरोहितने अपने बेटोंको बहकाया
(५४) रामायणका अधिकार ।
(५५) श्रीगौतमस्वामी देव शर्मा को प्रति बोधने वास्ते गये
(५६) पैंतीस बाणी न्यारी न्यारी ।
[५७] अरिहंत के बारां गुण ।
[५८] आचार्य के छत्तीस गुण ।
[५९] उपाध्याय के पच्चीस गुण ।
[६०] सामायिकके ३२ दोष ।
[६१] काउसग्गके १९ दोष ।
[६२] श्रावकके २१ गुण ।
[६३] लोक १४ रज्जु प्रमाण ।
[६४] पहली नरक १ रज्जु की ।
[६५] दूसरी नरक से एक एक रज्जु की वृद्धि ।
[६६] सम्यक्त्वके ६७ बोल ।
[६७] पाखी पडिक्कमणे में बारह लोगस्स का काउसग्ग करना ।
[६८] चौमासी पडिकमणेमें बीस लोगस्सका काउस्सग करना ।
[६९] संवच्छरी को ४० लोगस्सका काउसग्ग करना ।
[७०] संवच्छरी को पैंठका तेला ।
[७१] पातरे लाल काले धोले रंगने ।
[७२] रोज पडिकमणेमें चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना ।
[७३] मरुदेवी माता हाथी के हौदे में मोक्ष गई ।
[७४] ब्राह्मी सुंदरी कुमारी रही ।
[७५] भरत बाहुबलका युद्ध ।
[७६] दश चक्रवर्त्ति मोक्ष गये ।

(१०५) रेवतीने कोलापाक वहराया।

(१०६) श्रीपार्श्वनाथ की स्त्री का नाम प्रभावती।

(१०७) श्रीमहावीरस्वामी की बेटी को ढंक नामा श्रावकने समझाया

(१०८) भगवानकी जन्मराशि ऊपर दो हजार वर्षका भस्मग्रह

(१०९) भगवानके निर्वाणसे दीवाली।

(११०) हस्तपाल राजा वीनती करे चरम चौमासा यहां करो

(१११) सालिभद्रने पूर्व जन्म में खीरका दान दिया

(११२) कयवन्ना कुमारकी कथा

(११३) अभयकुमारकी कथा

(११४) जंबूस्वामी की आठ स्त्रियोंके नाम

(११५) जंबूकुमारका पूर्वभवमें भवदेव नाम और स्त्रीका नागीला नाम

(११६) जंबूकुमारके माता पिताका नाम धारणी तथा ऋषभदत्त

(११७) अठारह नाते एक भव में हुए तिसकी कथा॥

(११८) जंबूकुमारकी स्त्रियोंने आठ कथा कही॥

(११९) जंबूकुमारने आठ कथा कही॥

(१२०) प्रभवा पांचसौ चोरों सहित आया।

(१२१) जंबूकुमारके हाथ जे मे ९९ क्रोड़ सुनैये आये।

(१२२) सीता सती को रावण हरके लेगया।

(१२३) रावण के भाइयों का नाम कुंभकरण विभीषण।

(१२४) रावणकी बहिनका नाम सुर्पनखा।

(१२५) रावणका बहनोई खरदूषण।

(१२६) रावणकी राणीका नाम मंदोदरी।

(१२७) रावण के पुत्र का नाम इंद्रजीत।

(१२८) रावणकी लंका सोनेकी।

[१२९] पवनजय तथा अंजना सतीका पुत्र हनुमान और इनका चरित्र

[१३०] लक्ष्मणजीकी माता का नाम सुमित्रा।

[१३१] सीताने धीज करी।

[१३२] जरासंधकी बेटी जीवजसा।

[१३३] जराविद्या नेमिनाथ के चर्ण जलसे भाग गई।

[१३४] कुंतीका बेटा कर्ण।

[१३५] पांडवोंने जूएमें द्रोपदी हारी।

[१३६] वसुदेवकी ७२००० स्त्री।

(१३७) वसुदेव पूर्वभवमें नंदिषेण था और तिसनेसाधुकी वैयावच्च करी

(१३८) हरकेशी मुनी का पूर्वभव।

(१३९) पांचवें आरेमें सौ सौ वर्षे ६ महीने आयु घटे।

(१४०) पांचवें आरेका जव (जौं) का आकार।

(१४१) पांचवें आरे लगते १२० वर्षका आयु।

(१४२) संपूर्ण पदवी द्वार।

(१४३) भरतजी की आरिसे भवनमें अंगूठी गिरी।

(१४४) भरतजीको देवता ने साधु का भेष दिया।

(१४५) साधुका भेष देखकर राणीयां हसने लगीं।

(१४६) श्रीऋषभदेवजीने पारणे में १०८ घड़े इक्षु रसके पीए।

(१४७) मरुदेवी माता ने ६५००० पीढ़ीयां देखीं।

(१४८) मरुदेवी माता को रोते रोते आंखों में पड़ल आगए।

(१४९) श्रीऋषभसेन तथा श्रेयांस कुमारका पूर्वभव।

(१५०) भरतजी ने पूर्वभवमें पांचसौ मुनियोंको आहार लाकर दिया।

(१५१) बाहु बलिने पूर्वभवमे पांच सौ मुनियों की वैयावच्च करी।

(१५२) श्रीऋषभदेवजीने पूर्वभवमें बैलों को अंतराय दीना इस वास्ते एक वर्ष तक भूखे रहे।

(१५३ प्रद्युम्न कुमार हरा गया।

(१५४) शांब कुमारका चरित्र।

(१५५) जरासंधके काली कुमारादि पांचसौ बेटे यादवों के पीछे आए॥

(१५६) यादवों की कुलदेवीने काली कुमार छला।

(१५७) रावण चौथी नरक में गया।

(१५८) कुंभकर्ण तथा इंद्रजीत मोक्ष गए।

(५५९) कौरव पांडवोंका युद्ध।

(१६०) रहनेमिने ५० स्त्रियां त्यागी * ।

(१६१) चेड़ाराजा की पुत्री चेलणाने जोगियों को जुत्तियां कतरके खिलाई

(१६२) शालिभद्रकी ३२ स्त्रियां ।

(१६३) शालभद्रकी माताका नाम भद्रा ।

(१६४) शालिभद्रके पिताका नाम गोभद्र ।

(१६५) शालिभद्रकी वाहिन सुभद्रा ।

(१६६) शालिभद्र का बहनोई धन्ना ।

(१६७) शालिभद्र रोज एक एक स्त्री छोड़ता था ।

(१६८) धन्ना जी की आठ स्त्रीयां ।

(१६९) धन्ना जी ने एकही दिन में आठ स्त्रियां त्यागी

(१७०) धन्ना और शालिभद्र संथारा किया ।

(१७१) संथारेकी जगह पर शालिभद्रकी माता गई ।

(१७२) धन्ना जी ने आंख नहीं टमकाई सो मोक्ष गया ।

(१७३) शालिभद्र ने आंख टमकाई सो मोक्ष नहीं गया ।

(१७४) एवंती सुकुमालका चरित्र ।

(१७५) विजय शेठ और विजया शेठाणी का अधिकार ।

(१७६) प्रभुके निर्वाण बाद ९८० वर्ष सूत्र लिखे गये ।

(१७७) बारां वरसी काल पड़ा ।

(१७८) चंद्रगुप्तराजा को सोला स्वप्न आए।

(१७९) पांचवें आरे के छेहड़े दुप्पसह साधु।

(१८०) पांचवें आरे के छेहड़े फल्गुश्री साध्वी ।

(१८१) पांचवें आरे के छेहड़े नागील श्रावक ।

(१८२) पांचवे आरेके छेड़े सत्य श्रीश्राविका

(१८३) एक आर्या [साध्वी महाविदेहसे मुहपत्ती लेआई

१८४ थूलिभद्र वेश्याके रहा ।

(१८५) सिंह गुफा वासी साधु नेपाल देशसे रत्नकंबल लाया।

---

* कितनेक ५०० भी कहते हैं

(१८६) दिगंबर मत निकला
(१८७) विष्णु कुमार का संबंध।
(१८८) सलाका, प्रतिसलाका, महासलाका और अनवस्थित इन चार प्यालोंका अधिकार।
(१८९) बीस विहरमानका अधिकार।
(१९०) दृश प्रकार का कल्प।
(१९१) जंबूस्वामी के निर्वाण पीछे दश बोल व्यवच्छेद हुए।
(१९२) गौतमस्वामी तथा अन्य गणधरोंका परिवार।
(१९३) अठावीस लब्धियों के नाम तथा गुण।
(१९४) असझाइयों का काल प्रमाण।
(१९५) बारह चक्री नव बलदेव नव वासुदेव, नव प्रतिवासुदेव, किस किस प्रभुके वक्त में और किस किस प्रभु के अंतर में हुए॥
(१९६) सर्व नारकियों के पाथडे अंतरे, अवगाहना तथा स्थिति
(१९७) सीझना द्वार बड़ा।
[१९८] नरक की ९९ पड़ताला [प्रतर]।
[१९९] जंबूस्वामी की आयु।
[२००] देवलोक की ६२ पड़तालां।
[२०१] पदवीको पैठ का मत।
[२०२] लोच कराके सब साधुओं को वंदना करनी।
[२०३] दीक्षा देतां चोटी उखाड़नी।
[२०४] अधिक मास होवे तो पांच महीने का चौमासा करना अब बत्तीस सूत्रों में जो जो बोल कहे हैं और ढूंढक मानते नहीं हैं, तिन में से थोड़े, बोल निष्पक्ष पाती, न्याय वाले, भगवान् की वाणी सत्य मानने वाले, और सुगति में जानेवाले भव्य जीवों के ज्ञानके वास्ते लिखते है॥

[१] श्रीप्रश्नव्याकणर सूत्रके पांचवें संवरद्वारमें साधुके उपगरण भगवान् ने कहे है जिसका मूल पाठ अर्थ सहित प्रथम लिख चुके अब विचारना चाहिये कि यदि ढूंढक स्वलिंगी हैं तो पुर्वोक्त भगवत्प्रणीत उपगरण क्यों नहीं रखते हैं?जेकर अन्यलिंगी हैं तो गेरु के रंगे कपड़े रखने चाहिये, जिससे भोले

लोक फंदेमें फंसे नहीं, और जेकर गृहस्थी हैं तो टोपी पगड़ी प्रमुख रखनी चाहिये

[२] श्रीनिशीथ सूत्र के पांचवें उद्देशे में कहाहै कि विनाप्रमाण रजोहरण रखे, अथवा रखने वालेको सहायता देवे तो प्रायश्चित्त आवे, और ढूंढीयोंका रजोहरण शास्त्रोक्त प्रमाण सहित नहीं है।

श्रीनिशीथसूत्र का पाठ यह है

जे भिक्खु अइरेग पमाणरय हरणं धरेइ धरंतं वा साइज्जइतं सेवमाणे आवज्जइ मासिय परिहारठाणं उग्घाइयं ॥

[३] श्रीनिशीथसूत्र के१८वें उद्देशे में नये कपड़े को तीन पसली रंग देना कहा है, ढूंढक नहीं देते हैं।

पाठोयथा

जे भिक्खु णवएमेवत्थे लद्धे त्तिकट्टु बहुदिवसिएणं लोधेण वा कक्केण वा णहाणवापउम चुणेण्ण वा वणेण्ण वा उल्लो लेज्ज वा उवट्टेज्ज वा उल्लोलंतं वा उवट्टंतं वा साइज्जइ ॥

[४] श्रीउत्तराध्यन सूत्र के २६ वें अध्ययन में पडिलेहणाका विधी कहा है उस मुजिब ढूंढक नहीं करते है ॥

[५] श्रीभगवती, आचारांग, दशवैकालिक प्रमुख सूत्रों में डंडा रखना कहाहै, ढूंढक रखते नहीं है ॥

श्रीभगवती सूत्र शतक ८ उदेश ६ में कहा है- यतः

एवं गोच्छग रयहरणं चोलपट्टग कंवल लठी संथारग वत्तव्वा भाणियव्वा ॥

[६] श्रीआवश्यक प्रमुख सूत्रों में पच्चक्खाण के आगार कहे है, ढूंढीये आगार सहित पच्चाखाण नहीं कराते हैं *

---

* श्रीठाणाग सूत्र के दशवें ठाणे में भी आगार साहित पच्चक्खाणा लिखा है।

[७] श्रीभगवती सूत्र में निर्विशेष माननी कही है, ढूंढक नहीं मानते हैं

[८] श्रीभगती सूत्र में निर्युक्ति माननी कही है. ढूंढक नहीं मानते हैं

[९] सूत्रों में साधु के रहनेके मकान का नाम उपाश्रय कहा है, और ढूंढकों ने मन· कल्पित थानक नाम रख लिया है

[१०] श्रीअनुयागद्वार सूत्रमें उज्वल वस्त्र पहरने वाले को भ्रष्टाचारी द्रव्य आवश्यक करने वाला कहा है. और ढुंढक उज्वल वस्त्र पहरते है।

[११] सूत्र में ग्रहस्थी को आहार दिखाना मना करा है और ढूंढक घर घर में दिखाते फिरते हैं।

[१२] श्रीआवश्यक सूत्र में अभ्भुठ्ठिउ उमिकी पट्टी पढनी कही हैं. ढूंढक नहीं पढते है।

[१३] श्रीसमवयांग सूत्र में (२५) बोल वंदना में करने कहे है, ढुंढक नहीं करते हैं।

[१४] श्रीनंदीसूत्र में १४००० सूत्र कहे है. ढूंढिये नहीं मानते है, ऊपर लिखे मूजिब अधिकार सूत्रोंमें कहे है. इनकी भी ढूंढकों को खबर नहीं मालूम देती है, तो फेर इन को शास्त्रों के जाणकार कैसे मानीए ?

अब कितनेक अज्ञानी ढूंढक ऐसे कहते है,कि हमतो सूत्र मानते है निर्युक्ति भाष्य, चूर्णि, टीका नहीं मानते है।

इसका उत्तर

(१) सूत्र में कहा है किः—"अत्थं भासेइ अरहा सुत्तं गुत्थंति गणहरा निउणा" ॥

अर्थ—सूत्र तो गणधरोंके रचे हैं और अर्थ अरिहंतके कहे है तो सूत्र मानना और अर्थ बताने वाली निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका नहीं माननी यह प्रत्यक्ष जिनाज्ञा विरुद्ध नहीं है ? जरूर है

(२) श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है कि व्याकरण पढे विना सूत्र वांचे तिस को मृषा बोलने वाला जाणना सो पाठ यह है,

नामक्खाय निवाय उवसग्ग ताद्धिय समास संधि पय हेउ जोगिय उणाइ किरिया विहाण धाउसर विभित्ति वन्नजुत्तं

तिकालं दसविहं पि सच्चं जह भणियं तह कम्मुणा होइ दुवा लस विहाय होइ भासा वयणंपिय होइ सोलस विहं एवं अरिहंत मणुन्नायं समिक्खियं संजएणं कालंमिय वत्तव्वं

अर्थ—नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित समास, संधि पद, हेतु यौगिक, उणादि, क्रिया, विधान, धातु, स्वर, विभक्ति वर्ण युक्त, तीन काल दश प्रकार का सत्य, बारां प्रकार की भाषा, सोलां प्रकारका वचन जाणना, इस प्रकार अरिहंतने आज्ञा करी है तेसे सम्यक् प्रकार से जानके, बुद्धि द्वारा विचार के साधुने अवसर अनुसार बोलना ॥

इस प्रकार सूत्र में कहाहै तोभी ढूंढीये व्याकरण पढे विना सूत्र बांचतेहैं, तो अब विचारणा चाहिये, कि पूर्वोक्त वस्तुओंका ज्ञान विना व्याकरण के पढे कदापि नहीं हो सक्ता है और व्याकरण का पढ़ना ढूंढीये अच्छा नहीं समझते है, तो पूर्वोक्त पाठका अनादर करनेसे जिनाज्ञा के उत्थापक इनको समझना चाहिये कि नहीं ? जरूर समझना चाहिये ॥

[३] श्रीसमवायांग सूत्र तथा नंदिसूत्र में कहा है कि:—

आयारेणं परित्ता वायणा संखिज्जा अणु ओगदारा संखिज्जा वेढा संखिज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तिओ संखिज्जाओ पडिवत्तिओ संखिज्जाओ संघयणीओ इत्यादि ॥

यद्यपि सूत्रोंमें कहा है तोभी ढूंढक निर्युक्ति प्रमुखको नहीं मानते हैं, इस वास्ते येह सूत्रों के विराधक हैं ॥

४ श्रीठाणांग सूत्रके तीसरे ठाणेके चौथे उद्देशे में सूत्र प्रत्यनीक, अर्थ प्रत्यनीक और तदुभय प्रत्यनीक एवं तीन प्रकार के प्रत्यनीक कहे हैं—यत:—

सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ति सुत्ति पडिणीए अत्थपडिणीए तदुभयपडिणीए ॥

ढूंढक इस प्रकार नहीं मानते है इस वास्ते येह जिन शासन के प्रत्यनीक हैं ॥

(५) श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि जो निर्युक्ति न माने तिस को अर्थ प्रत्यनीक जाणना ढूंढक नहीं मानते है, इसवास्ते येह अर्थ प्रत्यनीक हैं ॥

६ श्रीअनुयोग द्वार सूत्र में दो प्रकार का अनुगम कहा है यतः-

सुत्ताणुगमे निज्जुत्ति अणुगमेय-तथा-निज्जुत्ति अणु-गमेतिविहे पण्णत्ते उवघाय निज्जुत्ति अणुग मेइत्यादि तथा सुद्देसे निद्देसे निग्गमेखित्तकाल पूरिसय । इत्यादि दोगाथाहैं

ढूढिये पंचांगीको नहीं मानते हैं तो इससूत्र पाठका अर्थ क्या करेंगे ?

७ श्रीभगवती सूत्र के २५ में शतक के तीसरे उद्देशेमें कहा है- किः-

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्ति मिस्सिओ भणिओ तइओय निरविसेसो । एस विही होइ अणु ओगो *॥१॥

अर्थ-प्रथम निश्चय सूत्रार्थ देना दूसरा निर्युक्ति सहित देना और तीसरा निर्विशेष(संपूर्ण)देना यह विधि अनुयोग अर्थात् अर्थ कथनकी है-इस सूत्र पाठ से तीसरे प्रकार की व्याख्यामें भाष्य चूर्णि और टीका इनका समावेशहोता है और ढूढिये नहीं मानते हैं तो पूर्वोक्त पाठ को कैसे सत्य कर दिखावेंगे ?

८ श्रीसूयगडांग सूत्रके २१ में अध्ययन मे कहा है-किः-

अहागडाइं भुंजंति अण्ण मण्णे सकम्मुणा उवलित्ते वियाणिज्जा अणुवलित्तेतिवा पुणो ॥ १ ॥

एएहिं दोहिंठाणेहिं ववहारो न विज्जइ एएहिं दोहि ठाणेहिं आणायारं तु जाणए ॥ २ ॥

ढूंढिये टीकाको नहीं मानते है तो इन दोनों गाथाओंका क्या करेंगे ?

कितनेक कहते है कि टीका में परस्पर विरोध है इस वास्ते हम नहीं

---

* श्रीनंदिसूत्र में भी यह पाठ हैं ॥

मानते हैं इसका उत्तर-यदि शुद्ध परंपरागत गुरुकी सेवा कर के तिनके समीप अध्ययन करें तो कोइ भी विरोध न पड़े, और जेकर विरोधके कारण से ही नहीं मानना कहते हो, तो बत्तीस सूत्रों के मूल पाठमें भी परस्पर बहुत विरोध पडते हैं-जैसे किः-

(१) श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ति सूत्रमें ऋषभ कूटका विस्तार मूल में आठ योजन, मध्यमें छी योजन, और ऊपर चार योजन कहा है, फेर उसीमें ही कहा है कि ऋषभ कूटका विस्तार मूलमें बारां योजन मध्यमें आठ योजन, और ऊपर चार योजन है बताइये एक ही सूत्र में दो बातें क्यों ?

(२) श्रीसमवायांग सूत्रमें श्रीमल्लिनाथ प्रभुके (५७००) मन पर्यवज्ञानी कहे हैं, और श्रीज्ञातासूत्रमें (८००) कहे हैं, यह क्या ?

(३) श्रीसमवायांग सूत्रमें श्रीमल्लिमाथजीके (५९००) अवधि ज्ञानी कहे हैं और श्रीज्ञातासूत्रमें (२०००) कहे है सो क्या ?

(४) श्रीज्ञातासूत्रमें श्रीमल्लिनाथजीकी दीक्षाके पीछे ६ मित्रों की दीक्षा लिखी है, और श्री ठाणांगसूत्रमें श्रीमल्लिनाथजी के साथ ही लिखी है सो क्या ?

(५) श्रीउत्तराध्ययन सूत्रके ३३ में अध्ययनमें वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्तकी कही है, और श्री पन्नवणा सूत्रके ३३ में पद में बारां मुहूर्तकी कही है, सो क्या ?

इस तरह अनेक फरक हैं, जिनमें से अनुमान (९०) श्रीमद्यशोविजयजी कृत वीरस्तुतिरूप हुंडीके स्तवन के बालावबोध में, हंडित श्रीपद्मविजयजीने दिखलाए है. परंतु यह फरक तो अल्प बुद्धिवाले जीवोंके वास्ते हैं, क्योंकि कोई पाठांतर. कोई अपेक्षा कोई उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई नयवाद, कोई विधिवाद को चरितानुवाद और कोई वाचनाभेद, हैं, सो गीतार्थ ही जानते हैं, जिनमेंसे बहुतसे फरकतो निर्युक्ति. टीका प्रमुखसे मिटजाते है क्योंकि निर्युक्तिके कर्त्ता चतुर्दश पूर्वधर समुद्र सरीखी बुद्धिके धनी थे, ढूंढकों जैसे मूढमति नही थे ?

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के अनाचारी. भ्रष्ट दुराचारी. कुलिंगीयोंको. जैनमतके चतुर्विध संघक तथा देव गुरु शास्त्रके निंदकों को, तथा दैत्य सरिखे रूप धारनेवाले स्वच्छंदमतियोंको. साधु मानने और इनके धर्मकी उदय २ पूजाकहनी तथा लिखनी महामिथ्या दृष्टियों का काम है

और जो सूयगडांग सूत्रकी गाथा लिखके जेठेने अपनी परंपराय बांधी है

सो असत्य है क्योंकि इन गाथायों में सिद्धांतकारने ऐसा नहीं लिखा है कि पंचम काल में मुहबंधे ढूंढक मेरी परंपराय में हावेंगे इसवास्ते इन गाथायोंके लिखनेसे ढूंढक पंथ सच्चा नहीं सिद्ध होता है,परंतु ढूंढक पंथ वेश्यापुत्र तुल्य है यह तो इस ग्रंथमें प्रथम ही साबित करचुके है ?

॥ इति प्रथम प्रश्नोत्तर खंडनम् ॥

(२) आर्यक्षेत्र की मर्यादा विषय ।

दूसरे प्रश्नोत्तर में जेठा रिख लिखता है कि "तारा तंबोल में जैनी जैनमत के मंदिर मानते है" उसपर श्रीबृहत्कल्प सूत्र का पाठ लिख के आर्य्यक्षेत्र की मर्यादा बताके पूर्वोक्त कथनका खडन किया है; परन्तु जेठे का यह पूर्वोक्त लिखना महा मिथ्या है, क्योंकि जैनशास्त्रों में तारातंबोल में जैनमत, वा जैन मन्दिर लिखे नहीं हैं,और हम इस तरह मानते भी नहीं है यह तो जेठे के शिर में विनाही प्रयोजन खुजली उत्पन्न हुई है, इसवास्ते यह प्रश्नोत्तर ही झूठा है और श्रीबृहत्कलपसूत्रका पाठ तथा अर्थ लिखा है सो भी झूठा है क्योंकि प्रथम तो जो पाठ लिखा है सो खोटों से भरा हुआ है, और उसका जो अर्थ लिखा है सो महा भ्रष्ट स्वकपोल कल्पित झूठा लिखा है, उसने लिखा है कि 'दक्षिण में कोसंबी नगरी तक सो तो दक्षिण दिशा में समुद्र नजदीक है आगे समुद्र जगती तक ह समुद्र तो का क्या कारण रहा." अब देखिये जेठेकी मूर्खता ! कि कोशांबी नगरी प्रयाग के पास थी, जिस जगे अब कोसम ग्राम बसता है और आवश्यक सूत्र में लिखा है कि कोशांबी नगरी यमुना नदी के कनारे पर है जेठा मूढ़मति लिखता है कि कोशांबी दक्षिण देश में समुद्र के कनारे पर है, यह कोशांबी कौन से ढुंढक ने वसाइ है ? इससें तो अंग्रेज सरकार की ही समझ ठीक है कि जिन्होंने भी कोशांबी प्रयाग के पास लिखी है; इसवास्ते जेठे का लिखना सर्व झूठ है शेष अर्थ भी इसी तरह झूठे है ॥ इति ॥

(३) प्रतिमा की स्थिति का अधिकार ।

तीसरे प्रश्नोत्तर में जेठेने 'प्रतिमा असंख्याते काल तक नहीं रह सक्ती है,, तिस पर श्रीभगवती सूत्र का पाठ लिखा है, परन्तु तिस पाठ तथा अर्थ में बहुत खोट हैं; तथा इस लेखसें मालूम होता है कि जेठा महा अज्ञानी था, और दही के भुलावे कपास खाता था क्योंकि हमतो प्रतिमा का असंख्याते काल तक रहना देव साहाय्यसे मानते है, और श्रीभगती सूत्र में जो स्थिति

लिखी है सो देव साहाय्य विना स्वभाविक स्थिति कही है, और देव शक्ति तो अगाध है ॥

और ढूंढियेभी कहते हैं कि चक्रवर्ती छी खंड साध के अहंकार युक्त होके ऋषभकूट पर्वत ऊपर नाम लिखनेके वास्ते जाता है,वहां तिसपर्वत पर बहुतसे नाम दृष्टी गोचर होनेसे अपना अहंकार उतर जाता है; पीछे एक नाम मिटाके अपना नाम लिखता है अब विचार करो, कि भरत चक्री हुआ तब अठारां कोटा कोटि सागरो पमका तो भरतक्षेत्र में धर्म विरह था, तो इतने असंख्याते काल पहिलें हुए चक्रवर्तियो के कृत्रिम नाम असंख्याते काल तक रहे तो देव सानिध्यसें श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा श्रीअष्टापद तीर्थ वगैरह रहे इस में कुछ भी असंभव नहीं है, तथा श्रीजंबूद्वीप पन्नत्तिसूत्र में प्रथम आरे भरतक्षेत्रका वर्णन नीचे मूजिब है, :-

तीसेणं समए भारहेवासे तत्थ२बहवे वणराइओ पण्णत्ताओ किण्हाओ किण्हाभासाओ जावमणोहराओ रयमत्त छप्पय कोरग भिंगारग कोंडलग जीव जीवगणं दिमुहकविल पिंगल लखग कारंडक चक्कवाय कलहंस सारस अणेग सउणगण मिहुण विरियाओ सद्दुण्णत्तिए महुर सरणादि ताउ संपिडिय णाणाविहा गुच्छवावी पुरकारणी दीहियासु ॥

अर्थ-तिस समय भरतक्षेत्र में तहां बहुत वनराज है, कृष्ण कृष्णवर्णशोभा वत् यावत मनोहर है मद करके रक्त ऐसे भ्रमर,कोरक भींगारक,कोडलक जीव जीवक, नंदिमुख कपिल, पिंगल, लखग, कारंडक, चक्रवाक, कलहंस, सारस, अनेक पाक्षियोंके मिथुन (जोडे) तिनों करके सहित है वृक्ष मधुर स्वर करके इकठे हुए हैं, नानाप्रकारके गुच्छ बौडीयां पुष्करिणी, दीर्घिका वगैरह मे पक्षी विचरते हैं ॥

ऊपर लिखे सूत्रपाठमें प्रथम आरे भरतक्षेत्र में बौडी, पुष्करिणी प्रमुखका वर्णन किया है तो विचारो कि बौडी किसने कराई? शाश्वती तो है नहीं, क्योंकि सूत्रोंमें वे बौडीयां शाश्वती कही नहीं हैं और तिस काल मे तो युगलिये नव कोटाकोटि सागरोपम से भरतक्षेत्र में थे, उनको तो यह बौडी प्रमुख का करना है नहीं, तो तिस सें पहिले की अर्थात् नव कोटा कोटी सागरोपम जित ने असंख्यातकाल की वे बौडीयां रही, तो श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ की

प्रतिमा तथा अष्टापद तीर्थोपरि श्रीजिनमंदिर देव सानिध्यसें असंख्याते काल रहे इस में क्या आश्चर्य है ?

प्रश्नके अंतमें जेठा लिखता है कि "पृथिवीकायकी स्थिति तो बाइसहजार (२२०००) वर्ष की उत्कृष्टी है और देवतायों की शक्ति कोई आयुष्य वधाने की नहीं" इस तरां लिखनेसें लिखन वालोंने निः केवल अपनी मूर्खता दिखलाई है क्योंकि प्रतिमा कोई पृथिवीकायके जीवयुक्त नहीं है किन्तु पृथ्वीकायका दल है तथा जेठा लिखता है कि पहाडतो पृथ्वीके साथ लगे रहते हैं इसवास्ते अधिक वर्ष तक रहते है, परंतु उसमेंसे पत्थरका टुकड़ा अलग कया होवे तो बाइस हजार वर्ष उपरांत रहे नहीं' इस लेखसें तो वो पत्थर नाश होजाय अर्थात् पुद्गल भी रहे नहीं ऐसा सिद्ध होता है और इससें जेठे की श्रद्धा ऐसी मालूम होती है कि किसी ढूंढकका(१००)सौ वर्ष का आयुष्य होवे तो वो पूर्ण होए तिसका पुद्गलभी स्वयमेवही नाश होजाता है, उस को अग्निदाह करना ही नहीं पड़ता। ऐसे अज्ञानी के लेखपर भरोसा रखना यह संसार भ्रमणका ही हेतु है ॥ इति ॥

इति तृतीया प्रश्नोतर खंडनम् ॥

---

(४) आधाकर्मी आहार विषयिक

चौथे प्रश्नोत्तर में लिखा हैं कि 'देवगुरु धर्म के वास्ते आधाकर्मी आहार देने में लाभ है" जेठे ढूंढका यह लिखना निः केवल झूठ है, क्योंकि हमारे जैनशास्त्रों में ऐसा एकांत किसी भी ठिकाने लिखा नहीं है, और न हम इसतरह मानते हैं ॥

और जेठेने लिखा है कि 'श्रीभगवती सूत्र के पांच में शतक के छठे उद्देशे में कहा है कि जीव हणे, झूठ बोले, साधु को अनेषणीय आहार देवे, तो अल्प आयुष्य बांधे"यह पाठ सत्य है परन्तु इसपाठ में जीवहणे झूठ बोले यह लिखा है,सो आहार निमित्त समझना, अर्थात् साधु निमित्त आहार बनाते जो हिंसा होवे सो हिंसा और साधु निमित्त बनाके अपने निमित्त कहना सो असत्य समझना, तथा इस ही उद्देशेके इससें अगले आलावेमें लिखा है कि जीवद्-यापाले, असत्य न बोले साधु को शुद्ध आहार देवे, तो दीर्घ आयुष्य बांधे इस आलावे की अपेक्षा अल्प आयुष्य भी शुभबांधे अशुभ नहीं, क्योंकि इसही सूत्र के आठ में शतकके छठे उद्देशे में लिखा है कि-

समणोवा समणस्सणं भंते तहारुवं समणंवा माहणंवा अफासुएणं अणे सणिज्जेणं असणं पाणं जावपडिलाभे माणे किं कज्जइ ?

गोयमा ! बहुतरियासे निज्जारा कज्जइ अप्पतराएसे पावे कम्मे कज्जइ

अर्थ-हे भगवन् ! थतारूप श्रमण माहनको अप्राशुक अनेषणीय अशन पान वगैरह देनेसे श्रमणेपासकको क्या होवे ?

हे गौतम ! पूर्वोक्त काम करनेसे उसका बहुतर निर्जरा होवे,और अल्पतर पापकर्म होवे. अब विचारोकि साधु को अप्राशूक अनेषणीय आहारादि देनेसे अल्पतर अर्थात् बहुतही थोड़ा पाप, और बहुतर अर्थात् बहुत ज्यादा निर्जरा होवे तो बहुनिर्जरावाला ऐसा अशुभ आयुष्य जीव कैसे बांधे ? कदापि न बांधे परंतु ज्ञानावरणीय कर्म के प्रभाव से यह पाठ जेठे को दिखाईदिया मालूम नहीं होता है, क्योंकि उत्सूत्र प्ररूपक शिरोमणि, कुमतिसरदार जेठा इस प्रश्नोत्तर के अंतमें 'मांसके भोगी और मांस के दाता, दोनोंही नरकगामी होते हैं, तैसेही आधाकर्मीका भी जान लेना" इस तरां लिखता है, परन्तु पूर्वोक्त पाठमें तो अप्राशूक अनेषणीय दाता को बहुत निर्जरा करने वाला लिखा है, पृष्ट (१८) पंक्ति (१३) में जेठेने अप्राशूक अनेषणीयका अर्थ आधाकर्मी लिखा है, परन्तु आधाकर्मीतो अनेषणीय आहारके (४२) दूषणों में से एक दूषण है, क्याकरे अकल ठिकाने न होनेसे यह बात जेठकी समझ में आई नहीं मालूम देती है

तथा ढूंढिये पाट पातरे, थानक वगैरह प्रायः हमेशां आधाकर्मी ही वरतते हैं; क्योंकि इनके थानक प्रायः रिखोंके वास्ते ही होते हैं श्रावक उन में रहते नहीं हैं, पाटभी रिखोंके वास्ते ही होते हैं. श्रावक उनपर सोते नहीं हैं और पातरे भी रिखोंके वास्ते ही बनाने में आते हैं, क्योंकि श्रावक उनमें खाते नहीं है, तथा ढूंढिये अहीर, छीबे, कलाल, कुंभार, नाई, वगैरह जातियों का प्रायः आहार ल्याके खाते हैं, सो भी दोष-युक्त आहारका ही भक्षण करते हैं क्योंकि] श्रावक लोकतो प्रसंगसे दूषणों के जाणकार प्रायः होते हैं, परन्तु वे अज्ञानी तो इस बात को प्रायः स्वप्न मे भी नहीं जानते है, इस वास्ते जेठे के दीये मांसके दृष्टांत मूजिब ढूंढियों के रिखोंको और उनको आहार पानी वगैरह देने वालों को अनंता संसार परिभ्रमण करना पड़ेगा हाय!अफसोस!विचारे अनजान

लोक तुमारे जैसे कुपात्र को आहार पानी वगैरह देवें और उस में पुण्य समझें की स्थितितो उलटी अनंत संसार परिभ्रमणकी होती है तो उससे तो बेहतर है कि उन रिखों को अपने घर में आनेही न देवें कि जिससे अनंत संसार परिभ्रमण करना न पड़े ॥

और श्रीसूयगडांग सूत्र के अध्ययन (२१) में तथा श्रीभगवती सूत्र के शतक (८) में रोगादि कारण में आधाकर्मी आहार की आज्ञा है, कारण विना नहीं, सो पाठ प्रथम लिख आए हैं. जेठे ढूंढक ने यह पाठ क्योंकि नहीं देखा? भाव नेत्र तो नहीं थे, परंतु क्या द्रव्य भी नहीं थे!

तथा श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि रेवती श्राविकाने प्रभुका दाह ज्वर मिटा ने निमित्त बीजोरापाक कराया, और घोड़े के वास्ते कोलापाक कराया प्रभु केवलज्ञान के धर्ना ने तो अपने वास्ते बनाया बीजोरापाक लेना निषेध किया और कोलापाक लानेकी सिंहा अणगार को आज्ञा करी. वो लेआया, और प्रभु ने रागद्वेष रहित पणे अंगीकार कर लिया, परन्तु बीजोरापाक प्रभु निमित्त बना के रेवती श्राविका भावे तो "करेमाणे करे" की अपेक्षा विहराव चुकी थी.तो तिसने कोई अल्प आयुष्य बांधा मालूम नहीं होता है,किंतु तीर्थंकर गोत्र बांधा मालूम होता है *

इस वास्ते श्रीजैनधर्म की स्याद्वादशैलि समझे विना एकांत पक्ष खेंचना यह सम्यग्दृष्टि जीवका लक्षण नहीं है ॥ इति

(५) मुहपत्ती बांधने से सन्मूर्च्छिम जीवकी हिंसा होती है इस बावत ॥

पांचवें प्रश्नोत्तर में जेठेने "वायुकायके जीवकी रक्षा वास्ते मुहपत्ती मुंहको बांधनी" ऐसे लिखा है. परन्तु यह लिखना ठीक नहीं है क्योंकि मुंहसे निकलते भाषा के पुद्गलसे तो वायुकायके जीव हणे नहीं जाते हैं, और यदि मुख से निकले पवन से वे हणे जाते हैं, तो तुम ढूंढिये, काष्टकी, पाषाण की, या लोहे का चाहे कैसी मुहपत्ती बांधो, तो भी वायुकाय के जीव हने विना रहेंगे नहीं क्योंकि मुख का पवन बाहिर निकले विना रहता नहीं है, यदि मुखका पवन

---

* देखो ठाणांग सूत्र तथा समवायांग सूत्र ।

बाहिर निकले, पीछा मुख में ही जावे तो आदमी मरजावे, इस वास्ते यह निश्चय समझना, कि मुंहपत्ती जो है सो त्रस जीव की यत्ना वास्ते है, सो जब काम पड़े तब मुख वास्त्रिका मुख आगे देके बोलना श्रीओघनिर्युक्ति में कहा है यतः-

संपाइ मरयरेणुपमज्जणठावयंति मुहपोत्ति ॥ इत्यादि ॥

अर्थ-संपातिम अर्थात् मांखी मछरादि त्रस जीवोंकी रक्षा वास्ते जब बोले, तब मुख वस्त्रिका मुख आगे देकर बोले ॥ इत्यादि ॥

तथा जेठेने पूर्वोक्त अपने लेखको सिद्ध करने वास्ते श्रीभगवती सूत्र का पाठ तथा टीका लिखी है, सो निः केवल झूठ है, क्योंकि श्रीभगवती सूत्र के पाठ तथा टीकामें वायुकायका नाम भी नहीं है, तो फेर जेठमल मृषावादी ने वायुकायका नाम कहां से निकाला? तथा यह अधिकारतो शक्रेंद्रका हैं, और तुम ढूंढिये तो देवताको अधर्मी मानते हो तो फेर उसकी निरवद्य भाषा अर्नरूप क्योंकर मानी? जब देवताको तुमने धर्म करने वाला समझा, तो श्रीजिन प्रतिमा पूजनेसे देवयाको मोक्षफल जो श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है, सो क्यों नहीं मानते?

तथा ढुंढकों की तरां मुहपत्ती सारादिन मुंहको बांध छोड़नी किसी भी जैनशास्त्र में लिखी नहीं है, प्रथम तो सारादिन मुहपाटी बांधनी कुलिंग है, है, देखने में दैत्यका रूप दीखता है, गौयां, भैसां, बालक, स्त्रियां प्राय. देखके डरते हैं, कुत्ते भौंकते हैं, लोक मश्करी करते हैं, ऐसा बेढंगा भेष देख देखके कई हिंदु, मुसलमान, फिरंगी, बड़े बड़े बुद्धिमान् हैरान होते और सोचते हैं कि यह सांग है? तात्पर्य जितनी जैनधर्म की निंद्या जगत् में लोक प्रायः आजकाल करते हैं, सो ढूंढकोंने मुख पाटी बांध के ही कराई हैं, तथा ढूंढकों ने मुंहकेतो पाटी बांधी, परन्तु नाक, कान, गुदा, इनके ऊपर पाटी क्यों नहीं बांधी? इन द्वाराभी तो वायुकायके जीव भाफसे मरते होंगे? तथा शास्त्र में लिखा है कि जो स्त्री हिंसा करती होवे, तिसके हाथ से साधु भिक्षा लेवे नहीं, तब तो ढूंढकों की जिन आचिकायों ने मुख, नाक, गुदाके पाटी बांधी होवे तिन के ही हाथ से ढुंढियों को भिक्षा लेनी चाहिये, क्योंकि ना बांध ने से ढूंढीये हिंसा मानते हैं और मुख से निकले थूक के स्पर्शसे दो घड़ी बाद सन्मूर्च्छिम जीव जीव की उत्पत्ति शास्त्र में कही है, तबतो महा अज्ञानी ढूंढक मुंहपत्ती बांधके असंख्याते सन्मूर्च्छिम जीवों की हिंसा करते हैं, सो प्रत्यक्ष है ॥

तथा श्रीआचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंधके दूसरे अध्ययन क तीसरे उद्देशे में कहा है यत-

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा ऊसास माणेवा निसास-माणेवा कासमाणेवा छीयमाणेया जंभायमाणेवा उड्डुवाएवा वायणिसग्गे वा करेमाणे वा पुव्वामेव आसयंवा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता ततो संजयामेव ओसा सेज्जा जाव वायणि सग्गेवा करेज्जा ॥

भावार्थ----उच्छ्वास निश्वास लेते, खांसी लेते, छींक लेते उबासी लेते, डकार लेते, हुए साधुने हस्त करके मुंह ढांकना-अब विचारो कि मुंह बांधा हुआ होवे तो ढांकना क्या ? तथा जेठ ने लिखा है, कि "नाक ढांकना किसी भी जगह कहा नहीं है" तो मुख बांधना भी कहां कहा है, सो बताओ ॥

तथा शास्त्र में मुंहपत्ती और रजोहरण त्रस जीवकी यतना वास्ते कहे है, और तुम तो मुंहपत्ति वायुकाय की रक्षा वास्ते कहते हो तो क्या रजोहरण वायुकायकी हिंसा वास्ते रखते हो ? क्योंके रजोहरणतो प्रायः सारा दिन वारं वार फिरानाही पड़ता है, प्रश्नके अंत में जेठा लिखता है कि "पुस्तक की आ-शातना टालने वास्ते मुंहपत्ती कहते है, वे झूठ कहते है" जेठेका यह पूर्वोक्त लिखना असत्य है, क्योंकि खुले मुंह बोलने से पुस्तकों पर थूक पड़नेसे आशा तना होती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है * तथा जेठेने लिखा है कि "पुस्तक तो महावीर स्वामी के निर्वाण वाद लिखे गए है तो पहिलेतो कुछ पुस्तक की आशातना होनी नहीं थी" यह लिखना भी जेठ का अज्ञानुयुक्त है, क्योंकि अठारां लिपि तो श्रीऋषभ देवके समय से प्रगट हुई हुई है तथा तुमारे किस शास्त्र में लिखा है कि महावीरके निर्वाण बाद अमुक संवत् में पुस्तक लिखेगए हैं, इससे पहिले कोई भी पुस्तक लिखे हुए नहीं थे ? और यदि इससे पहिले बिलकुल लिखत ही नहीं थी तो श्रीठाणांग सूत्र में पांच प्रकार पुस्तक लेनेकी साधुको मनाकरी है सो क्या बात है ? जरा आंखें मीढके सोच करो ॥

॥ इति ॥

---

* पार्वती ढूंढकनी भी अपनी बनाई ज्ञान दीपका में लिखती है कि "पाठक लोकों को विदित हो कि इस परमोपकारी ग्रन्थ को मुख के आगे वस्त्र रखकर अर्थात् मुख ढापकर पढ़ना चाहिये क्योंकि खुले मुख से बोलने में सूक्ष्म जीवों की हिंसा होजाती है, और शास्त्र पर (पुस्तक पर) थूक पड़जाता है *

(६) यात्रातीर्थ कहे हैं तद्विषयिक

छट्ठे प्रश्नोत्तर में जेठेने भगवती सूत्र में से साधु का यात्रा जो लिखी है, सो ठीक है, क्योंकि साधु जब शत्रुंजय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करता है, तब तीर्थ भूमि के देखने से तप, नियम, संयम स्वाध्याय, ध्यानादि अधिक वृद्धिमान् होते है, श्रीज्ञाता सूत्र तथा अंतगड़ दशांग सूत्र में कहा है कि-जाव सित्तुंजे सिद्धा-इस पाठ से सिद्ध है कि तीर्थ भूमिका शुभ धर्म का निमित्त है,नहीं तो क्या अन्य जगह मुनियों को अनशन करने के वास्ते नही मिलतीथी ?

तथा श्रीआचारांग सूत्र की निर्युक्ति में घणे तीर्थोंकी यात्रा करनी लिखी है * और निर्युक्ति मानना श्रीसमवायांग सूत्र तथा श्रीनांदि सूत्र के मूलपाठ में कही है, परन्तु ढूंढिये निर्युक्ति मानते नहीं है इस वास्ते यह महा मिथ्या दृष्टि अनंत संसारी है ॥

---

* श्रीआचारांग सूत्रकी निर्युक्तिका पाठ यह है यतः—

दंसण णाण चरित्ते तव वेरग्गेय होइ पसत्था ।
जाय जहा ताय तहा लक्खण वोच्छं सलक्खणओ ॥ ४६ ॥
तित्थगराण भगवओ पवयण पावयणि अइसइढीणं
अहिगमण णमण दरिसण कित्तणओ पूयणा थुणणा॥४७॥
जम्माभिसेय णिक्खमण चरण णाणुप्पत्तीय णिव्वाणे ।
दियलोय भवणमंदर णंदीसर भोम णगरेसु ॥ ४८ ॥
अट्ठावय मुज्जंते गयग्गपएव धम्मचक्केय।
पास रहावत्तणयं चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ४९ ॥
गणियं णिमित्त जुत्ती संदिट्ठी अवितहं इमं णाणं ।
इय एगंत मुवगया गुणपच्चाइया इमे अत्था ॥ ५० ॥
गुणमाहप्पं इसिणाम कित्तणं सुरणरिंद पूयाय ।
पोराण चेइयाणियइइ एसा दंसणे होइ ॥ ५१ ॥

भावार्थ-भावना दो प्रकार की है, प्रशस्त भावना और अप्रशस्त भावना, तिनमें प्राणातिपात मृषावाद अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह तथा क्रोध, मान माया और लोभ में अप्रशस्त भावना जाननी।

यदुक्तं-"पाणवह मुसावाए अदत्तमेहुण परिग्गहे चेव।
कोहेमाणे माया लोभेय हवंति अपसत्था॥"

और दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप, वैराग्यादिक में प्रशस्त भावना जाननी तिन में प्रथम दर्शन भावना जिससें दर्शन (सम्यक्त्व) की शुद्धि होती है, उसका वर्णन शास्त्रकार करते है।

तित्थगराण भगवओ इत्यादि-

तीर्थंकर भगवंत, प्रवचन, आचार्यादि युगप्रधान, अतिशय ऋद्धि मंत केवलज्ञानी मनः पर्वज्ञानी अवधिज्ञानी, चौहद पूर्वधारी, तथा आमर्षौषध्यादि ऋद्धिवाले, इनके सन्मुख जाना, नमस्कार करना, दर्शन करना गुणोत्कीर्त्तन करना, गंधादिकसे पूजन करना, स्तोत्रादिक से स्तवन करना इत्यादि दर्शन भावना जाननी, निरंतर इस दर्शन भावना के भावनेसे दर्शन शुद्धि होती है, तथा तीर्थंकरों की जन्मभूमि में तथा निःक्रमण, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति, और निर्वाण भूमिमें, तथा देव लोक भवनों में मंदर (मेरुपर्वत) ऊपर, तथा नंदीश्वर आदि द्वीपोंमें, पाताल भवनों में जो शास्वते चैत्य है, तिनको में वंदना करता हूं तथा इसी तरह अष्टापद उज्जयंतगिरि (शत्रुंजय तथा गिरनार) गजाग्रपद (दशार्णकूट) धर्मचक्र तक्षशिला नगरी में, तथा अहिच्छत्रा नगरी जहां धरणेंद्रने श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की महिमा करी थी, रथावर्त्त पर्वत जहां श्रीवज्रस्वामी ने पादपोपगमन अनशन करा था, और जहां श्रीमहावीरस्वामी का शरण लेकर चमरेंद्र ने उत्पतन करा था, इत्यादि स्थानों में यथा संभव अभिगमन, वंदन, पूजन, गुणोत्कीर्त्त नादि क्रिया करने से दर्शन शुद्धि होती है, तथा यह गणित विषय में बीज गणितादि (गणितानुयोग) का पारगामी है, अष्टांग निमित्त का पारगामी है, दृष्टिपातोक्त नाना विध युक्ति द्रव्य संयोगका जानकार है, तथा इस को सम्यक्त्व से देवता भी चलायमान नहीं कर सकते है, इसका ज्ञान यथार्थ है जैसे कथन करे है तैसेही होता है इत्यादि प्रकार प्रावचनिक अर्थात् आचार्यादिक की प्रशंसा करने से दर्शन शुद्धि होती है इस तरह औरभी आचार्यादिके गुण महात्म्यके वर्णन करनेसे, तथा पूर्व महर्षियों के नामोत्कीर्तन करनेसे, तथा सुरेंनरेंद्रादिकी करी तिनकी पूजा का वर्णन करनेसे,

दो प्रकारके तीर्थ शास्त्र में कहे हैं(१)जंगमतीर्थ और (२) स्थावरतीर्थ साधु साध्वी, श्रविक और श्राविका चतुर्विध संघको कहते हैं और स्थावरतीर्थ श्रीशत्रुंजय, गिरनार, आबु अष्टापद सम्मेदशिखर, मेरुपर्वत, मानुषोत्तरपर्वत, नंदीश्वर द्वीप वगैरह हैं, और तिनकी यात्रा जंघाचारण मुनि भी करते है,और तीर्थ यात्रा का फल श्रीमहा कल्पादि शास्त्रों में लिखा है.परंतु जिसके हृदयको आंख नहोवे उसको कहा से दिखे और कौन दिखलावे ?

जेठा लिखता है कि 'पर्वत तो हड्डीसमान है वहां डुबी शीकारने वाला कोई नहीं है" वाह ! इस लेखसे तो मालूम होता है कि अन्य मतावलवी मिथ्या दृष्टियों की तरां जेठासी अपने मान भगवान् को फल प्रदाता मानता होगा ! अन्यथा ऐसा लेख कदापि न लिखता, जैनशास्त्रमें तो लिखा है कि जहां तीर्थ करोके जन्मादि कल्याणक हुए हैं सो सो भूमि श्रावकको प्रणामशुद्धिका कारण होनेसे फरसनी चाहिये-यदुक्तं ॥

निक्खमण नाण निव्वाण जम्मभूमीओ वंदइ जिणाणं ।
णय वसइ साहुजणविरहियम्मिदेसे बहु गुणेवि ॥ २३५ ॥

अर्थ-श्रावक जिनेश्वर संबंधी दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण और जन्म कल्याणक की भूमीको वंदन करे, तथा साधु के विहार रहित देश में अन्य बहुत गुणोंके होए भी वसे नहीं, यह गाथा श्रीमहावरिस्वामीके हस्त दीक्षित शिष्य श्रीधर्मदास गणिकी कही हुई है ॥

और जेठा लिखता है कि "संघ काढ़ने में कुछ लाभ नहीं है, और संघ काढ़ना किसी जगय कहा नहीं है" इसके उत्तर में लिखते हैं कि जैनशास्त्रो में तो संघ निकालना बहुत ठिकाने कहा है पूर्वकाल में श्रीभरतचक्रवर्त्ती,डंडवीर्य राजा, सगर चक्रवर्त्ति श्रीशांति जिन पुत्र चक्रायुध, रामचन्द्र तथा पांडवों वगैरहने और पांचवें आरे में भी जावडशाह, कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, बाहडमंत्री वगैरहने बडे आडंबर से संघ निकाल के तीर्थ यात्रा करि हैं और

तथा निरंतर चत्यांकी पूजा करनेसे इत्यादि पूर्वोक्त क्रिया करने वाले जीवकी तथा पूर्वोक्त क्रिया की वासना से वासित है अंतः करण जिसका उस प्राणी की सम्यक्त्व शुद्धि होती है यह प्रशस्त दर्शन (सम्यक्त्व) संबंधी भावना जानना. इति ॥

सो कल्याण कारिणी शुद्ध परंपरा अब तक प्रवर्त्तती है, तीर्थ यात्रा निमित्त संघ निकलते हैं, श्रीजैनशासन की प्रभावना होती है, शीशा आंखों वालों को उपयोगी होता है, अंधेको नहीं पालणपुर और पाली में दही, छाछ, खा पीके तपस्वी नाम धारन करन हारे ऋखों की यात्रा करने वास्ते हजारों आदमी चौमासे के दिनों में सवजी निगोद वगैरह के अनंते जीवोंकी हानि करते गये थे और अद्यापि पर्यंत घणे ठिकाने लोक ढूंढिये और ढूंढनियों के दर्शनार्थ जाते है, तथा लीवड़ी मे देवजी रिखको वंदना करने वास्ते कच्छ मांडवी से जानकी बाई संघ निकाल के आई थी, उस वक्त उसको ढोल बजाते हुए, गुलाल उडाते हुए, बड़ी धूमधाम से सामेला करके नगर मे ले आवे थे, इस तरां कितने ही ढूंढिये श्रावक संघ निकाल निकालके जाते हैं, इस में तो तुम पुण्य मानते हो कि जिसकी गतिका भी कुछ ठिकाना नहीं (प्रायः तो दुर्गति ही होनी चाहिये) और श्रीवीतराग भगवान् तो निश्चय मोक्ष ही गये हैं जिन का अधिकार शास्त्रों में ठिकाने ठिकाने है, तिन का संघ वगैरह निकालके यात्रा करने में पाप कहते हो सो तुमारा पाप कर्मका ही उदय मालूम होता है

॥ इति ॥

---

(७) श्रीशत्रुं जय शाश्वता है ।

सातवें प्रश्नोत्तर में जेठेने लिखा है कि "जम्बूद्वीप पन्नत्ति सूत्र में कहा है कि भरतखंड में वैताढ्य पर्वत और गंगा सिन्धु नदी वर्जके सर्व छट्ठे आरे में विरला जायेंगे, तो शत्रुंजय तीर्थ शाश्वता किस तरां रहेगा" इस का उत्तर यह पाठ तो उपलक्षण मात्र है क्योंकि गंगासिन्धुके कुंड, ऋषभकूट पर्वत, (७२) बिल, गंगासिन्धु की वेदीका प्रमुख रहेंगे तैसे शत्रुंजय भी रहेगा ।

जेठा लिखता है "कि पर्वत, नहीं रहेगा, ऋषभकूट रहेगा वारे दिन में आंधे जेठे ! सूत्र में तो लिखा है उस भकूड पव्वय अर्थात् ऋषभकूट पर्वत ! और जेठालिखता है, ऋषभकूट पर्वत नहीं ! वाह ! धन्य है ढुंढियों तुमारी बुद्धि को ।

और जो जेठेने लिखा है "शाश्वती वस्तु घटती वढ़ती नहीं है सो भी झूठ है क्योंकि गंगा सिंधुका पाट,भरतखंड की भूमिका, गंगा सिंधुकी वेदिका लवण समुद्रका जल वगैर वधते घटते है, परन्तु शाश्वते हैं तैसे शत्रुंजय भी शाश्वता है जरा मिथ्यात्व की नींद छोड़ के जागो और देखो ।

फेर जेठा लिखता है 'सब जगह सिद्ध हुए हैं तो शत्रुंजय की क्या विशेषता है" इसका उत्तरः-

तुम गुरु के चरणों की रज मस्तक को लगाते हो और सर्व जगत् की धूड़ (राख) तुमारे गुरु के चरणों करके रज होके लग चुकी है. इस वास्ते तुमारे मानने मूजिब सर्व धूड़ खाक टोकरी भर के तुम को अपने शिरमें डालनी चाहिये; क्यों नहीं डालते हो ? हमतो जिस जगह सिद्ध हुए हैं. और जिनका नाम ठाम जानते है. तिनको तीर्थ रूप मानते हैं, और श्रीशत्रुंजय ऊपर सिद्ध होने के अधिकार श्री ज्ञाता सूत्र तथा अन्तगड दशांग सूत्रादि अनेक जैन शास्त्रों में हैं ॥

तथा श्रीज्ञाता सूत्र में गिरनार और सम्मेद शिखर ऊपर सिद्ध होने के अधिकार हैं। इस चौबीसी के बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर ऊपर मोक्ष पद को प्राप्त हुए हैं; श्रीजम्बूद्वीपपन्नत्ति में श्रीऋषभ देवजी का अष्टापद ऊपर सिद्ध होने का अधिकार है; श्री वासुपूज्य स्वामी चंपानगरी में और श्रीमहावीर स्वामी पावापुरी में मोक्ष पधारे हैं इत्यादि सर्व भूमिका को हम तीर्थ रूप मानते हैं।

तथा तुमभी जिस जगह जो मुनि सिद्ध हुए होंवें उनके नाम वगैरहका कथन वताओ, * हम उस जगह को तीर्थ रूप मानेंगे क्योंकि हमतो तीर्थ मानते हैं, नहीं मानने वाले को मिथ्यात्व लगता है इति ॥

(८) कयबलिकम्मा शब्दका अर्थ

आठवें प्रश्नोत्तर में जेठे मूढ मति ने "कयबलिकम्मा" शब्द जो देवपूजाका वाचक है, तिसका अर्थ फिरानेके वास्ते जैसे कोई आदमी समुद्र में गिरे वाद निकल ने को हाथ पैर मारता है तैसे निष्फल हाथ पैर मारे हैं और अनजान जीवोंको अपने फंदे में फंसाने के वास्ते विना प्रयोजन सूत्रों के पाठ लिख लिख कर कागज काले किये है, तथापि इस से इस की कुछ भी सिद्धि होती नहीं है, क्योंकि तिसके लिखे (११) प्रश्नों के उत्तर नीचे मूजिब हैं।

प्रथम प्रश्न में लिखा है कि "भद्रा सार्थवाही ने बौड़ी में किस की

---

* विचारे कहां से बतावें जिन चौवीस तीर्थंकरो को मानते हैं उनका ही सारा वर्णन इनके माने बत्तीस शास्त्रों में नहीं है तो अन्यका तो क्याही कहना !

प्रतिमा पूजी" इस का उत्तर-बोंढ़ी में ताक आला गोख वगैरह में अन्यदेव की मूर्त्तियां होगी तिसकी पूजा करी है और बाहिर निकल के नाग भूतादि की पूजा करी है; इस में कुछ भी विरोध नहीं है आज काल भी अनेक बोंढ़ियों में ताक वगैरह में अन्य देवों की मूर्तियां वगैरह होति हैं तथा वैश्नव ब्राह्मण वगैरह अन्य मतावलंबी स्नान करके उसी ठिकाने खड़े होके अंजलि करके देवको जल अर्पण करते हे, सो बात प्रसिद्ध है, और यह भी बलि कर्म है।

दूसरे तीसरे प्रश्न में लिखा है कि "अरिहंतने किस कि प्रतिमा पूजी" अरे मूढ ढुंढको! नेत्र खोल के देखोगे. तो दिखेगा. कि सूत्रों में अरिहंत सिद्ध को नमस्कार किये का अधिकार है. और गृस्थावस्था में तीर्थंकर सिद्ध की प्रतिमा पूजते है इसी तरह यहां भी श्रीमल्लिनाथ स्वामीने कय बलिकम्मा शब्द करके सिद्ध की प्रतिमा की पूजा करी है।

४-५-६-७ में प्रश्न के अधिकार में लिखा है कि "मज्जन घर में किसकी पूजा करी" इस का उत्तर-जहां मज्जन घर है तहां ही देव गृह है. और तिस में रही देवकी प्रतिमा पूजी है. देहरासर (मंदिर) दो प्रकार के होते हैं घर देहरासर (घर चैत्यालय) और बड़ा मंदिर, तिनमें द्रोपदी ने प्रथम घर चैत्यालय की पूजा करके पीछे बड़े मन्दिर में विशेष रीति से सतारां प्रकार की पूजा करी है आज काल भी यही रीति प्रचलित है बहुत श्रावक अपने घर देहरासर में पूजा कर के पीछे बड़े मंदिर में वन्दना पूजा करने को जाते हैं द्रोपदी के अधिकार में वस्त्र पहिनने की बाबत जो पीछे से लिखा है सो बड़े मंदिर में जाने योग्य बिशेष सुन्दर वस्त्र पहिने हे परन्तु 'प्रथम वस्त्र पहिने ही नहीं थे, नग्नपणे ही स्नान करने को बैठी थी" ऐसा जेठेने कल्पना करके सिद्ध किया है. सो ऐसी महा विवेकवती राज पुत्री को संभवेही नहीं है, यह रूढी तो प्रायः आज कलकी निर्विविकिनी स्त्रियो मे विशेषतः है॥ *

८ में प्रश्न में लिखा है कि "लकड़हारेने किसकी पूजा करी" इसका उत्तर साफ है कि बनमें अपना मानीय जो देव होगा तिस की उसने पूजा करी॥

---

* कई विवेकवती स्त्रिया आज कलभी नग्नपणें स्नान नहीं करती हैं बिशेष करके पूजा करनेंवाळी स्त्रियों को तो इस बात का प्राय. जरूर ही ख्याल रखना पड़ता है और श्राद्ध विधि विवेक विलासादि शास्त्रों नें नग्नपणे स्नान करने की मनाई भी लिखी है दक्षिणी लोको की औरतें प्राय कपड़े सहित ही स्नान करती है अधिक बेपड़द होना तो प्रायः पंजाब देश में ही मालूम होता है॥

९ में प्रश्न में लिखा है कि "केशी गणधर ने परदेशी राजा को स्नान कर के वलिकम्म करके देव पूजा करने को जावे, इसतरह कहा, तो तहां प्रथम किसकी पूजा करी" इसका उत्तर-प्रथम अपने घर में (जैसे बहुते वैश्नव लोक अबभी देव सेवा रखते हैं तैसे) रखे हुए देव की पूजा करके पीछे बाहिर निकल कर बड़े देवस्थान में पूजा करने का कहा है ॥

१०-११ में प्रश्न मे "कोणिक राजा और भरत चक्रवर्ति के अधिकार में कयबलिकम्मा शब्द नहीं है तो उन्होंने देव पूजा क्यों नहीं करी"इस का उत्तर अरे देवानां प्रियो ! इतना तो समझो कि वन्दना निमित्त जाने की अति उत्सुकता के लिये उन्होंने देव पूजा उस वक्त न करी होवे तो उस में क्या आश्चर्य है ? तथा इस तुमारे कथन से ही कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देव पूजा सिद्ध होता है, क्योंकि कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ तुम ढुंढिये 'पाणी की कुरलियां करी" ऐसा करते हो तो क्या स्नान करते हुए इन्होंने कुरलियां न करी होगी नहीं कुरलियांतो जरूर करी होंगी, परन्तु पूर्वोक्त कारणसे देव पूजा न करी होगी; इसीवास्ते पूर्वोक्त अधिकार में कयबलिकम्मा शब्द शास्त्रकार ने नहीं लिखा है इसतरह हरएक प्रश्नमें कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देव पूजा ऐसा सिद्ध होता है तथा टीका में और प्राचीन लिखत के टब्बे में भी कयबलिकम्मा शब्द का अर्थ देव पूजा ही लिखा है तथा अन्यदृष्टान्तों से भी यही अर्थ सिद्ध होता है यथाः-

[१] श्रीरायपसेणी सूत्र में सूर्याभ के अधिकार में जब सूर्याभ देवता पूजा करके पीछे हटा तब बचा हुआ पूजा का सामान उस ने वलिपीठऊपर रक्खा, ऐसा सूत्र पाठ है तिस जगह भी पूजो पहार की पीठ का, ऐसा अर्थ होता है ॥

[२] यति प्रति क्रमण सूत्र (पगाम सिज्झाय) में "मंडि पाहुडियाए बलि पाहुडियाए" यह पाठ है, इसका अर्थ भिखारियों के वास्ते चप्पणी वगैरह में रखा हुआ अन्न साधुको नहीं लेना; तथा देव के आगे धराया नैवेद्य, अथवा तिसके निमित्त निकला अन्न साधु को नहीं लेना ऐसे होता है

[३] नाम माला वगैरह कोश ग्रन्थों में भी बलि शब्द का अर्थ पूजा कहा है-यतः

पूजार्हणा सपर्य्यार्चा उपहार बली समौ ।

[४] निशीथ चूर्णि तथा आवश्यक निर्युक्ति में भी बलि सब्द से देव के आगे धरने का नैवेद्य कहा है ॥

(५) वास्तुक शास्त्र में तथा ज्योति शास्त्र में भी घर देवता की पूजा करके भूतबलि देके घर में प्रवेश करना कहा है-यतः-

गृह प्रवेशं सुविनीत वेषः
सौम्यायने वासर पूर्व भागे।
कुर्याद् विधायालय देवतार्चा
कल्याणी धीर्भूत बलिक्रियांच ॥ १ ॥

इस पाठ में भी बलि शब्द करके नैवेद्य पूजा होती है।

ऊपर लिखे दृष्टान्तों से "कयबलिकम्मा" (कृत बलि कर्म्मा) शब्द का अर्थ देव पूजा सिद्ध होता है, परन्तु मूर्ख शिरोमणि जेठे ने कय बलिकम्मा अर्थात् "पाणी की कुरलियां करी" ऐसा अर्थ करा है सो महा मिथ्या है, तथा कय को कय मंगल अर्थात् कौतुकमंगलीक पाणी की अंजलि भरके कुरलियां करी ऐसा अर्थ करा है सो भी महा मिथ्या है, किसी भी कोष में ऐसा अर्थ करा नहीं है और न कोई पंडित ऐसा अर्थ करताभी है परन्तु महा मिथ्या दृष्टि ढुंढिये व्याकरण, कोष काव्य अलंकार, न्याय, प्रमुख के ज्ञान बिना अर्थ का अनर्थ करके उत्सूत्र प्ररूप के अनन्त संसारी होते है॥

तथा नाम माला में कौयेको बलिभुक् कहा है, तो क्या ढूंढियों के कहने मूजिब कौये पाणी की कुरलियां खाते हैं? या पीठी खाते हैं? नहीं; ऐसे नहीं है, किन्तु वे देवके आगे धरी हुई वस्तु के खाने वाले हैं; इस वास्ते इनका नाम बलिभुक है और इस से भी बलिकम्मा शब्द का अर्थ देव पूजा सिद्ध होता है॥

तथा जेठे ने द्रौपदी के अधिकार में लिखा है कि "स्नान करके पीछे वटणा मला" देखो कितनी मूर्खता! स्नान करके वटणा मलना, यह तो उचित ही नहीं, ऐसी कल्पना तो अज्ञ बालक भी नहीं कर सकता है; परन्तु जैसे कोई आदमी एक बार झूठ बोलता है, उस को तिस झूठ के छांपने वास्ते वारंवार झूठ बोलना पड़ता है, तैसे केवल एक अर्थ के फिराने वास्ते जैसे मनमे आया तैसे लिखते हुए जेठे ने संसार बधने का जरासा भी डर नहीं रखा॥

तथा जेठे ने लिखा है कि "सम्यग दृष्टि अन्य देवको पूजते हैं" सो मिथ्या है क्योंकि अन्य देवको श्रावक पूजते नहीं हैं, मिथ्या दृष्टि पूजते हैं; और जिस श्रावकने गुरुमहाराज के मुखसे षट आगार सहित सम्यक्त्व उच्चारण करा होवे सो शासन देवता, प्रमुख सम्यग दृष्टीकी भक्ति करता है, वोह साधर्मी के संबंध करके करता है, और वो अन्य देव नहीं कहाता है,

और जो कोई सम्यगदृष्टि किसी अन्य देवको मानेगा तो वो बातो सम्यगदृष्टिही देवता होगा, या कोई उपद्रव करने वाला देवता होगा, और उस उपद्रव करने वाले देवता निमित्त श्रावकको देवाभिओगेण" यह आगार है परन्तु तुंगीयानगरी के श्रावकों को क्या कष्ट आनपड़ाथा, जो उन्होंने अन्य देवकी पूजाकरी जेठा कहता है "गोत्र देवता की पूजाकरी" सो यह किस पाठका अर्थ है ? गोत्र देवताकी किसी भी श्रावकने पुजाकरी होवे, तो सूत्रपाठ दिखाओ. मतलब यह कि जेठेने तुंगीयानगरी के श्रावकने घरके देवकी पूजाकरी. इस विषय में जो कुतर्क करी हैं, सो सर्व तिस की मूढ़ता की निशानी हैं, तुंगीया नगरी के श्रावकने अपने घर में रहे जिन भवन में अरिहंत देवकी पूजाकरी यह तो निःसंदेह है, श्रीउपासक दशांग सूत्र में आनंद श्रावकके अधिकार में जैसापाठ है तैसा सर्व श्रावकोंके वास्ते जानलेना इस वास्ते मूढमति जेठे ने जो गोत्रदेवता की पूजा तो श्रावकके वास्ते सिद्धकरी. और जिनप्रतिमाकी पूजा निषेधकरी,उसका महा मिथ्या दृष्टि पणेका चिन्ह है। ॥ इति ॥

(९) सिद्धायतन शब्दका अर्थ

नवमें प्रश्नोत्तर में जेठे मूढ़मति ने "सिद्धायतन" शब्द के अर्थ को फिराने वास्ते अनेक युक्तियां करी हैं परन्तु वे सर्व झूठि हैं क्योंकि "सिद्धायतन" यह गुण निष्पन्न नाम है. सिद्ध कहिये शाश्वती अरिहंतकी प्रतिमा. तिसका आयतन कहिये घर, सो सिद्धायतन । यह इस का यथार्थ अर्थ है जेठेने सिद्धायतन नामगुण निष्पन्न नहीं है, इस की सिद्धके वास्ते ऋषभदत्त और संजति राजा प्रमुख का दृष्टांत दिया है. कि जैसे यह नामगुण निष्पन्न माळूम नहीं होते हैं, तैसे सिद्धायतन भी गुण निष्पन्न नाम नहीं है, यह उस का लिखना असत्य है, क्योंकि शास्त्रकारो ने सिद्धांतों में वस्तु निरूपण जो नाम कहे हैं वे सर्व नाम गुण निष्पन्न ही हैं, यथाः—

(१) अरिहंत, (२) सिद्ध, (३) आचार्य, (४) उपाध्याय, (५) साधु, (६) सामायिक चारित्र. (७) छेदा पस्थापनीयचारित्र, (८) परिहार विशुद्धिचारित्र, (९) सूक्ष्मसंपरायचारित्र, (१०) यथाख्यातचारित्र, (११) जंबूद्वीप, (१२) लवणसमुद्र, (१३) धातुकीखंड, (१४) कालोदधिसमुद्र,(१५)घृतवरसमुद्र,(१६) दधिवरसमुद्र, [१७] क्षीरवरसमुद्र, [१८] वारुणीसमुद्र, [१९] श्रावक के बाहरव्रत, [३१] श्रावककी एकादश पडिमा, [४२] एकादश अंगके नाम, [५३] बाहर उपांगके नाम, [६५] चुल्लहिमवान् पर्वत, [६६] महाहिमवान् पर्वत [६७] रूपी पर्वत, [६८] निषध पर्वत, [६९] नीलवंतपर्वत,[७०] नम्मुकार सहियं इत्यादि दश पच्चक्खाण,[८०] छैलश्या, [८६] आठ कर्म इत्यादि वस्तुयोंके नाम जैसे गुणनिष्पन्न हैं,

तैसे सिद्धायतन भी गुणनिष्पन्न ही नाम है ॥

दूसरे लौकिक नाम कथा निरूपण में ऋषभदत्त, संजतिराजा प्रमुख कहे हैं, वे गुणनिष्पन्न होवे भी और ना भीहोवे, क्योंकि वे नाम सो तिन के माता पिता के स्थापन किये हुए होते हैं ॥

महापुरुष बाबत लिखा है, सो वे महा पापके करनेवाले थे, इसवास्ते महा पुरुष कहे है, तिस में कुछ बाधा नहीं है, परन्तु इसबात का ज्ञान जो जैनशैलि के जानकार होवें और अपेक्षा को समझने वाले होवें, उनको होता है, जेठमल सरिखे मृषावादी और स्वमति कल्पना से लिखने वालोंको नहीं होता है ॥

अनुत्तर विमान के नाम गुण निष्पन्न ही हैं, और तिनका द्वीप समुद्रके नामों साथ संबंध होनेका कोई कारण नहीं है।

श्रीअनुयोग द्वार सूत्र में कहे गुणनिष्पन्न नामके भेद में सिद्धायतन नाम का समावेश होता है।

भरतादि विजयों में मगध १ वरदाम २ और प्रभास ३ यह तीर्थ कहे हैं, सो तो लौकिक तीर्थ हैं; इनको माननेका सम्यग दृष्टि को क्या कारण है ? अरे मूढ ढुंढियों ! कुछ तो विचार करो कि जैसे अन्य दर्शनियों में आचार्य, उपाध्याय, साधु, ब्रह्मचारी आदि कहते हैं; और शास्त्रकार भी तिन को साधु कह कर बुलाता है, तो क्या इस से वे जैन दर्शन के साधु कहावेंगे ? और वे वंदना योग्य होगे ? नहीं, तैसे ही मागधादि तीर्थ जान लेने।

श्रीऋषभानन, [१] चंद्रानन [२] वारिषेण, [३] और वर्द्धमान (४) यह चार ही नाम शाश्वती जिन प्रतिमा के हैं, क्योंकि प्रत्येक चौवीसी में पंदरह क्षेत्रोंमें मिलाके यह चार नाम जरूर ही पाये जाते हैं, इस वास्ते इस बावत का जेठका लिखाण झूठा है

तथा जेठा लिखता है कि 'द्रोपदीके मंदिर में प्रतिमा थी सो तिस को सिद्धायतन न कहा और जिन घर क्यों कहा" उत्तर-अरे मूढ ! जिनगृह तो अरिहंत आश्री नाम है, और सिद्धायतन सिद्ध आश्री नाम है * इस में बाधा क्या है ॥

फिर जेठा लिखता है " धर्मास्ति वगैरह अनादि सिद्धके नाम कहकर तिन कोसिद्ध ठहराके तुम वंदना क्यों नहीं करते हो" उत्तर सिद्धायतन शब्द के

---

* शाश्वती आशाश्वती जिन प्रतिमा आश्री नामांतर भेद है परंतु प्रयोजन एकहि है।

अर्थ के साथ इनका कुछ भी संबंध नहीं है तो तिनको वंदना क्यों कर होवे ? कदापि ना होवे; परंतु तुम ढूंढिये "नमो सिद्धाणं" कहतेहो तवतो तुम धर्मास्ति अधर्मास्तिकोही नमस्कार करतेहोगे ! ऐसा तुमारेमत मूजिब सिद्ध होता है।

फिर जेठेने लिखा है कि "अनंते कालकी स्थिति है, और स्वयं सिद्ध, विना करे हुए, इस वास्ते सिद्धायतन कहिये" उत्तर-अनादिकाल की स्थितिवाली और स्वयंसिद्ध ऐसी तो अनेक वस्तु यथा विमान, नरकावास, पर्वत, द्वीप, समुद्र, क्षेत्र, इनको तो किसी जगह भी सिद्धायतन नहीं कहा है इस वास्ते जेठेका लिखा अर्थ सर्वथा ही झूठा है। यदि ढूंढीये हृदय चक्षुको खोल के देखेंगे, तो मालूम होजावेगा, कि केवल शाश्वती जिन प्रतिमा के भुवनको ही शास्त्रों में सिद्धायतन कहा हुआ है, और इसी वास्ते सिद्धायतन शब्द का जो अर्थ टीका कारोंने करा है; और जेठेकाकरा अर्थ सत्य नहीं है।

और जेठेने लिखा है कि "वैताढ्य पर्वतके ऊपर के नवं कूटों में से एकको ही सिद्धायतन कहा है शेष आठको नहीं; तिसका कारण यह है कि कूट देव देवी अधिष्ठित हैं, इसलिये उनके नाम और और कहे हैं; और इस कूट ऊपर कुछ नहीं है, इसवास्ते इसको सिद्धायतन कूट कहा है" इसका उत्तर-अरे कुमतिओ ! बताओ तो सही, कहां कहा है, कि दूसरे कूटों पर देव देवियां है, और इसकूट ऊपर नहीं हैं, मनः कल्पित बातें बनाके असत्य स्थापन करना चाहते हो सोतो कभी भी होना नहीं है, परंतु ऊपर के लेखसे तो सिद्धायतन नामको पुष्टि मिलती है। क्योंकि जिस कूटके ऊपर सिद्धायतन होता है, उसही कूटको शास्त्रकारने सिद्धायतन कूट कहा है ॥

तथा श्रीजीवाभिगम सूत्र में सिद्धायतनका विस्तार पूर्वक अधिकार है, सो जरा ध्यान लगाके वांचोगे तो स्पष्ट मालूम होजावेगा कि उस में (१०८) शाश्वते जिनबिंब हैं और अन्यमी छत्रधार चामरधार वगैरह वहुत देवताओं की मूर्तियां हैं इससे यही निश्चित होता है कि सिद्ध प्रतिमाके भुवनको ही सिद्धायतन कहा है ॥

तथा कई ढूंढीये सिद्धायतन में शाश्वती जिन प्रतिमा मानते हैं; और तिसको सिद्धायतन ही कहते हैं, परंतु जेठेने तो इसबात का भी सर्वथा निषेध करा है इससे यही मालूम होतारै कि बेशक जेठमल्ल महा भारी कर्मीथा ॥इति॥

(१०) गौतम स्वामी अष्टापद पर चढ़े

दशवें प्रश्नमें जेठा कुमति लिखता है कि "भगवंतने गौतमजी को कहा कि

तुम अष्टापद की यात्रा करो तो तुमको केवलज्ञान होवे" यह लिखना महा असत्य है शास्त्रों में तो ऐसे लिखा है कि "एकदा श्रीगौतमस्वामी भगवंतसे जुदे किसी स्थान में गये थे, वहां से जब भगवंतके पास आए तब देवता परस्पर वार्ते करते थे कि भगवंतने आज व्याख्यानावसरे ऐसे कहा है कि जो भूचर अपनी लब्धिसे श्रीअष्टापद पर्वतकी यात्राकरे सो उसी भवमें मुक्तिगामी होवे, यह बात सुनकर श्रीगौतमस्वामीने अष्टापद जानेकी भगवंतके पास आज्ञा मांगी तब भगवंतने बहुत लाभका कारण जानकर आज्ञा दीनी; जब यात्रा करके तापसोंको प्रतिबोध के भगवंतके समीप आए तब (१५००) तापसों को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ जानकर श्रीगौतमस्वामी उदास हुए कि मुझे केवलज्ञान कब होगा ? तब श्रीभगवंतने द्रुमपत्रिका अध्ययन तथा श्रीभगवतीसूत्र में चिरसंसिट्ठोंसि मे गोयमा इत्यादि पाठोक कहके गौतमको स्वस्थ किया" यह अधिकार श्रीआवश्यक, उत्तराध्ययन निर्युक्ति, तथा भगवतीवृत्ति में कहा है, परंतु भाग्यहीन जेठेको कैसे दिखे ? कौएका स्वभावही होता है कि द्राक्षाको छोड़ कर गंदकी में चुंजदेनी, जेठा लिखता है कि भगवंतने पांच महाव्रत और पंचवीस भावनारूप धर्म श्रेणिक, कोणिक, शालिभद्र, प्रमुख के आगे कहा परन्तु जिनमंदिर बनवाने का उपदेश दिया नहीं है" यह लिखना मूर्खताईका है क्या इनके पाससे मंदिर बनवाने का इनको ही उपदेश देना भगवंतका कोई जरूरी काम था ? तथापि उनके बनाये जिनमंदिरों का अधिकार सूत्रों में बहुत जगह है तथा हि:-

श्रीआवश्यक सूत्र तथा योगशास्त्र में श्रेणिकराजाके बनाये जिनमंदिरोंका अधिकार है ॥

श्रीमहानिशीथ सूत्र में कहा है कि जिनमंदिर बनाने वाला बारवें देवलोक तक जाता है यत:-

काउंपिजिणाय यणेहिं, मंडियंसव्वमेयंणीवट्टं ।
दाणाइचउक्केण, सड्ढोगच्छेज्ज अच्चुयं जावनपरं ॥

भावार्थ-जिन मंदिरों करके पृथिवी पट्टको मंडित करके और दानादिक चारों (दान, शील, तप, भावना) करके श्रावक अच्युत (बारवें) देवलोक तक जावे इससे उपरांत न जावे ॥

श्रीआवश्यक सूत्र में वग्गुर श्रावकने श्रीपुरिमतालनगरमें श्रीमल्लिनाथजी का जिनमंदिर बनवाके घने परिवार सहित जिनपूजा करी ऐसाअधिकार है, यत:-

तत्तोयपुरिमेताल, वग्गुरइसाण अच्चएपडिमं ।
मल्लिजिणाययण पडिमा, अन्नाएवंसिवहुगोठी ॥

श्रीआवश्यक में भरतचक्रवर्ति के बनवाये जिनमंदिरका अधिकार है. यतः-

थुभसयभा उगाणं. चउव्विसं चेव जिणघरेकासि ।
सव्वाजिणाणे पडिमा । वराण पमाणेहिं नियएहि ॥

भावर्थ-एकसौ भाईके एकसौ स्तूप और चौवीस तीर्थंकरके जिनमंदिर उस में सर्वतीर्थंकर की प्रतिमा अपने वर्ण तथा शरीरके प्रमाण सहित भरत चक्रवर्तिने श्रीअष्टापद पर्वत ऊपर बनाई !

इसी सूत्र में उदायनराजाकी प्रभावती राणीने जिन मंदिर बनवाया और नाटकादि जिनपूजा करी ऐसा अधिकार है, यतः-

अंते उरचेइयहरं कारियं पभावति एराहाताति ।
संभंअच्चेइ अन्नयादेवीणच्चइरायावीणवायेइ ॥

भावार्थ-प्रभावती राणीने अंतेऊर (अपने रहने के महल)में चैत्यघर अर्थात् जिन मंदिर कराया, प्रभावती राणी स्नान करके प्रभात मध्यान्ह सायंकाल तीन वक्त तिस मंदिर में अर्चा (पूजा) करती है एकदा राणी नृत्य करती है और राजा आपवीणा बजाता है॥

प्रथमानुयोग में अनेक श्रावक श्राविकायोंका जिन मंदिर बनाने का तथा पूजा करनेका अधिकार है ॥

इसी सूत्र में द्वारिका नगरी में श्रीजिनप्रतिमा पूजने का भी अधिकार है ॥

शालिभद्रको घर में जिन मंदिर तथा रत्नोंकी प्रतिमा थीं और वो मंदिर शालिभद्रके पिताने अनेक द्वारों करके सुशोभित देव बिमान करके सदृश्य बनाया था ॥

"यतः शालिभद्र चरित्रे"

प्रधानानेकधारत्न मयार्हद्धित्वहेतवे ।
देवालयं च चक्रेसौ निजचैत्य गृहोपमम् ॥ ५०

ऊपर मुजिव कथन है तो क्या जेठे मूढमतिने शालिभद्रका चरित्र नहीं देखा होगा ? कदापि ढूंढिये कहे कि हम शालिभद्रका चरित्र नहीं मानते हैं * तो बत्तीस सूत्र में शालिभद्रका अधिकार किसी जगह नहीं है तथापि जेठे मूढमतिने शालिभद्रका अधिकार इस प्रश्नके चौथे प्रश्न में लिखा है तो क्या जेठेके बापके चौपडे में शालिभद्र का अधिकार है कि अधिकार जिसमें लिखा है कि शालिद्रभने जिन मंदिर नहीं बनाया है ॥

जेठा कुमति लिखता है कि "भगवंतने श्रेणिकको कहा कि तू चार बोल करे तो नरक मे न जावे परन्तु ऐसे नहीं कहा है ।जिनमंदिर बनावे यात्रा करे तो नरक में न जावे" इसका उत्तर-तीर्थ कर महाराजकी भक्ति वंदनाकर, चौदह हजार साधुओंकी भक्ति वंदनाकर, जिस करके तू नरकमें न जावे, ऐसे भी तो भगवंतने नहीं कहा है; अब विचारना चाहिये कि भगवंतकी तथा साधुओं की भक्ति वदना नरक दूर करने समर्थ नहीं हुई, तो यात्रा करने से नरक दूर कैसे होवे ? इस वास्ते भगवंतने यह कार्य नहीं कहा है ॥

और जेठे मूढमति के लिखने मूजिव तो भगवंतकी तथा साधुओंकी वंदना भक्तिसे भी कुछ फल नहीं होता है, क्योंकि यह कार्य भी भगवंतने श्रेणिक राजा को नहीं कहा है, तो अरे ढूंढियों ! मुखबांध कर लोगस्स, नमुत्थुणं, नवकार मंत्र किस वास्ते पढतेहो ? इससे कुछ तुमारे मत मुजिव तुह्मारि (निश्चय हुई) नरकगति दूर होने वाली नहीं है ! तथा यह बात बत्तीससूत्रों में नहीं है, तथापि जेठेने क्योंकि अन्य सूत्र ग्रथ तथा प्रकरणादिकोंको तो ढूंढिये मानतेही नहीं हैं ॥

जेठमल ढूंढक लिखता है कि "सूर्य किरण के पुद्गल हाथ में नहीं आते है तो उनको पकड़कर गौतमस्वामी किस तरह चढे ? " उसको हम पूछते हैं कि जो जीव चलता है उसको धर्मास्तिकाया सहायता देवे है, ऐसे जैनशास्त्रों में कहा हैं, तो क्या जीव धर्मास्तिकाया को पकड़ के चलता है ? नहीं, इसीतरह जंघाचारणादि लब्धि वाले सूर्यकिरणों की निश्राय अवलवन करके उत्पतते है, अर्थात् ऊर्ध्वगमन करते हैं,उसी तरह गौतमस्वामी भी अष्टापद पर्वतपर चढे है॥

और श्रीभगवतीसूत्रमे तो जंघाचारण विद्याचारणदोनोंका ही अधिकार है परन्तु उपलक्षणसे अन्यभी बहुतसे चारणमुनि जैन शास्त्रों में कहे हैं,उनके नाम-व्योमचारण; जलचारण, पुष्पचारण, श्रेणिचारण, अग्निशिखाचारण, धूम्रचारण, मर्कटतंतुचारण, चक्रमणज्योतिरश्मिचारण, वायुचारण, निहारचारण, मेघचा-

---

* बहुतसें ढूंढिन्ये शालिभद्रका अधिकार मानते हैं

रण,ओसचारण,फलचारण, इत्यादि इनमें तिर्यक् अथवा ऊर्ध्वगमन करने वास्ते धूमको आलंबन करके जो अस्खलित गमन करे तिनको धूम चारण कहते हैं ॥

चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारादिक की तथा अन्य किसी भी ज्योतिः की किरणोंका आश्रय करके गमना गमन करे तिनको चक्रमण ज्योतिर श्मिचारण कहते है ॥

सन्मुख अथवा पराङ्मुख जिस दिशामें वायु (पवन) जाता होवे उस दिशा में उसी आकाश प्रदेशकी श्रेणिको आश्रय करके उसके साथही चले तिनको वायुचारण कहते हैं ॥

इसी तरह जंघा चारण सूर्य के किरणोंकी निश्राय करके अवलंवन करके उत्पतते है. श्रीभगवती सूत्र के तीसरे शतकके पांचवें उद्देशे में कहा है कि संघके कार्य वास्ते साधुलब्धि फोरे तो प्राश्चित्त नहीं लगता है यतः-

से जहा नामए केति पुरिसे असि चम्मपायगहाय गच्छेज्जा एवामेव अणगारो विभावि अप्पा असिचम्मपाय हत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उद्धंवेहासं उप्पइज्जा ? हंता उप्पइज्जा ॥

अर्थ-जैसे कोई पुरुष असि (तलवार) और चर्मपात्र (ढाल) ग्रहण करके जावे तैसे भावितात्मा अनगार असि चर्मपात्र हाथ में है जिसके ऐसा, संघादिक के कार्य वास्ते ऊर्ध्व आकाश मे जावे ? हां गौतम ! जावे ॥

इसतरह भगवंतने कहा है तथापि जेठा मति हीन लिखता है कि लब्धि फोरने से सर्वत्र प्रायश्चित्त लगता है,इस वास्ते जेठे का लिखना सर्वथा झूठ है॥

इस प्रश्नके अंत में (१५००) तापसकेवली हुए हैं इस बात को झूठी ठहराने वास्ते जेठमल लिखता है कि"महावीर स्वामी की तो सातसौ केवलीकी संपदा है और जो गौतमस्वामी के शिष्य कहोगे तो तिसके भी सिद्धांत में जगह जगह पांचसौ शिष्य कहे हैं" उत्तर महावीरस्वामी के शिष्य सातसौ केवली मोक्ष गये है सो सत्य है परन्तु गौतम स्वामी के शिष्य उनसे जुदे है यह बात समझ में नहीं आई सो मिथ्यात्व का उदय है और गौतमस्वामी के पांचसौ शिष्य सिद्धांत में जगह जगह कहे हैं ऐसे जेठमलने लिखा है सो असत्य है क्योंकि किसी भी सूत्र में गौतमस्वामी के पांचसौ शिष्य नहीं कहे हैं ॥

और * श्रीकल्पसूत्रमें गौतमस्वामीका जो पांचसौ शिष्यका परिवार कहा है सो तो दीक्षा लेने समयका है परंतु ग्रंथोंमें ५०००० केवली की कुल संपदा गौतमस्वामीकी वर्णन करी है।

(११) नमुत्थुणंके पिछले पाठकी बावत

जेठा मूढमति ११ वें प्रश्नमें लिखता है कि "नमुत्थुणंमें अधिक पद डाले हैं" यह लिखना जेठमलका असत्य है, क्योंकि हमने नमुत्थुणं में कोईभी पद वधाया नहीं है नमुत्थुणंतो भाव अरिहंत विद्यमानों की स्तुति है, और जो अंतकी गाथा है सो द्रव्य अरिहंतकी स्तुति है ढूंढिये द्रव्य अरिहंतको वंदना करनी निषेध करते हैं, क्योंकि ढूंढिये उनको असंजती समझते हैं इससे मालूम होता है कि ढूंढियोंकी बुद्धिही भ्रष्ट होई हुई है॥

श्रीनंदिसूत्रमें २६ आचार्य जिनमें २४ स्वर्गमें देवता हुए हैं तिनको नमस्कार करा है तो नमुत्थुणंके पिछले पाठमें क्या मिथ्या है? जेकर ढूंढिये इसीकारणसे नंदिसूत्रको भी झूठा कहेंगे, तो ज़रूर उन्होंने मिथ्यात्व रूप मदिरापान करके झूठा बकवाद करना शुरु किया है ऐसे मालूम होवेगा, तथा अपने गुरु को जो मरगए हैं और जो जिनाज्ञाके उत्थापकनिन्हवहोनेसे हमारी समझ मूजिब तो नरक तिर्यंचादि गतिमें गये होवेंगे, मूर्ख ढूंढिये उन को देवगति में गये समझ कर उनको वंदना क्यों करते है? क्योंकि वो तो असंयती, अविरति, अपच्चक्खाणी हैं! कदापि ढूंढिये कहें, कि हमतो गुरुपदको नमस्कार करते हैं तो अरे मूढो हमारी वंदना भी तो तीर्थंकर पदको ही है और सो सत्य है तथा इसीसे द्रव्य निक्षेपाभी वंदनीक सिद्ध होता है॥

श्रीआवश्यकसूत्रमें नमुत्थुणंकी पिछली गाथा सहित पाठ है, और उसी मूजिब हम कहते हैं, इसवास्ते जेठे कुमतिका लिखना बिलकुल मिथ्या है॥

प्रश्नके अंतमें नमुत्थुणं इंद्रने कहा है, इस बाबत निःप्रयोजन लेख लिखकर जेठमलने अपनी मूढ़ता ज़ाहिर करी है।

प्रश्नके अंतर्गत द्रव्य निक्षेपा वंदनीक नहीं है ऐसे जेठेने ठहराया है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि श्रीठाणांगसूत्रके चौथेठाणे में चार प्रकारके सत्य कहे हैं यतः—

---

*कितनेक ढूंढिये कल्पसूत्रको वाचते है परंतु मानते नहीं है॥

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते । नामसच्चे, ठवणा सच्चे, दव्वसच्चे, भावसच्चे ॥

अर्थ–चार प्रकारके सत्य कहे है (१) नामसत्य (२) स्थापना सत्य (३) द्रव्यसत्य (४) भावसत्य इस सूत्रपाठमें द्रव्य सत्यकहा है और इससे द्रव्य निक्षेपा सत्य है ऐसे सिद्ध होता है ॥

जेठमल ने लिखा है कि "आगामी काल के तीर्थंकर अब तक अविरति, अपच्चक्खाणी चारों गतिमें होवें उनको वंदना कैसे होवे ?" उत्तर –श्रीऋषभदेवजीके समयमें आवश्यक में चउविसत्था था या नहीं ? जेकर था तो उसमें अन्य२३तीर्थंकरोंको श्रीऋषभ देव जी के समय के साधुश्रावक नमस्कार करते थे कि नहीं?ढूंढियों के कथनानुसार तो वो अन्य २३ तीर्थंकर वंदनीक नहीं है ऐसे ठहरता है और श्रीऋषभदेव भगवान् के समय के साधु श्रावकसों चउविसत्था कहते थे और होनेवाले २३ तीर्थंकरोंको नमस्कार करतेथे, यह प्रत्यक्ष है, इसवास्ते अरे मूढ़ढूंढियों ! शास्त्रकारने द्रव्य निक्षेपा वंदनीक कहा है इस मे कोई शक नहीं है ज़रा अंतर्ध्यान हो कर विचार करो और कुमत जाल को तजो ॥

(१२) चारोंनिक्षेपे अरिहंत वंदनीक हैं इसबाबत ।

बारवें प्रश्न की आदि में मूढ़मति जेठमलने अरिहंत आचार्य और धर्म के ऊपर चार निक्षेप उतारे है सो बिलकुल झूठे हैं. इस तरह शास्त्रों में किसी जगह भी नहीं उतारे है ॥

और नाम अरिहंतकी बाबत "ऋषभोशांतो नेमोवीरो" इत्यादि नाम लिख कर जेठे ने श्रीवीतराग भगवंत की महा अवज्ञा करी है सो उसकी महा मूढ़ताकी निशानी है और इसी वास्ते हमने उसको मूढ़मति का उपनाम दिया है ॥

जेठमल ने लिखा है. कि (केवल भाव निक्षेपा ही वंदनीक है अन्य तीन निक्षेपे वंदनीक नहीं है) परंतु यह उसका लिखना सिद्धांतों से विपरीत है, क्योंकि सिद्धांतों में चारों निक्षेपे वंदनीक कहे है ।

जेठे निन्हवने लिखा है कि 'तीर्थं करोंके जो नाम है सो नाम सज्ञा है नाम निक्षेपा नहीं,नाम निक्षेपा तो तीर्थंकरोंके नाम जिस अन्य वस्तु में होवें सो है"

इस लेख से यही निश्चय होता है कि जेठे अज्ञानी को जैनशास्त्रों का किंचित मात्र भी बोध नहीं था, क्योंकि श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में कहा है, यतः॥

जत्थ यजं जाणेज्जा, निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थविय न जाणेज्जा, चउक्कयं निक्खिवे तत्थ ॥ ६ ॥

अर्थ—जहां जिस वस्तु में जितने निक्षेपे जाने वहां उस वस्तु में उतने निक्षेपे करे, और जिस वस्तु में अधिक निक्षेपे नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेपे तो अवश्य करे॥

अब विचारना चाहिये कि शास्त्रकारने तो वस्तु में नाम निक्षेपा कहा है और जेठा मूढमति लिखता है कि जो वस्तुका नाम है सो नाम निक्षेपा नहीं, नाम संज्ञा है तो इस मंदमति को इतनी भी समझ नहीं थी, कि नाम संज्ञा में और नाम निक्षेपे में कुछ फरक नहीं है॥

श्रीठाणांगसूत्र के चौथे ठाणे में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव यह चार प्रकार की सत्य भाषा कही है जो प्रथम लिख आए है॥

श्रीठाणांग सूत्र के दश में ठाणे में दश प्रकारका सत्य कहा है तथा श्री पन्नवणा जी सूत्र के भाषा पद में भी दश प्रकार के सत्य कहे है उन में स्थापना सत्य कहा है सो पाठ यह है॥

दसविहे सच्चे पणत्ते तंजहा। जणवय सम्मय ठवणा, नामे रूवे पडुच्च सच्चेय। ववहार भाव जोए, दसमे उवम्मसच्चेय॥

अर्थ—दश प्रकार के सत्य कहे है, तद्यथा। (१) जनपद सत्य, (२) सम्मत सत्य, (३) स्थापना सत्य, (४) नाम सत्य, (५) रूप सत्य, (६) प्रतीतसत्य, (७) व्यवहारसत्य, (८) भावसत्य, (९) योगसत्य, (१०) दशमा उपमासत्य॥

इस सूत्र पाठ से स्थापना निक्षेपा सत्य और वंदनीक ठहरता है, तथा चौवीस जिनकी स्तवना रूप लोगस्सका पाठ उच्चारण करते हुए ऋषभादि चौवीस प्रभुके नाम प्रकट पने कहते है और वंदना करते हैं सो वंदना नाम निक्षेपे को है। तथा श्रीऋषभदेव भगवान् के समय में चौवीसत्था पढ़ते हुए

अन्य २३ जिनको द्रव्य निक्षेपे वंदना होती थी और काउसग्ग करने के अलावे में "अरिहंत चेइयाणं करोमिकाउसग्गं वंदणवत्तिआए" इत्यादि पाठ पढ़ते हुए स्थापना निक्षेपा वंदनीक सिद्ध होता है और ये पाठ श्रीआवश्क सूत्र में हैं, इस अलावे को ढूंढिये नहीं मानते हैं इस वास्ते उन के मस्तक पर आज्ञा भंग रूप वज्र दंडका प्रहार होता है ॥

श्रीभगवती सूत्र की आदि में श्रीगणधर देवने ब्राह्मी लीपिको नमस्कार करा है सो जैसे ज्ञान का स्थापना निक्षेपा वंदनीक है तैसे ही श्रीतीर्थंकर देव का स्थापना निक्षेपा भी वंदना करने योग्य हैं ॥

तथा अरे ढूंढियो ! तुम जब "लोगस्स उज्जोअगरे" पढ़ते हो तब "अरिहंत कित्तइस्स" इस पाठ से चौवीस अरिहंत की कीर्त्तना करते हो, सो चौविस अरिहंत तो इस वर्तमान काल में नहीं है तो तुम वंदना किनको करते हो?जेकर तुम कहोगे कि जो चौवीस प्रभु मोक्ष में हैं उनकी हम कीर्तना करते हैं तो वोअरिहंत तो अब सिद्ध है इस वास्ते "सिद्धे कित्तइस्सं" कहना चाहिये परन्तु तुम ऐसे कहते नही हो ! कदापि कहोंगे कि अतीत काल में जो चौविस तीर्थंकर थे उनको वंदना करते हैं तो अतीत काल में जो वस्तु हो गई सो द्रव्य निक्षेपा है और द्रव्य निक्षेपे को तो तुम वंदनीक नहीं मानते हो, तो बतावो तुम वंदना किनको करते हो ? जेकर ऐसे कहोगे कि अतीत काल में जैसे अरिहंत थे तैसे अपने मन में कल्पना करके वंदना करते हैं, तो वो स्थापना निक्षेपा है और अस्थापना निक्षेपा तो तुम मानते नहीं हो तो वताओ तुम वंदना किन को करते हो ? अंत में इस बात का तात्पर्य इतना ही है कि ढूंढिये अज्ञान के उदय से और द्वेष बुद्धि से भाव निक्षेपे विना अन्य निक्षेपे वंदनीक नहीं मानते हैं परन्तु उन को वंदना जरूर करनी पड़ती है ॥

और स्थापना अरिहंत को आनंद श्रावक, अंवड तापस, महासती द्रोपदी, वग्गुर श्रावक,तथा प्रभावती प्रमुख अनेक श्रावक श्राविकाओं ने और श्रीगौतम स्वामी, जंघा चारण, विद्याचारणादि अनेक मुनियों ने, तथा सूर्याभ, विजयादि अनेक देवताओं ने वंदना करी है, तिन के अधिकार सूत्रों में प्रसिद्ध हैं. श्रीमहा निशीथ सूत्र में कहा है कि साधु प्रतिमा को वंदना न करे तो प्रायश्चित्त आवे इस तरह नाम और स्थापना वंदनीक है, तो द्रव्य और भाव वंदनीक हैं इस में क्या आश्चर्य !

जेठमल लिखता है कि "कृष्ण तथा श्रेणिक को आगामी चौवीसी में तीर्थं कर होनेका जब भगवंतने कहा तब तिनको द्रव्य जिन जानकर किसी ने वंदना

क्यों नहीं करी ?" यह लिखना बिल कुल विपरीत है क्योंकि उस ठिकाने वंदना करने वा न करने का अधिकार नहीं है, तथापि जेठे ने स्वमति कल्पना से लिखा है, कि किसी ने वंदना नहीं करी है तो बताओ ऐसे कहां लिखा है ?* .

और मल्लिकुमरी स्त्री वेषमें थी इस वास्ते वंदनीक नहीं तैसे ही तिसकी स्त्रीवेष की प्रतिमा भी वंदनीक नहीं तथा स्त्री तीर्थंकरी का होना अछेरे में गिना जाता है, इस वास्ते सो विध्यनुवाद में नहीं आसक्ता है ॥

तथा जेठे ने भद्रिक जीवों को भूलाने वास्ते लिखा है, कि 'श्री समवायांग सूत्र में वर्त्तमान चउवीस जिन के नाम कहे हैं, तहां वंदे शब्द कहा है क्योंकि वे भाव निक्षेपे वंदनीक हैं, और अनागत चौवीस जिन के नाम कहे हैं, तहां वंदे शब्द कहा नहीं है क्योंकि वे द्रव्य निक्षेपे हैं इसवास्ते वंदनीक नहीं हैं" यह लिखना बिलकुल झूठा है क्योंकि श्रीसमवायांग सूत्र में वर्तमान तथा अनागत दोनो ही चउवीस जिन के नामों मे वंदे शब्द नहीं है तथा जेठे मूढ़ने इतना भी विचार नहीं करा है कि कदापि वर्तमान चौवीस जिन के नाम में वंदे शब्द होवे तो भी उस से तो नाम निक्षेपे को वंदना है परंतु भाव निक्षेपा तो वहां है ही कहां ?

---

*"श्रीप्रथमानुयोग" शास्त्र जिसमें इतनी वार्तोंका होना "श्रीसमवायागसूत्र" तथा श्रीनंदिसूत्र" में फरमाया है। तथा हि—

सेकिंत मूलपढ़ माणुओगे एत्थणं अरहंताणं भगवंताणं पूव्व भवा देवलोगगमणाणि आउचवणाणि जम्मणाणिअ अभिसेअ रायवरसिरीओ सीआओ पव्वज्जाओ तवोयभत्ताके वलणाणुप्पाओ तित्थपवत्तणाणिय संघयण संठाण उच्चत्त आउ वन्न विभागो सीसा गणा गणहरा अज्जा पवत्तणीओ संघस्स चउविहस्स जंवावि परिमाणं जिणामण पज्जव ओहिनाणि सम्मत्तसुयनाणिणोय वाई अणुत्तर गइय जत्तिया सिद्धा पावोवगओय जो जहिं जातियाइं भत्ताइं छेइत्ता अंतगडो मुणिवरुत्तमो तमरओघ विप्पमुक्का सिद्धि पह मणुत्तरं

तथा गांगये अनगार की बाबत जेठेने जो लिखा है, सो भी तिसकी नय निक्षेपे की अज्ञता का सूचक है क्योंकि गांगेय अनगार ने भाव अरिहंत की शंका होने से पहिले वंदना नहीं करी और परीक्षा करके शंका दूर होगई तब

च परा एए अन्नेय एवमाइया भावा मूल पढमाणु ओगे कहिआ आघ विज्जंति पराणविज्जंति सेतं मूलपढमाणुओगे

भापार्थ—मूल पद मानुयोग में अरिहंत भगवन्त के पूर्व भवदेव लोक गमन आउखा च्यवन जन्म अभिषेक राज्य लक्ष्मी दीक्षा की पालखी दीक्षा तप केवल ज्ञान तीर्थ की प्रवृत्ति संघयण संठाण ऊंचाई आउखा वर्ण शिष्य गच्छ गणधर आर्या बड़ी साध्वी चार प्रकार के संघ का आचार विचार केवली मनः पर्यव ज्ञानी अवधि ज्ञानी मति ज्ञानी श्रुत ज्ञानी वादी अनुत्तर विमान में जाने वाले जितने साधु जितने साधु कर्म क्षय करके मोक्ष गये, पाद पोपगमन अनशन का अधिकार जो जहां जितने भक्त करके अन्तकृत केवली हुये मुनिवर उत्तम ज्ञान रज रहित प्रधान मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए इत्यादि और भी घने भाव मूल प्रथमानुयोगशास्त्र में कहे हैं, उस में तथा त्रिषष्टि शालाका पुरुष चरित्रा शास्त्रों में लिखा है कि "एकदा भरत चक्रवर्ति ने श्री ऋषभ देवको पुछा कि हे भगवन्! इस समवसरण में कोई ऐसा भी जीव है, जो कि इस अवसर्पिणी में तीर्थंकर होवेगा, तब भगवन्त ने कहा कि हे भरत! तेरे पुत्र मरिचि का जीव इस भरत क्षेत्र में त्रिपृष्ठ नामा प्रथम वासुदेव होवेगा मूका राजधानी में चक्रवर्ति होवेगा,और इसी भरत क्षेत्र में इसी अवसर्पिणी में महावीर नामा चौवीसमां तीर्थंकर होवेगा यह सुनकर भगवन्त को नमस्कार करके मरिचि के पास जाकर कहा कि हे मरिचि मैं तेरे वासु देवपने को नमस्कार नहीं करता हूं चक्रवर्ति पने को नमस्कार नहीं करता हूं, परन्तु तू इस अवसर्पिणी में महावीर नामा चौवीसमां तीर्थंकर होवेगा मैं तेरी उस अवस्था को नमस्कार करता हूं ऐसे कह कर मरिचि को तीन प्रदक्षिणा पूर्वक भरत चक्री ने नमस्कार करा, घने ढूंढिये यह वात मानते हैं, और पर्षदा में सुनाते भी हैं तथापि जेकर ढूंढिये यह वात नहीं मानते हैं तो हम उन से पूछते हैं कि बताओ श्री माहावीर स्वामी के जीव ने किस जगह किस समय किस कारण से ऐसा कर्म उपार्जन करा कि जिस के प्रभाव से श्री महावीर स्वामी के भव में ब्राह्मणी की कूख में पैदा होना पड़ा? जब ऐसे २ प्रत्यक्ष पाठ है तो फेर मंद मति जेठे के लिखने से द्रव्य निक्षेपा वंदनीक नहीं है ऐसे मानने वालों को महा मिथ्या दृष्टि कहने में क्या कुछ अत्युक्ति है? नहीं।

वंदना करी इस से तुमारा पंथ क्या सिद्ध होता है ? क्योंकि यहां तो द्रव्य निक्षेप को वंदना करने का कुछ कारण ही नहीं है ॥

तथा जेठे ने लिखा है कि "श्रीतीर्थंकर देव गृहवास में वंदनीक नहीं हैं" यह लिखना भी जेठे का जैनशास्त्रों की अनभिज्ञता का सूचक है, क्योंकि प्रभु को गर्भवास से लेके इंद्रने वारंवार नमस्कार करा ऐसा अधिकार सूत्रों में ठिकाने ठिकाने आता है,और शास्त्रकारों ने देवताओं को महाविवेकी गिना है, श्रीदशवैकालिक सूत्रकी प्रथम गाथा में लिखा है कि-

धम्मो मंगल मुक्किठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवावितं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो – १

इस गाथा में ऐसे कहा है कि जिस का मन सदा धर्म में वर्त्तता है तिस को देवता भी नमस्कार करते हैं, अपि शब्द करके यह सूचना करी है, कि मनुष्य करे इस में तो कहना ही क्या ? इस लेख के अनुसार मनुष्य से अधिक विवेक देवता ठहरते हैं इस वास्ते देवताओं के स्वामी इंद्रने गर्भ वास से लेके नमस्कार करा है, तो मनुष्य को करने योग्य है इस में क्या आश्चर्य ? *

तथा जेठा लिखता है कि "जमाली को तथा गोशाला प्रमुख को जिन मार्ग के प्रत्यनीक जान के तिन के शिष्य तिनको छोड़ के भगवत के पास आए, परंतु किसी ने भी तिनको द्रव्य गुरू जाने नमस्कार नहीं करा, इस वास्ते द्रव्य निक्षेपा वंदनीक नहीं है" उत्तर-

वाहरे अकल के दुश्मन ! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है, कि जिसका नाम, स्थापना, तथा द्रव्य वंदने पूजने योग्य हैं, तिसका भाव अशुद्ध है, तिसका नाम स्थापना तथा द्रव्य निक्षेपा भी अशुद्ध है. इस वास्ते सो वंदने पूजने योग्य नहीं है,और इसी वास्ते जमाली गोशाला प्रमुख वंदनीक नहीं है,तिनका भाव निक्षेपा अशुद्ध है जैसे तुम ढूंढिये जैन साधु का नाम धराते हो और थोड़ासा जैन साधु के सदृश उपकरणादि भेष रखते हो, परन्तु शुद्ध परंपराय वाले सम्यग् दृष्टि श्रावक तुमको मानते नहीं है तैसे ही जमाली गोशाला प्रमुख का भी

---

* प्रद्युम्न कुमार चरित्र में नारदजी ने श्रीनेमनाथ भगवान् को गृहवास में नमस्कार करने का अधिकार आता है, परन्तु गृहवास में तीर्थंकरको कोई भी नमस्कार नहीं करता है यह पाठ किस ढूंढक पुराण का है ?

जान लेना. तथा तुमारे कुपंथ में भी जो फसे हुए है, जब उनको यथार्थ शुद्ध जैन धर्म का ज्ञान होता है,उसी समय जमाली के शिष्यों कितरां तुम को छोड़ के शुद्ध जैन मार्ग को अंगीकार कर लेते हैं, और फेर वोह तुमारे सन्मुख देखना भी पसंद नहीं करते है ।

फेर जेठा लिखता है कि "जैसे मरे भरतार की प्रतिमा से स्त्री की कुछ भी गरज नहीं सरती है तैसे जिन प्रतिमा से भी कुछ गरज नहीं सरती है, इस वास्ते स्थापना निक्षेपा वंदनीक नहीं है" इस का उत्तर–जिस स्त्री का भरतार मरगया होवे वोह स्त्री लेकर आसन बिछाकर अपने पति का नाम लेवे तो क्या उस की भोग वा पुत्रोत्पत्ति आदि की गरज सरे ? कदापि नहीं, तबतो तुम ढूंढकों को चउवीस तीर्थंकरों का जाप भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस से तुमारे मत मूजिब तुमारी कुछ भी गरज नहीं सरेगी वाहरे जेठे मूढमते ! तैंने तो अपने ही आप अपने पगमें कुहाड़ा मारा इतना ही नहीं, परन्तु तेरा दिया दृष्टांत जिन प्रतिमा को लगताही नहीं है।

फेर जेठमल जी कहते हैं कि 'अजीव रूप स्थापना से क्या फायदा होवे' ? उत्तर–जैसे संयम के साधन वस्त्र पात्रादिक अजीव है, परन्तु तिस से चारित्र साध्या जाता है तैसे ही जिन प्रतिमा की स्थापना ज्ञान-शुद्धि तथा दर्शन शुद्धि प्रमुखका हेतु है जिसका अनुभव सम्यग दृष्टि जीवों को प्रत्यक्ष है. तथा जैन शास्त्रों में कहा है कि लड़के रस्ते में लकड़ी का घोड़ा बनाके खेलते होवें, तहां साधु आ निकलें, तो 'तेरा घोड़ा हटाले" ऐसे उस को घोड़ा कहे, परन्तु लकड़ी ना कहे, यदि लकड़ी कहे तो साधुको असत्य लगे इस बात को प्रायः ढूंढिये भी मानते है तो विचारना चाहिये कि इस में घोड़ा पन क्या है ? परन्तु घोड़े की स्थापना करी है; तो उस को घोड़ा ही कहना चाहिये इस वास्ते स्थापना सत्य समझनी तथा तुम ढूंढिये खंड के कुत्ते, गौ, भैंस, बैल, हाथी, घोडे, सुअर, आदमी, वगैरे खिलोने खाते नहीं हो, तिन में जीव पना कुछ भी नहीं है. परन्तु जीवपने की स्थापना है, इस वास्ते खाने योग्य नहीं है, * क्योंकि इस से पंचेंद्री जीव की घात जितना पाप लगता है, ऐसे तुम कहते हो तो इस कथनानुसार तुमारे माननेसे जिन ही स्थापना निक्षेप सिद्ध होता है । तथा श्री समवायांग सूत्र, दशाश्रुतस्कंध सूत्र दशवैकालिकादि

* कितने अज्ञानी ढूंढिये जिन प्रतिमा के द्वेष से आज कल इस बात को भी मानने से इनकारी होते है, यथा जिला लाहौर मुकाम माझा पट्टी में सिरीचंद नामा ढूंढक साधुको एक मुगल ने पूछा कि आप कुत्ते, गौ, भैंस, बैल, वगैरह खंड के खिलौने खाते है ? जवाब मिला कि बड़ी खुशी से खाते हैं ! अफसोस ॥

अनेक सूत्रों में तेतीस आशातना में गुरु संबंधी पाट, पीठ, संथारा प्रमुख को पैरलग जावे, तो गुरुकी आशातना होवे. ऐसे कहा है, इस पाठ से भी तो स्थापना निक्षेपा वंदनीक सिद्ध होता है, क्योंकि यह वस्तु भी तो अजीव हैं, जैसे पूर्वोक्त वस्तुओं में गुरुकी स्थापना होने से अविनय करने से शिष्य को आशातना लगती है और विनय करने से शिष्य को शुभ फल होता है; ऐसेही श्रीजिन प्रतिमा की स्थापना से भी जानलेना ॥ तथा देवताओं ने प्रभु की वंदना पूजा करी उस को जीत आचार में गिनके उस से देवता को कुछ भी पुण्य बंध नहीं होता है ऐसे सिद्ध किया है, परन्तु अरे मूर्ख शिरोमणि ढूंढ़को जीत आचार किसको कहतेहैं? सोभी तुम समझते नहींहो और कुछ भी न बन आवे, तो अवश्यमेव करना तिसका नाम "जीत आचार" जैसे श्रावकोंका जीत आचार है किमास मदिरा का खान पान नहीं करना-दो वक्त प्रतिक्रमण करना वगैरह अवश्य करणीय है, तो उससे पुण्य बंध नहींहोता है, ऐसे किस शास्त्रमें है? इस से तो अधिक पुण्य का बंध होता है यह बात निःसंसय है । तथा श्री जंबूद्वीप पन्नत्ति में तीर्थंकर के जन्म महोत्सव करने को इंद्रादिक देवते आए हैं तहां एकला जीत शब्द नहीं है, किन्तु वंदना, पूजना भक्ति धर्मादिको जानके आए लिखा है; और उववाइ सूत्र में जब भगवान् चंपा नगरी में पधारे थे तहां भी इसी तरे का पाठ है परन्तु जेठे मूढ़ मति को दृष्टि दोष से यह पाठ दीखा मालूम नहीं होता है ॥

तथा मूर्ख शिरोमणि जेठा लिखता है कि 'बनीये लोग अपना कुलाचार समझ के मांस भक्षण नहीं करते हैं, इस वास्ते तिनको पुण्य बंध नहीं होता है इस लेख से जेठेने अपनी कैसी मूर्खता दिखलाई है सो थोड़े से थोड़ी बुद्धि वाले की भी समझ में आजावे ऐसी है । अरे ढूंढियो ! तुमारे मन मे तुमको तिस वस्तु के त्याग ने से पुण्य का बंध नहीं होता होगा परन्तु हमतो ऐसे समझते हैं कि जितने सुमार्ग और पुण्य के रस्ते सब धर्म शास्त्रानुसार ही हैं, इस वास्ते धर्म शास्त्रानुसारही मांस मदिरा के भक्षण में पाप है, यह स्पष्ट मालूम होता है, और इस वास्ते सर्व श्रावक तिनका त्याग करते हैं, और इस पूर्वोक्त अभक्ष्य वस्तु के त्याग ने से महा पुण्य बांधते है ॥

तथा नमुत्थुणं कहने से इंद्र तथा देवताओंने पुण्यका बंध किया है यह बात भी निःसंशय है ॥

तथा इंद्र ने भी थूम कराके महा पुण्य उपार्जन करा है, और अन्य श्रावकों ने तथा राजाओं ने भी जिन मंदिर कराये हैं, और उस से सुगति प्राप्य करी है; जिसका वर्णन प्रथम लिख चुके हैं, फेर जेठा लिखता है कि जिन प्रतिमा

देख कें शुभ ध्यान पैदा होता है, तो मल्लिनाथ तिनकी स्त्री रूप की प्रतिमा को देख के राजे कामतुर क्यों होए ? इस वास्ते स्थापना निक्षेपा वंदनीक नहीं "उत्तर-महासती रूप वंती साध्वी को देखके कितने ही दुष्ट पुरुषों के हृदय में काम विकार उत्पन्न होता है. तो इस कर के जेठे की श्रद्धा के अनुसार तो साध्वी भी वंदनीक नठहरेगी ! तथा रूपवान् साधु को देखके कितनीक स्त्रियों का मन आसक्त हो जाता है वलभद्रादि मुनि वत् तो फेर जेठे के माने मूजिब तो साधु भी वंदनीक न ठहरेगा ? और भगवान् ने तो साधु साध्वी को वंदना नमस्कार करना श्रावक श्राविकाओं को फरमाया है; इस वास्ते पूर्वोक्त लेख सें जेठा जिनाज्ञाका उत्थापक सिद्ध होता है परन्तु इस वात में समझ ने का तो इतनाही है कि जिन दुष्ट पुरुषों को साध्वी को देखके तथा जिन दुष्ट स्त्रियों को साधु कों देखके काम उत्पन्न होता है सो तिन को मोहनी कर्म का उदय और खोटी गतिका बंधन है; परन्तु इस से कुछ साधु. साध्वी अवंदनीक सिद्ध नही होते हैं तैसे ही मल्लिनाथ जी को तथातिन की स्त्री रूपकी प्रतिमा को देखके ६ राजे कामातुर होए सो तिन को मोहनी कर्म का उदय है; परन्तु इस से कुछ द्रव्य निक्षेपा तथा स्थापना निखेपा अवंदनीक सिद्ध नहीं होता है; तथा अनार्य लोकों को प्रतिमा देखके शुभ ध्यान क्यों नहीं होता है ? ऐसे जेठे ने लिखा है परंतु तिसका कारण तो यह है कि तिसने प्रतिमा का अपने शुद्ध देवरूप करके जानी नहीं है, यदि जान लेवे तो तिनको शुभ ध्यान पैदा होवे, और वे आशातना भी करे नहीं साधुवत् ॥ तथा श्री उववाइ सूत्र में*कहा है कि

तं महाफलं खलु अरिहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्सवि सवणयाए ॥

अर्थ-अरिहंत भगवंत के नाम गोत्र के भी सुनने से निश्चय महाफल होता है इत्यादि सूत्र पाठ से भी नाम निखेपा महाफल दायक सिद्ध होता है ॥

अरे ढूंढको ! ऊपर लिखी बातों को ध्यान देकर वांचोगे, और विचार करोगे तो स्पष्ट मालूम होजावेगा कि चारों ही निक्षेपे वंदनीक हैं; इस वास्ते जेठमल जैसे कुमतियों के फंद में न फंस के शुद्ध मार्ग को पिछान के अंगीकार करो जिससे तुमारे आत्माका कल्याण होवे ॥

॥ इति ॥

---

* श्री रायपसेणी सूत्र तथा श्री भगवती सूत्र मे भी ऐसे ही कहा है ॥

(१३) नमुना देख के नाम याद आता है ।

जेठा मूढ मति तेरवें प्रश्नोत्तर में लिखता है कि "भगवंतकी प्रतिमा को देख के भगवान् याद आते है, इस वास्ते तुम जिन प्रतिमा को पूजते हो तो करकंडु आदिक बैल प्रमुख को देखके प्रतिबोध होए है, तो उन बैल प्रमुखको वंदनीक क्यो नहीं मानते हो ? तिसका उत्त-अरे ढूंढको ! हम जिस के भाव निक्षेपे को वांदते पूजते हैं, तिसके ही नामादि को पूजते है; और शास्त्रकारों ने भी ऐसे ही कहा हैं, हम भाव बैलादि को पूजते नहीं हैं; और न पूजने योग्य मान ते है, इसी वास्ते तिन के नामादि को भी नहीं पूजते है परन्तु तुमारे माने बत्तीस सूत्रों में तो करकंडु दुमुख नमिराजा, क्या क्या देखके प्रतिबोध हुये; सो है नहीं और अन्य सूत्र तथा ग्रन्थों को तो तुम मानते नहीं हो तो यह अधिकार कहांसे लाके जेठने लिखा है सो दिखाओ ।

तथा जेठा लिखता है कि "सूत्रों में चंपा प्रमुख नगरियों की सर्व वस्तुयों का वर्णन करा, परन्तु जिन मंदिर का वर्णन क्यों नहीं करा ? यदि होता तो करते इस वास्ते उस वक्त जिन मंदिर थे ही नहीं" तिसका उत्तर-श्रीउववाइ सूत्र में लिखा है कि चंपानगरी में "बहुला अरिहंत चेइआइ" अर्थात् चंपानगरी में बहुत अरिहंत के मंदिर हैं । तथा श्रीसमवायांग सूत्र में आनंदादिक दश श्रावकोंके जिन मंदिर कहे हैं, और आनंदादिकों ने वांदे पुजे है इत्यादि अनेक सुत्र पाठ है;तथापि मिथ्यात्व के उदय से जेठे को दीखा नहीं तो हम क्या करे ?

फेर जेठा लिखता है "आज काल प्रतिमा को वंदने वास्ते संघ निकालते हो तो साक्षात् भगवंतको वंदने वास्ते किसी श्रावक ने संघ क्यों नहीं निकाला तिसका उत्तर-भगवंतको वंदना करने पुजा करने को इकट्ठे होकर जाना उस का नाम संघ है सो जब भगवंत विचरते थे तब जहां जहां समवसरे थे तहां तिस तिस नगर के राजा, राज पुत्र, सेठ, सार्थवाह प्रमुख बड़े आडंबर से चतुरंगिणी सेना सजके प्रभुको वंदना करने वास्ते आयेथे; सो भी संघही है जिन के अनेक दृष्टांत सिद्धातों में प्रसिद्ध है तथा भगवंत श्रीमहावीरस्वामी पावापुरी में पधारे तब नव मलेच्छी जाति के और नवलेच्छी जाति के एवं अठारां देसके राजे इकट्ठे होकर प्रभु को वंदना करनें वास्ते आये है तिनको भी संघही कहते है, परन्तु जेठेको संघ शब्द के अर्थ की भी खबर नहीं मालूम देती है, तथा प्रभु जंगम तीर्थ थे ग्रामानु ग्राम विहार करते थे, एक ठिकाने स्थायी रहना नहीं था; इस से तिनको दूर वंदना करने वास्ते विशेषतः न गये होवे तो इस में क्या विरोध है ?

और चौथे आरे में भी स्थावर तीर्थ को वंदना करने वास्ते बड़े२ संघ निकालके बड़े आडम्बर से भरत चक्रवर्ति आदि गये हैं; तैसे आज काल भी सम्यग् दृष्टि जीव संघ निकाल के यात्रा के वास्ते जाते हैं;सो प्रथम लिखआए हैं?

फेर जेठमल लिखता है "सिद्धांतों में स्थविर भगवंत को वीतराग समान कहा है, परन्तु प्रतिमा को वीतराग समान नहीं कहा है" तिसका उत्तर-श्री-रायपसेणी सूत्र में सुरियाभ के अधिकार में जहां सुरियाभ ने जिन प्रतिमा के आगे धूप किया है, तहां सूत्र पाठ में कहा है कि ,'धुवं दाउण जिणवराणं अर्थ जिनेश्वर को धूप करके"। तो अरे कुमतियो! विचार करो इस ठिकाणे जिन जिन प्रतिमा को जिनवर तुल्य गिनी है तथा श्रीउववाइ सूत्र में भी जिन प्रतिमा को जिनवर तुल्य कहा है, सो नेत्र खोल के देखोगे तो दीखेगा॥

फेर जेठा लिखता है "भगवंत के समव सरण में जब देवानंदा आई तब प्रभुने कहा है कि "मम अम्मा" अर्थात् मेरी माता, परन्तु कहीं भी मेरी प्रतिमा ऐसे नहीं कहा है" उत्तर—अरे मूर्ख! प्रभु को कारण बिना बोल ने की क्या जरूरत थी? देवानंदा तो अपने पास आई तब श्रीगोतमस्वामी के पूछने से मेरी माता ऐसे कहा है; तैसे ही भगवंत की प्रतिमाको प्रभु के पास कोई लाया होता तो प्रभु 'मम पडिमा" ऐसे भी कहते इस में क्या आश्चर्य है?

फेर जेठा लिखता है 'नमुना तो बहुत वस्तुओं में से थोड़ी दिखानी तिसका नाम है" परन्तु मूढ़ जेठेने विचार नहीं करा है कि तिसको तो लोक भाषा में "वानगी" कहते हैं और नमुना तो मूल वस्तु जैसी दिखानी तिस को कहते हैं, जैसे वीतराग भगवंत शांतमुद्रा सहित पर्यंक आसने विराजते थे, तैसे शांत मुद्रा सहित जो प्रतिमा तिस को नमुना कहते हैं; और सो शास्त्रोक्त विधि से वंदना पूजा करने योग्य है, और कहा भी है कि "जिण पडिमा-जिन प्रतिमातीति जिन प्रतिमा" अर्थात् जो जिनेश्वर देवके आकार को दिखलावे तिस का नाम जिन प्रतिमा है, और प्रतिमा शब्द तुल्यवाची है परन्तु ढूंढकों को व्याकणर के ज्ञान रहित होने से तिसकी खबर कैसे होवे? तथा जेठे मूढ़ने लिखा है कि 'स्त्री का नमूना स्त्री, परन्तु पुतली नहीं" तिस का उत्तर-श्रीदशवैकालिक सूत्र में कहा है कि जिस मकान में स्त्रीका चित्राम होवे तिस मकान में साधु नहीं रहे तो जेठमल के लिख ने मूजिब सो स्त्री का नमुना नहीं है तो फेर साधु को न रहने का क्या कारण है? परन्तु अरे ढूंढको! चित्राम की पुतली है सो स्त्री का नमुना ही है तिस को देखने से कामादिक दोष उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते तिस मकान में रहने की साधुको शास्त्रकार की आज्ञा नहीं है, इसवास्ते जेठमलका लिखना बिल कुल झूठ है॥

यदि नमुना देख के नाम याद न आता होवे तो अपने पिता के विरह में तिस की मूर्त्तिसे मोह याद क्यों आता है ? तथा तुम ढूंढिये लोक नरकके, देवलोकों के, जंबूद्वीपके अढाइद्वीपके लोक नालिका वगैरह के चित्र लोकों को दिखाते हो, सो देख के देखने वाले को त्रास क्यों पैदा होता है ? सुख की इच्छा क्यों होती है ? जंबूद्वीपादि पदार्थों का ज्ञान क्यों होता है ? परंतु तुमारा लिखना स्वकपोल कल्पित है, और यह बात तो खरी है कि प्रभु की शांत मुद्रावाली प्रतिमा को देख के भव्य जीवोंके विषय कषाय उपशम भावको प्राप्त हो जाते है: और तिसको प्रणाम नमस्कार पूजादि करने से घणे सुकृतका संचय होता है ॥

तथा जेठा लिखता है कि "वीतरागदेव का नमुना साधु परंतु प्रतिमा नहीं" उत्तर-अरे मूढ ढूंढको ! वीतरागदेवका नमुना साधु नहीं हो सक्ता है, क्योंकि वीतराग देव राग द्वेष रहित है, और साधु राग द्वेष सहित है. साधु रजोहरण, मुहपत्ती पात्रे, झोली पडले आदि उपगरण सहित है. और प्रभु के पास इनमें से कोई भी उपगरण नहीं है, तथा प्रभु को चामर होते है, मस्तकों पर छत्र होते हैं पीछे भामंडल होता है, धर्मध्वज, धर्मचक्र प्रभुके आगे चलता है, रत्नजडित सिंहासनोंपर प्रभु विराजते हैं, देव दुंदुभि बजती है देवता जल थल के उत्पन्न हुए पांच वर्ण के पुष्पों की वर्षा करते है. अशोकवृक्ष से छाया करते है, चलते वक्त प्रभु के आगे नव कमल की रचना करते हैं, इत्यादि अनेक अतिशयों सहित तीर्थंकर भगवान् है, और साधुओंके पास तो इनमें से कुछ भी नहीं होता है तो जेठमलने साधु को वीतरागका नमुना कैसे ठहराया ? नहीं साधु वीत राग का नमुना कदापि नहीं हो सक्ता है. परन्तु पद्मासन युक्त जिन मुद्रा शांत दृष्टि सहित वीतराग सदृश जो अरिहंत की प्रतिमा है, सोतो तिसका नमुना सिद्ध हो सक्ता है और साधुका नमुना साधु, परन्तु जमालिमती गोशालकमती आदि नहीं, यह बात तो सत्य है जैसे वर्त्तमान समय में साधु का नमुना परंपरागत साधु होते हैं सो तो खरा परन्तु जिनाज्ञा के उत्थापक, जमालि गोशालकमती सदृश ढूंढक कुलिंगी है सो नहीं तथा वीतराग की प्रतिमा आराधने से वीतराग आराध्य होता है. जैसे अंतगडदशांग सूत्र में सुलसा के अधिकार में कहा है कि हरिणैगमेषी की प्रतिमा की आरा- धना करने से हरिणैगमेषी देव अराध्य हुआ, तैसेही जिनप्रतिमाको वंदन पूज नादिक से आराधनेसे सो भी सम्यगदृष्टि जीवो को आराध्य होता है ॥

तथा जेठमल लिखता है कि 'प्रतिमाको वंदना करने वास्ते संघ निकालना किसी जगह भी नहीं कहा है" तिस का उत्तर तो हम प्रथम लिख चुके हैं; परन्तु जब तुमारे साधू साध्वी आते है तब तुम इकट्ठे होके लेनेको जाते हो तब छोड़ ने को जाते हो, तथा मरते है तब विमान वगैरह बना के घणे आदमी इकट्ठे

होकर बुसाले डालते हों, जलाने जाते हो तथा कई जगह पूज्य की तिथि पर इकट्ठे होकर पोसह करते हो, इस तरां आनंद कामदेवादि श्रावकोने, सिद्धांतो में किसी जगह करा होवे तो बताओ ? और हमारे श्रावक जो करते है सो तो सूत्र पंचांगी तथा सुविहिताचार्य कृत ग्रन्थो के अनुसार करते हैं ॥

॥ इति ॥

———:०:———

(१४) नमो बंभीए लिवीए इस पाठ का अर्थ ।

चौदह में प्रश्नोत्तर में जेठे मूढ़मति ने लिखा है कि "भगवति सूत्र की आदि में (नमो बंभीए) इस पाठ करके गणधर देव ने ब्राह्मी लिपी के जाणन हार श्रीऋषभदेव को नमस्कार करा है, परन्तु अक्षरों को नमस्कार नहीं करा है; इस बात ऊपर अनुयोगद्वार सूत्र की साख दी है कि जैसे अनुयोगद्वार में पाथेका जाणनहार पुरुष सो ही पाथा ऐसे कहा है; तैसे ही इस ठिकाने भी लिपी का जाणनहार पुरुष, सो लिपी कहिये, और तिसको नमस्कार करा है" उत्तर-जो लिपी के जाणनहार को नमस्कार करा होवे तब तो ,भंगी चमार, फरंगी, मुसलमानादिक सर्व ढूंढकों के वंदनीक ठहरेंगे, क्योंकि वोह सर्व ब्राह्मालिपी को जानते हैं, यदि नैगमनयकी अपेक्षा कहोगे कि ब्राह्मालिपी के बनानेवालों को नमस्कार करा है तो शुद्ध नैगम नयके मतसे सर्व लिखारी तुमको वंदनीक होंगे जेकर कहोगे इस अवसर्पिणी में ब्राह्मालिपी के आदि कर्त्ता को नमस्कार करा है, तब तो जिस वक्त श्रीऋषभदेव जी ने ब्राह्मालिपी बनाई थी, उस वक्त तो वो असंयती थे; और असयति पने में तो तुम वंदनीक मानते नहीं हों तो "फेर नमो बंभीए लिवीए" इस पाठ का तुम क्या अर्थ करोगे सो बताओ ? और हम तो अक्षर रूप ब्राह्मालिपी को नमस्कार करते है, जिस से कुछ भी हमको बाधक नहीं है, तथा तुम ब्राह्मालिपी के आदि कर्ता को नमस्कार है ऐसे कहते हो सो तो मिथ्या ही है क्योंकि 'बंभीए लिवीए" इस पद का ऐसा अर्थ नहीं है, यह तो उपचार कर के खींच के अर्थ नीकालिए तो होवे, परन्तु बिना प्रयोजन उपचार करने से सूत्रदोष होता है,तथा तुमारे कथनानुसार ब्राह्मालिपी के कर्त्ताको इस ठिकाने नमस्कार करा है तोप्रभु केवल एक ब्राह्मीलिपी के ही कर्त्ता नहीं है, किन्तु कुल शिल्पके आदि कर्ता है; और यह अधिकार श्रीसमवायांग सूत्र में है तो वहां नमों 'सिप्पसयस्स" अर्थात् शिल्पके कर्ताको नमस्कार होवे ऐसा भ्रान्ति रहित पद गणधर महाराज ने क्यों न कहा ? इस वास्ते इस से यही निश्चय होता है कि तुम जो कहते हो, सो सूत्र विरुद्ध ही है तथा "नमो अरिहंताणं" इस

पद में क्या ऋषभदेव न आये जो फेर से "बंभीए लिवीए" यह पद कहके पृथक् दिखलाए? कदापि तुम कहोगे कि ब्राह्मालिपी की क्रिया इन्होंने ही दिखलाई है, इस वास्ते क्रिया गुण करके वंदनीक है; तब तो ऋषभदेव जी को वंदना करने से ब्राह्मालिपी को तो वंदना अवश्यमेव हो गई, क्योंकि क्रिया का कर्त्ता वंद्य तो क्रिया भी वंद्य हुई ॥

फेर जेठा लिखता है कि "अक्षर स्थापना तो सुधर्मास्वामी के वक्त में नहीं थी सो तो श्रीवीर निर्वाण के नवसो अस्सी (९८०) वर्ष पीछे पुस्तक लिखे गए तब हुआ है" ॥

उत्तर-अरे मूढ़! सुधर्मास्वामी के वक्त में अक्षर स्थापना ही नहीं थी तो क्या श्री ऋषभदेव जी ने अठारां लिपी दिखलाई थी तिनका व्यवच्छेद ही होगया था? और तैसे था, तो गृहस्थोंका लैन, देन, हुण्डी, पत्री, उगरांही, पत्र लेखन, व्याज वगैरह लौकिक व्यवहार कैसे चलता होगा? जरा विचार करके बोलो! परन्तु इस से हमको तो ऐसे मालूम होता है कि जेठमल को और तिस के ढूंढकों को सूत्रार्थ का ज्ञान ही नहीं है; क्योंकि श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कहा है कि-दव्वसुअंजं पत्तय पोथ्थयालिहियं अर्थ-द्रव्य श्रुत सो जो पत्र पुस्तक में लिखा हुआ हो तो अरे कुमतियो! यदि उन दिनों में ज्ञान लिखा हुआ, और लिखा जाता न होता तो गणधर महाराज ऐसे क्यों कहते? इस वास्ते मतलब यही समझनेका है कि उन दिनों में पुस्तक थे; अठारां लिपी थी; परन्तु फकत समग्र सूत्र लिखे हुए नहीं थे; सो वीर निर्वाण के ९८० वर्ष पीछे लिखे गए; आखीर में हम तुमको इतना ही पूछते है कि तुम जो कहते हो कि श्री वीर निर्वाण के बाद (९८०) वर्ष सूत्र पुस्तकारूढ़ हुए हैं सो किस आधार से कहते हो? क्योंकि तुमारे माने बत्तीस सूत्रों में तो यह बात ही नहीं है ॥

तथा जेठमल लिखता है कि "अठारां लिपी अक्षर रूप वंदनीक मानोगे तो तुमको पुराण कुरान वगैरह सर्व शास्त्र वंदनीक होंगे"। उत्तर-श्रीनंदि सूत्र में अक्षर को श्रुत ज्ञान कहा है और ज्ञान नमस्कार करने योग्य है; परन्तु तिस में कहा! भावार्थ-वंदनीक नहीं है श्रीनंदि सूत्र में कहा है कि अन्य दर्शनियों के कुल शास्त्र जो मिथ्या श्रुत कहाते हैं; वे यदि सम्यग्दृष्टि के हाथ में है तो सम्यक् शास्त्रही हैं, और जैनदर्शनके शास्त्र यदि मिथ्यादृष्टिके हाथ में हैं तो वे मिथ्या श्रुत ही हैं इस वास्ते अक्षर वंदना करने में कुछ भी बाधक नहीं है और जेठमल ने लिखा है कि- जिनवाणी भावश्रुत है" परन्तु यह लिखना मिथ्या है, क्योंकि जिन वाणी को श्रीनंदि सूत्र में द्रव्यश्रुत कहा है और श्रीभगवती सूत्र में 'नमो सुअ देवयाए" इस पाठ करके गणधरदेवने जिनवाणी को

नमस्कार किया है, तैसे ही ब्राह्मीलीपि नमस्कार करने योग्य है. जैसे जिन वांणी भाशा वर्गणा के पुद्गल रूप करके द्रव्य है, तैसे ब्राह्मीलीपि भी अक्षर रूप करके द्रव्य है ॥

अरे ढूंढको ! जब तुम आदिकर्त्ता को नमस्कार करने की रीति स्वीकार करते हो, तो तीर्थंकरों के आदि कर्त्ता तिन के माता पिता हैं तिनको नमस्कार क्यों नहीं करते हो ? अरे भाइयो ! जरा ध्यान दे कर, देखो तो ऊपर कुल दृष्टांतों से "नमो बंभीए लीवीए" का अर्थ ब्राह्मिलिपि को नमस्कार हो ऐसा ही होता है इसवास्ते जरा नेत्र खोलके देखो जिससे तीर्थंकर गणधर की आज्ञा के लोपक न बनो ॥ इति ॥

(१५) जंघाचारण विद्याचारण साधुओं ने जिन प्रतिमा वांदी है ।

पंदर में प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "जंघाचारण तथा विद्या चारण मुनियों ने जिन प्रतिमा नहीं वांदी है" यह लिखना सर्वथा असत्य है क्योंकि श्रीभगवती सूत्र शतक २० उद्देशे ९ में जंघाचारण तथा विद्याचारण थता मुनियोंका अधिकार है, तिस में उन्होंने जिन प्रतिमा वांदी है, ऐसे प्रत्यक्षरीति से कहा है तिस में से थोड़ासा सूत्र पाठ इस ठिकाने लिखते हैं । यतः-

जंघाचारस्सणं भंते तिरियं केवइए गति विसए पन्नत्ता गोयमा सेणं इत्तो एगेणं उप्पाएणं रुअगवरे दीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्त माणे बीइएणं उप्पाएणं णंदीसरे दीवे समोसरणं करेइ तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता इह मागच्छइ इह चेइआइं वंदइ जंघा चारस्सणं गोयमा तिरियं एवइए गतिविसए पन्नत्ता । जंघा चारस्सणं भंते उड्ढं केवइए गइ विसए पन्नत्ता गोयमा सेणं इत्तो एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइ आइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तमाणे बितएणं

उप्पाएणं णंदणवणे समोसरणं करइ करइत्ता तहिं चेइ आइं वंदइ वंदइत्ता इह माग च्छइ इह मागच्छइता इह चेइआइं वंदइ जंघा चारस्सणं गोयमा उड्ढं एवइए गति विसए पन्नत्ता ।

अर्थ–हे भगवन् ! जंघाचारण मुनिका तिरछी गति का विषय कितना है ? गौतम ! सो एक डिगले रुचकवर जो तेरमा द्वीप है तिस में समवसरण करे, करके तहां के चैत्य अर्थात्–शाश्वते जिन मंदिर (सिद्धायतन) में शाश्वती जिन प्रतिमा को वांदे; वांदके तहां से पीछे निवर्त्तता हुआ दूसरे डिगले नंदीश्वर द्वीप में समवसरण करे, करके तहांके चैत्योंको वांदे; वांदके यहां अर्थात् भरत क्षेत्र में आवे, आकर के यहां के चैत्य अर्थात् अशाश्वती जिन प्रतिमाको वांदे जंघाचारणका तिरछी गतिका विषय इतना है तो हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का ऊर्ध्व गतिका विषय कितना है ? गौतम ! सो एक डिगलमें पांडुक वन में समवसरण करे, करके तहां के चैत्यों को वांदे; वांद के तहां से पीछे फिरता हुआ दूसरे डिगल में नंदन वन में समवसरण करे, करके तहां के चैत्य वांदे; वांदके यहां आवे आकर के यहां के चैत्य वांदे;हे गौतम ! जंघाचारण की ऊर्ध्व गतिका विषय इतना है ॥ जैसे जंघाचारण की गतिका विषय पूर्वोक्त पाठ में कहा है तैसे विद्याचारण मुनि की गति का विषय भी इसी उद्देशे में कहा है विद्याचारण यहां से एक डिगल में मानुषोत्तर पर्वत परजाके तहां के चैत्य वांदते है और दूसरे डिगल में नंदीश्वर द्वीप में जाके तहांके चैत्य वांदते है; पीछे फिरते हुए एक ही डिगल में यहां आकरके यहां के चैत्य वांदते हैं इस मूजिब विद्याचारण की तिरछी गतिका विषय है. ऊर्ध्वगति में एक डिगल में नंदनवन में जाके तहां के चैत्य वांदे हैं;और दूसरे डिगल में पांडुक वन में जाके वहांके चैत वांदे है, पीछे फिरते हुए एक ही डिगल में यहां आकर के यहांके चैत्य वांदे हैं, इस मूजिब विद्याचारण ऊर्ध्व गतिका विषय है, सो पाठ यह है:–

विद्याचारणस्सणं भन्तेतिरये केवइए गइविसएपन्नत्ते गोयमासेणं इत्तोएगेण उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता बीएणं उप्पाएणं णंदिसरवरदीवे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइ आइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इह मागच्छइ इह मागच्छइत्ता

इह चेईआइं वंदइ विज्जा चारणस्सणं गोयमा तिरियं एव इए गइ विसए पन्नत्ते ॥ विज्जाचारणस्सणं भंते उड्ढं केवइए गइ विसए पन्नत्ते गोयमा सेणं इत्तो एगेणं उप्पाएणं णंद-णवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइ आइं वंदइ वंदइत्ता बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ करइत्ता तहिं चेइ आइं वंदइ वंदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ इह-मागच्छइत्ता इह चेइ आइं वंदइ विज्जा चारणस्सणं गोयमा उड्ढं एवइ एगइ विसए पन्नत्ते ॥ इति ॥

जेठमल लिखता है कि "जंघाचारण तथा विद्याचारण मुनियोंने श्रीरुचक द्वीप तथा मानुषोत्तर पर्वत पर सिद्धायतन वांदे कहते हो परन्तु दोनों ठिकाने तो सिद्धायतन बिलकुल है नहीं तो कहांसे वांदे ॥

उत्तर—श्रीमनुषोत्तर पर्वत पर चार सिद्धायतन हैं ऐसे श्रीद्वीप सागर पन्नत्ति सूत्र में कहा है तथा श्रीरत्न शेखरसूरि जो कि महा धुरंधर पंडितथे उन्होंने श्रीक्षेत्रसमास नामा ग्रन्थ में ऐसे कहा है—यतः

चउसुवि इसुयारेसु इक्किक्कनर नगंमिचत्तारि । कूडोवरि जिणभवणा कुलगिरि जिणभवण परिमाणा ॥ २५७ ॥

अर्थ—चार इषुकार में एक एक और मनुषोत्तर पर्वत में चार कूट पर चार जिन भवन हैं सो कुलगिरि के जिन भवन प्रमाण है ॥

तत्तो दुगुणपमाणा चउदारा थुत्त वण्णिय सुरुवा ॥ नंदीसर बावणा चउकुंडलि रुयगि चत्तारि ॥ २५८ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त जिनभवन से दुगुने प्रमाण के चार द्वार वाले और पूर्वाचार्यों ने वर्णन किया है स्वरूप जिन का ऐसे नंदीश्वर में (५२) कुंडलगिरि में चार (४) एवं कुल साठ (६०) जिनभवन है। इत्यादि अनेक जैन शास्त्रों में कथन है, इस वास्ते मानुषोत्तर तथा रुचकद्वीप पर जिन भवन नहीं है ऐसा जेठमल

का लेख बिलकुल असत्य है। पुन.जेठा लिखता है "किनंदीश्वरद्वीप में समभूतला ऊपर तो जिनभवन कहे नहीं है, और अंजनगिरि तो चउरासी (८४) हजार योजन ऊंचा है,तिस परउपर सिद्धायत हैं,तहां तो जंघाचारणा विद्याचारण गये नहीं है" इस का उत्तर-सिद्धायतन को वंदना करने वास्ते ही चारण मुनि तहां गये हैं तो जिस कार्य के वास्ते तहां गये है, सो कार्य नहीं किया ऐसे कहा ही नहीं जाता है, क्योंकि श्रीभगवती सूत्र में तहां के चैत्य वांदे ऐसे कहा है; तथा तिन की ऊर्ध्वगति पांडुकवन जो समभूतला से निनानवे (९९) हजार योजन ऊंचा है तहां तक जाने की है ऐसे भी तिस ही सूत्र में कहा है, और यह अंजनगिरि तो चउरासी (८४) हजार योजन ऊंचा है तो तहां गये हैं उस में कोई भी बाधक नहीं है और जेठमल ने नंदीश्वरद्वीप में चार सिद्धायतन लिखे हैं; परन्तु अंजनगिरि चारके ऊपर चार हैं और दधिमुख तथा रतिकर ऊपर मिला के ५२ हैं, और पूर्वोक्त पाठ में भी ५२ ही कहे है, इस वास्ते जेठमल का लिखना बिलकु असत्य है।

तथा जेठमल ने लिखा है-"प्रतिमा वांदी है तहां (चेइ आई वंदित्तए) ऐसा पाठ है परन्तु (नमंसइ) ऐसा शब्द नहीं है इस वास्ते प्रतिमा को प्रत्यक्ष देखी होवे तो नमंसइ शब्द क्यों नहीं कहा?" तिस का उत्तर-वंदइ और नमंसइ दोनों शब्दोंका भावार्थ-एक ही है इस वास्ते केवल वंदइ शब्द कहा है तिस में कोई विरोध नहीं हैं परन्तु वंदइ एक शब्द है वास्ते तहां प्रतिमा वांदी ही नहीं है, ऐसे कथन से जेठमल श्रीभगवती सूत्र के पाठको विराधने वाला सिद्ध होता है।

पुनः जेठमल लिखता है कि-"तहां चेइआई" शब्द करके चारण मुनिने प्रतिमा वांदी नहीं है किन्तु इरियावही पडिक्कमने वक्त लोगस्स कहकर अरिहंत को वांदा है सो चैत्य वंदना करी है"-उत्तर अरे भाई चैत्य शब्दका अर्थ अरिहंत ऐसा किसी भी शास्त्र में कहा नहीं है, चैत्य शब्दका तो जिन मंदिर, जिनबिंब और चोतरा बद्ध वृक्ष यह तीन अर्थ अनेकार्थ संग्रहादि ग्रन्थों में कहे है * और इरिया वही पडिकमने में लोगस्स कहा सो चैत्य वंदना करी ऐसे तुम कहते हो तो सूत्रों में जहां जहां इरियावही पडिकमनेका अधिकार है तहां तहां इरिया वही पडिक में, ऐसें तो कहा है, परन्तु किसी जगह भी चैत्य वंदना करे ऐसे नहीं कहा है तो इस ठिकाने अर्थ फिराने के वास्ते मन में आवे-तैसे कुतर्क

* किसी ठिकाने चैत्य शब्द का प्रतिमा मात्र अर्थ भी होता है,अन्य कई कोषों में देवस्थान देववासादि अर्थ भी लिखे है,परन्तु चैत्य शब्द का अर्थ अरिहंत तो कहीं भी नहीं मालूम होता है।

करते हो सो तुमारा मिथ्यात्व का उदय है ॥

फेर 'चेइआई वंदित्तए" इस शब्द का अर्थ फिराने वास्ते जेठमल ने लिखा है कि 'तिस वाक्यका अर्थ जो प्रतिमा वांदी ऐसा है तो नंदीश्वरद्वीप में तो यह अर्थ मिलेगा परन्तु मानुषोत्तर पर्वत पर और रुचकद्वीप में प्रतिमा नहीं है तहां कैसे मिलेगा'' ? तिसका उत्तर-हमने प्रथम तहां जिन भवन और जिन प्रतिमा है ऐसा सिद्ध करदिया है, इस वास्ते चारण मुनियों ने प्रतिमाही वांदी हैं ऐसे सिद्ध होता है, और इस से ढूंढकों की धारी कुयुक्तियां निरर्थक है।

तथा जेठमल ने लिखा है कि "जंघा चारण विद्याचरण मुनि प्रतिमा वांदने को बिलकुल गये नहीं है क्योंकि जो प्रतिमा वांदने को गये हो तो पीछे आते हुए मानुषोत्तर पर्वत पर सिद्धायतन हैं तिनको वंदना क्यों नहीं करी" ? इस का उत्तर-चारण मुनि प्रतिमा वांदने को ही गये हैं, परन्तु पीछे आते हुए जो मानुषोत्तर के चैत्य नहीं वांदे है सो तिनकी गतिका स्वभाव है; क्योंकि बीच में दूसरा विसामा ले नहीं सके हैं, यह बात श्रीभगवती सूत्र में प्रसिद्ध है, परन्तु पूर्वोक्त लेख से जेठमल महामृषावादी उत्सूत्र प्ररूपक था ऐसे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है. क्योंकि पूर्वोक्त प्रश्नोत्तर में वो आपही लिखता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर चैत्य नहीं हैं और इस प्रश्न में लिखता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर चैत्य क्यों नहीं वांदे ? इस से सिद्ध होता है कि मानुषोत्तर पर्वतपर चैत्य ज़रूर है परन्तु जहां जैसा अपने आपको अच्छालगा वैसा जेठमल ने लिख दिया है, किन्तु सूत्र विरुद्ध लिखने का भय बिलकुल रक्खा मालूम नहीं होता है. पुनः जेठमल ने लिखा है कि 'चारण मुनियों को चारित्रमोहनी का उदय है इस वास्ते उनको जाना पड़ा है" परन्तु अरेमूढ़ ! यह तो प्रत्यक्ष है कि उन को तो इस कार्य से उलटी दर्शन शुद्धि है, परन्तु चारित्र मोहनीका उदय तो तुम ढूंढकों को है ऐसे प्रत्यक्ष मालूम होता है ॥

फेर जेठमल लिखता है कि 'चारण मुनियों ने अपने स्थान में आनके कौन से चैत्य वांदे" उत्तर-सूत्र पाठ में चारण मुनि "इह मागच्छइ" अर्थात् यहां आवे ऐसे कहा है. तिस का भावार्थ-यह है कि जिस क्षेत्र से गये होवे तिस क्षेत्र में आवे, आनके 'इह चेइ आई वंदइ" अर्थात् आशाश्वती जिन प्रतिमा तिन को वांदे ऐसे कहा है. परन्तु अपने उपाश्रय आवे ऐसे नहीं कहा है, इस बाबत में जेठमल कुयुक्ति करके लिखता है कि उपाश्रय में तो चैत्य होवे नहीं इस वास्ते तहां कौन से चैत्य वांदे" ? यह केवल जेठमल की बुद्धिका अजीर्ण है, अन्य नहीं. और श्रीभगवती सूत्र के पाठ से तो शाश्वती अशाश्वती जिन प्रतिमा सरीखी ही है, और इन दोनो में अंशमात्र भी फेर नहीं है, ऐसे सिद्ध होता हैं॥

जेठमल ने लिखा है कि "चारणमुनि वे कार्य करके आनेके आलोये पडिक में विना काल करे तो विराधक होवे ऐसे कहा है. सो चक्षु इंद्रिय के विषय की प्रेरणा से द्वीप समुद्र देखने को गये हैं इस वास्ते समझना" यह लिखना जेठमलका विलकुल मिथ्या है क्योंकि तिन को जो आलोचना प्रतिक्रमण करना है सो जिनवंदनाका नहीं है किन्तु उस में होए प्रमाद का है; जैसे साधु गोचरी करके थानके आलोचना करता है सो गोचरी की नहीं, किन्तु उस में प्रमाद वश से लगे दूषणों की आलोचना करता है, तैसे ही चारण मुनियों को भी लब्ध्युपजीवन प्रमाद गति है। और दूसरा प्रमादका स्थानक यह है कि जो लब्धि के बल से तीर के वेगकी तरें शीघ्र गतिसे चलते हुए रस्ते में तीर्थ यात्रा प्रमुख शाश्वते अशाश्वते जिनमंदिर विना वांदे रह जाते हैं, तत्संबंधी चित्त में बहुत खेद उत्पन्न होता है; इस तरह तीरके वेगकी तरें गये सो भी आलोचना स्थानक कहिये ॥

फेर जेठमल ने अरिहंत को चैत्य ठहराने वास्ते सूत्र पाठ लिखा है तिस में "देवयं चेइयं" इस शब्द का अर्थ धर्म देव के समान ज्ञानवंत की" ऐसे किया हैं सो झूठा है क्योंकि देवयं चेइयं-दैवतं चैत्यं इव-अर्थ-देवरूप चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा की जैसे पज्जुवासामि-सेवा करता हूं. यह अर्थ खरा हैं, जेठा और तिस के ढूंढक इन दोनो शब्दों को द्वितीयाविभक्ति का वचन मात्र ही समझते हैं; परन्तु व्याकरण ज्ञान विना शुद्ध विभक्ति, और तिस के अर्थ का भान कहां से होवे ? केवल अपनी असत्य वात को सिद्ध करनेके वास्ते जो अर्थ ठीक लगेसो लगा देना ऐसा तिनका दुराशय है, ऐसा इस वात से प्रत्यक्ष सिद्ध होता हैं ॥

फिर समवायांग सूत्र का चैत्य वृक्ष संबंधी पाठ लिखा हैं सो इस ठिकाने विना प्रसंग हैं, तैसे ही तिस पाठके लिखने का प्रयोजन भी नहीं हैं, परन्तु फकत पोथी बडी करनी, और हमने वहुत सूत्र पाठ लिखे हैं, ऐसे दिखा के भद्रिक जीवों को अपने फंदेमें फंसाना यही मुख्य हेतु मालूम होता है, और उस जगह चैत्यवृक्ष कहे है सो ज्ञानकी निश्चय नहीं कहे है किंतु चौतराबंध वृक्ष का नाम ही चैत्यवृक्ष हैं, और सो हम इसी अधिकार में प्रथम लिखआये है। भगवान् जिस वृक्ष नीचे केवल ज्ञान पाये हैं. सो वृक्ष चौतरा सहित थे, और इसी वास्ते उन को चैत्यवृक्ष कहा हैं,ऐसे समझना. परन्तु चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान नहीं समझना। तथा तुम ढूंढक वत्तीस सूत्रों के विना अन्य कोई सूत्र तो मानते नहीं तो अर्थ करते हो सो किस के आधार से करते हो ? सो वताओ, क्योंकि कुल कोषों में प्रायः हमारे कहे मूजिव ही चैत्य शब्द का अर्थ कथन

किया हैं, परन्तु तुम चैत्य शब्द का अर्थ साधु तथा ज्ञान वगैरह करते हो सो केवल स्वकपोलकल्पित है; और इस से स्पष्ट मालूम होता है कि निःकेवल असत्य बोलके तथा असत्य प्ररूपणा करके विचारे भोले लोगों को अपने कुपंथ में फंसाते हो ॥ ॥ इति ॥

———— ०:०:० ————

(१६) आनंद श्रावक ने जिनप्रतिमा वांदी है ॥

सोलवें प्रश्नोत्तर में आनंद श्रावक ने जिन प्रतिमा वांदी नहीं हैं,ऐसे ठहराने के वास्ते जेठमल ने उपासक दशांग सूत्र का पाठ लिख के तिस का अर्थ फिराया है इस वास्ते सोही सूत्र पाठ सच्चे यथार्थ अर्थ सहित नीचे लिखते है, श्रीउपासक दशांग सूत्र प्रथमाध्ययने. यतः—

नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइंचणं अन्नउत्थिया वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणा लत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिंअसणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउंवा अणुप्पदाउं वा णण्णत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकंतारेणं कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण पाण खाइम साइमेणं वथ्थपडिग्गह कंबल पाय पुछणेणं पाडिहारिय पीढफलग सेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणाय पडिलाभमाणस्स विहरित्तएत्ति कट्टुइमं एयाणुरूवं अभिग्गह अभिगिण्हइं ॥

अर्थ—हे भगवन् ! मुझको न कल्पे क्या न कल्पे सो कहते है, आजसे लेके अन्य तीर्थी चरकादि अन्यतीर्थी के देव हरि हरादिक, और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत के चैत्य-जिन प्रतिमा इनको वंदना करना, नमस्कार करना

तथा प्रथम से विना बुलाये बारं बुलाना वारंवार बुलाना, यह सर्व न कल्पे, तथा तिन को अशन पान खादिम और स्वादिम यह चार प्रकारका आहार देना. वारंवार न कल्पे परन्तु इतने कारणविना सो कहते हैं, राजाकी आज्ञासे, लोक के समुदाय की आज्ञासे बलवान् के आग्रह से. क्षुद्रदेवताके आग्रह से, गुरु-माता पिता कला चार्य वगैरह के आग्रह से, इन ६ छिंडी (आगार) से पूर्व कहे तिनको वंदनादि करने से दोष न लागे; यह न कल्पे सो कहा, अब कल्पे सो कहते हैं, मुझको कल्पे जैन श्रमण निर्ग्रंथ को फासु अर्थात् जीव रहित. अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र. पात्र, कंबल. रजोहरण, और वरत के पीछे देने ऐसे बाजोठ (चोकी) पट्टादि पटडा वसती तृणादिक संथारा तथा औषध-भेषज से प्रातिलाभता थका विचरना ऐसे कहके एतद्रूप अभिग्रह ग्रहण करे * ॥

---

* टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि महाराजने यही अर्थ करा है—तथाहि

नोखलु इत्यादि नोखलु मम भदंत भगवन् कल्पते युज्यते अद्य प्रभृति इतः सम्यक्त्वप्रति पत्तिदिनादारभ्य निरति चारसम्यक्त्व परिपालनार्थं तद्यतनामाश्रित्य अन्नउत्थियएत्ति जैन यूथाद्यदन्ययूथं संघान्तरं तीर्थान्तर मित्यर्थस्त दस्तियेषांतेन्ययूथिका श्चरकादि कुतीर्थिका स्तान् अन्ययूथिक दैवतानिवाहरि हरादीनि अन्ययूथिकपरि गृहीता निवा अर्हच्चैत्यानि अर्हत्प्रतिमालक्षणानि यथा भौतपरि गृहीतानिवीरभद्र महाकालादीनि वन्दितुं वा अभिवादनं कर्तुं नमस्यतुं वा प्रणाम पूर्वक प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्त्तनं कर्तुं तद्भक्तानां मिथ्यात्व स्थिरी करणा दिदोष प्रसङ्गादित्यभिप्रायः तथा पूर्वं प्रथम मनालसेन सता अन्य तीर्थि केस्तानेवालपितुंवा सकृत्सम्भाषितुं संलपितुंवा पुनः पुनः संलापं कर्तुंयतस्तेतप्त तरायोगोलककल्पाःखल्वासनादि क्रियायांनि युक्ताभवन्ति तत्प्रत्ययश्चकर्मबन्धः स्यात्तथालापादेस्सकाशात्परिचयेन तस्यैवतत्परिजनस्य वा मिथ्यात्व प्राप्तिरिति प्रथमालसेनत्व संभ्रमं लोकापवादभयात्की दृशस्त्व मित्यादिवाच्यमिति तथा तेभ्योन्ययूथिकेभ्यो शनादि दातुंवा सकृत् अनु प्रदातुंवापुनः पुनारित्यर्थः; अयंच निषेधो धर्म बुद्धैव करुणयातु दद्यादपि किंसर्वथा न कल्पत इत्याह नन्नत्थ राया भिओगेण तितृतीयायाः पञ्चम्यर्थत्वात् राजाभियोगं वर्जयित्वेत्यथः राजा भियोगस्तु राजपरतन्त्रता गणः समुदायस्तद भियोगो वश्यता गणाभियोगः तस्मात् बलाभियोगो नाम राजगण व्यतिरिक्तस्य बल वतः पारतंत्र्यं देवताभियोगो देवपरतंत्रता गुरुनिग्गहो। मातापितृ पार वश्यं गुरूणां वा चैत्यसाधूनां निग्रहः प्रत्यनीककृतोपद्रवो गुरुनिग्रहस्तत्रोपस्थिते तद्रक्षार्थमन्ययूथिकादिभ्यो दददपि नातिक्रामाति सम्यक्त्वमिति वित्तीकंतारेणंति वृत्तिर्जीविका तस्याःकान्तार मरण्यं तदिव कान्तार क्षेत्रं कालो वा वृत्तिकान्तार निर्वाहाभाव इत्यर्थः तस्मा

ऊपर लिखे सूत्र पाठ के अर्थ में जेठमल ढूंढक लिखता है कि "आनंद श्रावक ने न कल्पे में अन्य तीर्थी के ग्रहण किये चैत्य अर्थात् भ्रष्टाचारी साधु को वोसराया है परन्तु अन्य तीर्थी की ग्रहण करी जिन प्रतिमा नहीं वोसराई

दन्य तत्सिषेधो दानप्रणामादे रिति प्रकृतमिति पडिग्गहंतिपात्रं पीढंति पट्टादिकं फलगंति अवष्टंभ।दिकं फलकं सेसज्जंति पथ्यमित्यादि ॥

"तथा वंगालेकी रॉयल एसीयाटिक सुसाइटीके सेक्रटरी डाक्टर ए, एफ रूडॉल्फ हार्नल साहिबने भी यही अर्थ *लिखा है तथाहिः*-

58. Then the householder Ananda, in the presence of the Samana, the blessed Mahavira, took on himself the twelve-fold law of a householder, consisting of the five lesser vows and the seven disciplinary vows; and having done so, he praised and worshipped the Samana, the blessed Mahavira, and then spake *to him* thus: 'Truly, Reverend Sir, it does not befit me, from this day forward, to praise and worship any man of a heterodox community, * or any of the devas † of a heterodox community, or any of the objects of reverence of a heterodox community; or without being first addressed by them; to address them or converse with them; or to give them or supply them with food or drink or delicacies or relishes except it be by the command of any powerful man, or by the command of a deva, or by the order of one's elders, or by the exigencies of living. *On the other hand* it behoves me, to devote myself to providing the Samanas of the Niggantha faith with pure and acceptable food, drink, delicacies and relishes, with clothes, blankets, alms,-bowls, and brooms, with stool, plank and bedding, and with spices and medicines.

---

* Such as the charaka (Charkadi-Kutirthikah, comm), see Bhag, pp. 163, 214.

† Such as Hari (Vishnu) and Hara (Shiva), (comm).

है. क्योंकि अन्य तीर्थीकी ग्रहण करी प्रतिमा वोसराई होती तो स्वमतेगृहीत जिन प्रतिमा वांदनी रही सोकल्पे के पाठ में कहता" इसका उत्तर-अरे भाई ! कल्पे के पाठ में तो अरिहंत देव और साधु को वंदना नमस्कार भी नहीं कहीं है, केवल साधुको ही आहार देना कहा है. तो वो भी क्या तिस को वांदने योग्य नहीं थे ? परन्तु जब अन्यतीर्थी को वंदना करने का निषेध किया, तब मुनिको वंदना करनी यह भावार्थ निकले ही हैं, तथा अन्य तीर्थी के देवकी प्रतिमा को वंदनाका निषेध किया तब जिन प्रतिमा को वंदना करनी ऐसा निश्चय होता है. और अंबड के आलावे अन्य तीर्थीका निषेध. और स्वतीर्थी को वंदना वगैरह करनी ऐसा डबल आलावा कहा है तथा जो मुनि पर तीर्थी ने ग्रहण किया अर्थात् अन्य तीर्थी में गया सो मुनितो पर तीर्थी ही कहिये इसे वास्ते अन्य तीर्थी को वंदना न करूं इस में सो आगया. फेर कहने की कोई जरूरत न थी, और चैत्य शब्दका अर्थ साधु करते हो सो निः केवल खोटा है, क्योंकि श्रीभगवती सूत्र में असुर कुमार देवता सौधर्म देव लोक में जाते हैं; तब एक अरिहंत, दूसरा चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा. और तीसरा अनगार अर्थात् साधु, इन तीनोंका शरण करते हैं ऐसे कहा है. यतः-

नन्नत्थ अरहिंते वा अरिहंत चेइयाणि वा भाविअप्पणो अणगारस्स वाणिस्साव उड्ढं उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो ।

इस पाठ में (१) अरहित. (२) चैत्य और, ३ अनगार, यह तीन कहे हैं, यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु होवे तो अनगार पृथक् क्यों कहा,जरा ध्यान देके विचार देखो इस वास्ते चैत्य शब्द का अर्थ मुनि करते हो सो खोटा है, श्रीउपासक दशांगके पाठका सच्चा अर्थ पूर्वाचार्य जो कि महाधुरंधर केवली नहीं परन्तु केवली सरिखे थे, वे कर गये है, सो प्रथम हमने लिख दिया है; परन्तु जेठमल भाग्य हीन था जिस से सच्चा अर्थ उस को नहीं भान हुआ, और चैत्य साधुका नाम कहते हो सो तो जैनेंद्रव्याकर. हैमीकोष अन्य व्याकरण, कोष, तथा सिद्धांत वगैरह किसी भी ग्रन्थ में चैत्य शब्द का अर्थ साधु भी कोई नहीं है कि जिस से चैत्य शब्द साधु वाचक होवे तो जेठमलने यह अर्थ किस आधारसे करा ? परन्तु इस से क्या ! जैसे कोई कुंभार, अथवा हज्जाम (नाई) जवाहिर के परीक्षक जौहरी को झूठा कहे तो क्या बुद्धिमान पुरुष उस कुंभार. वा हज्जाम को जौहरी मान लेंगे ? कदापि नहीं. तैसे ही ज्ञान वान् पूर्वाचार्यों के करे अर्थ असत्य ठहराके अक्षर ज्ञानसे भी भ्रष्ट जेठमल के

करे अर्थ को सम्यक् दृष्टि पुरुष सत्य नहीं मानेंगे * इस वास्ते भोले लोकोंको अपने फंदे में फंसानेके वास्ते जितना उद्यम करते हो उस से अन्य तो कुछ नहीं परन्तु अनंत संसार रुलने का फल मिलेगा तथा ढूढको को हम पुछते है की आनद श्रावकने अन्य तीर्थी के देवके चारों निक्षेपे को वंदना त्यागी है कि केवल भाव निक्षेपा ही त्यागा है? यदि कहोगे कि अन्य तीर्थी के देव के चारों निक्षेपे को वंदना करनी त्यागी है तो अरिहंत देवके चारों निक्षेपे वंदनीक ठेहरे, यदि कहोगे कि अन्य तीर्थी के देवके भाव निक्षेपे को ही वंदने का त्याग किया है तो तिन के अन्य तीन निक्षेपे अर्थात् अन्य तीर्थी के देवकी मूर्ति वगैरह आनंद श्रावक को वंदनीक ठहरेंगे, इस वास्ते सोचविचार के काम करना, जेठमल लिखता है 'जिन प्रतिमा का आकार जुदी तरहका है इस वास्ते अन्य तीर्थी तिसको अपना देव किस तरह माने?" उत्तर–श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा को अन्य दर्शनी बद्रीनाथ करके मानते हैं, शांतिनाथ की प्रतिमा को अन्य दर्शनी जगन्नाथ करके मानते हैं, कांगडे के किले में ऋषभदेवकी प्रतिमा को कितनेक लोक भैरव करके मानते हैं; तथा पहिले की प्रतिमा होवे जो कि कालानुसार किसी कारण से किसी ठिकाने जमीन में भंडारी होवे वोह जगह कोई अन्य दर्शनी मोल लेवे और जब वोह प्रतिमा उस जगह में से उस को

---

* पूर्वा चार्योने जैन सिद्धांतोंमें चैत्य शब्दका अर्थ ऐसे प्रतिपादन किया है–तथाहिः–

अरिहंतचेइयाणंति अशोकाद्यष्टमहाप्रतिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तीर्थकरास्तेषां चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि अर्हच्चैत्यानि इयमत्र भावना चित्तमन्तःकरणं तस्यभावे कर्मणि वा वर्णदृढादिलक्षणे ष्यञि कृते चैत्यंभवति तत्राऽर्हतां प्रतिमाः प्रशस्तसमाधिचित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यंते इत्यावशकसूत्रपंचमकायोत्सर्गाध्ययने ॥

तथा अरिहंतचेइयाणि तेसिंचेव पडिमाओ तथा चिति संज्ञाने संज्ञानमुत्पद्यतेकाष्ठकर्मादिषुप्रतिकृतिदृष्ट्वाजहाअरिहंतपडिमाएसाइत्यावश्यकसूत्रचूर्णौ ॥

चितेर्लेप्यादिचनस्य भावः कर्मवा चैत्यं तच्चसंज्ञाशब्दत्वात् देवताप्रतिबिम्बे प्रासद्धं ततस्तदाश्रयभूत यद्देवतायागृहं तदप्युपचाराचैत्य मिति सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्तौ द्वितीयदले ॥ चित्तस्य भावाः कर्माणि वा वर्णदृढादिभ्य ष्यण्वेति ष्यञि चैत्यानि जिन प्रतिमास्ताहि चन्द्रकान्त सूर्यकान्त मरकत मुक्ता शैलादि दलानिर्मिता अपिचित्तस्य भावेन कर्मणा वा साक्षात्तीर्थकरबुद्धिं जनयन्तीति चैत्यान्यभिधीयन्ते इति प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ ॥

मिलती है तो अपने घरमें से प्रतिमा के निकालने से वो अपने ही देव की समझ कर आप अन्य दर्शनी हुआ हुआ भी तिस प्रतिमा की अर्चा-पूजा करता है, और अपने देव तरीके मानता है,इस वास्ते जेठमल का लिखना कि अन्य दर्शनी जिन प्रतिमा को अपना देव करके नहीं मान सक्ते हैं सो विलकुल असत्य है ॥

फेर लिखा है कि "चैत्यका अर्थ प्रतिमा करोगे तो तिस पाठ में आनंद श्रावकने कहा कि अन्य तीर्थी को, अन्य तीर्थी के देवको और अन्य तीर्थी की ग्रहण करी जिन प्रतिमा को वांदू नहीं, बुलाऊं नहीं, दान देऊं नहीं, सो कैसे मिलेगा ? क्योंकि जिन प्रतिमाको बुलाना और दान देना ही क्या ?" उत्तर अरे ढूंढको ! सिद्धांतकी शैलि ऐसी है कि जिसको जो संभवे तिसके साथ जोडना, अन्यथा वहुत ठिकाने अर्थ का अनर्थ होजावे,इस वास्ते वंदना नमस्कार तो अन्य तीर्थी आदि सब के साथ जोडना, और दानादिक अन्य तीर्थी के साथ जोडना, परन्तु प्रतिमा के साथ नहीं जोडना, जैसे श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में तीसरे महाव्रतके आराधने निमित्त आचार्य, उपाध्यय प्रमुख की वस्त्र पात्र, आहारादिक से वैयावृत्य करनेका कहा है सो जैसे सर्व की एक सरिखी रीती से नहीं परन्तु जैसे जिसकी उचित होवे और जैसा संभव होवे तैसे तिसकी वेयावच्च समझने की है; तैसे इस पाठ में भी वुलाऊं नहीं, अन्नादिक देऊं नहीं यह पाठ अन्य तीर्थी के गुरु के ही वास्ते है यदि तीनों पाठ की अपेक्षा मानोगे तो श्रीमहावीर स्वामी के समय में अन्य तीर्थी के देव हरी, हर, ब्रह्मा वगैरह कोई साक्षात् नहीं थे तिनकी मूर्त्तियां ही थी;तो तुमारे करे अर्थानुसार आनंद श्रावक का कहना कैसे मिलेगा ? सो विचार लेना ! कदापि तुम कहोगे कि कितनीक देवीयां अन्नादिक लेती है तिनको अपेक्षा यह पाठ है तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि देवी की भी स्थापना अर्थात् मूर्ति के पासही अन्नादिक चढ़ाते है, तो भी कदाचित् साक्षात् देवी देवता को किसी ढूंढक श्रावक श्राविका या जेठमल वगैरह ढूंढकों के माता पिता ने अन्नादिक चढ़ाया होवे अथवा साक्षात् वुलाया होवे तो वताओ ? ॥

फेर जेठमल लिखता है कि "जिन प्रतिमा को अन्य मतिने अपने मंदिर में स्थापनकर लिया, तो तिस से जिन प्रतिमा का क्या विगड गया कि जिस से तुम तिस को मानने योग्य नहीं कहते हो" उत्तर-यदि कोई ढूंढकनी या किसी ढूंढक की वेटी या कोई ढूंढक का साधु मदिरा पीने वाली, मांस खानेवाली, कुशील सेवने वाली वेश्या के घर में अथवा मांसादि वेचने वाले कसाई के घर में जारहे, तो तुम ढूंढक तिसको जाके वंदना करो कि नहीं ? अथवा न्यात मे लेवो के नहीं ? यदि कहोगे कि न वंदना करेंगे और न न्यात में लेंगे

तो ऐसे ही जिन प्रतिमा संबंधि समझ लेना।

फेर जेठमलने लिखा है कि "तुमारे साधु अन्य तीर्थी के मठ में उतरे होंवे तो तुमारे गुरु खरे या नहीं ?"–उत्तर–अरे बुद्धि के दुश्मनो! ऐसे दृष्टांत लिख के बिचारे भोले भद्रिक जीवोंको फसाने को क्यों करते हो? अन्य तीर्थी के आश्रम में उतरने से वोह साधु अवदंनीक नहीं हो जाते है, क्योंकि वोह स्वेच्छा से वहां उतरे हैं, और स्वेच्छा ही वहां से विहार करते हैं, और उन साधुओं को अन्य दर्शनियों ने अपने गुरु करके नहीं माना है, तैसे ही अन्य तीर्थीयों की ग्रहण करी जिन प्रतिमा में से जिन प्रतिमा पणा चला नहीं जाता है. परन्तु उस स्थान में वोह वंदने पूजने योग्य नहीं है ऐसे समझना॥

पुनः जेठमलने लिखा है 'द्रव्य लिंगी पासथ्थां वेषधारी निन्हव प्रमुख को किस बोल में आनंदने वोसराया है ?" उत्तर–

साधु दीक्षालेता है तब "करेमि भंते कहता है, और पांच महाव्रत उच्चरता है तिसको भी पासथ्था, वेषधारी, निन्हव प्रमुख को वंदना नमस्कार करने का त्याग होना चाहिये, सो पांच महाव्रत लेने समय तिसने तिनका त्याग किस बोल में किया है सो बताओ? परन्तु अरे अकलके दुश्मनों! सम्यग्दृष्टि श्रावकों को जिनाज्ञा से बाहिर ऐसे पासथ्थे, वेषधारी, निन्हव प्रमुख को वंदना नमस्कार करने का त्यागतो है ही, इस बाबत पाठ में नहीं कहा तो इस में क्या विरोध है? प्रश्न के अंत में जेठमल ने लिखा है कि "आनंद श्रावक ने अरिहंत के चैत्य तथा प्रतिमा को वंदनाकरी होवे तो बताओ" इस का उत्तर प्रथम तो पूर्वोक्त पाठसे ही तिसने अरिहंत की प्रतिमा की वंदना पूजाकरी है ऐसे सिद्ध होता है; तथा श्रीसमवायांग सूत्र में सूत्रों की हुंडी है तिस में श्रीउपासक दशांग सूत्र की हुंडी में कहा है कि–

सेकिंते उवासगदसाओ उवासगदसासूणं उवासयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडारायाणो अम्मापियरो समोसरणाइ धम्मायरिया॥

अर्थ–उपासक दशांग में क्या कथन है? उत्तर–उपासक दशांग में श्रावकों के नगर, उद्यान, 'चेइआइं' चैत्य अर्थात् मंदिर, वनखंड, राजा, माता, पिता, समोसरण, धर्माचार्यादिकों का कथन है॥

इस से समझना कि आनंदादि दश श्रावकों के घर में जिन मंदिर थे और

उन्होंने जिन मंदिर कराये भी थे, और वोह पूजा वंदना प्रमुख करते थे, यद्यपि उपासक दशांग में यह पाठ नहीं है, क्योंकि पूर्वाचार्योंने सूत्रों को संक्षिप्त करदिया है, तथापि समवायांग जी में यह बात प्रत्यक्ष है; इस वास्ते जरा ध्यान देकर शुद्ध अंतः करण से तपास करोगे तो मालूम हो जावेगा कि आनंदादि अनेक श्रावकोंने जिन प्रतिमा पूजी है सो सत्य है ॥ इति ॥

——— :o:—o—:o: ———

(१७) अंबड श्रावक ने जिन प्रतिमा वांदी है ।

(१७) वें प्रश्नोत्तर में जेठमल ने अंबड तापस के अधिकारका पाठ आनंद श्रावक के पाठ के सदृश ठहराया है सो असत्य है इसलिये श्रीउववाइ सूत्र का पाठ अर्थसहित लिखते हैं -तथाहि-

अंबडस्सणं परिवायगस्स नो कप्पइ अण्णा उत्थिए वा अण्णा उत्थिय देवयाणि वा अण्णा उत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंत चेइयाइं वा वंदित्ताए वा नमंसित्ताएवा णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइआणिवा ॥

अर्थ-अंबड परिव्राजक को न कल्पे अन्यतीर्थी, के देव और अन्यतीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत चैत्य जिन प्रतिमा को वंदना नमस्कार करना, परन्तु अरिहंत की प्रतिमाको वंदना नमस्कार करना कल्पे * ॥

इस पूर्वोक्त पाठ को आनंद के पाठ के सदृश जेठमल ठहराता है परन्तु आनंद गृहस्थी था और अंबड संन्यासी अर्थात् परिव्राजक था, इस वास्ते इन दोनोंका पाठ एक सरिखानहीं हो सकता, तथा आनंदका पाठ हमने पूर्व लिख दिया है तिस के साथ इसपाठको मिलानेसे मालूम होजावेगा कि आनंद के

---

* टीका-अन्नउत्थियएवत्ति अन्ययूथिका अर्हत्संघापेक्षया अन्येशाक्यादयः चेइयाइंति अर्हच्चैत्यानि जिन प्रतिमा इत्यर्थः णण्णत्थ अरिहंतेवत्ति न कल्पते इह योयं नेति प्रतिषेधः सोन्यत्राऽर्हद्भ्यः अर्हतो वर्जयित्वेत्यर्थः साहिकिल परिव्राजक वेषधार को तोन्ययूथिक देवता वन्दनादि निषेधे अर्हतामपि वन्दनादि निषेधो माभूदि तिकृत्वा णण्णत्थ्ये त्याद्यधीतम् ॥

पाठ में अन्य दर्शनी को अशन,पान खादम,स्वादम देना नहीं बारंबार देना नहीं, बिना बुलाये बुलाना नहीं वारंवार बुलाना नहीं, यह पाठ है; और इस में वोह पाठ नहीं है क्योंकि अंबड परिव्राजक था. और अन्य तीर्थी अंबड को गुरु करके मानते थे, इस वास्ते उसमें अन्य दर्शनी को बुलाने वगैरह का त्याग नहीं होसके, तथा आनंद के पाठ में श्रमण निर्ग्रंथ को अशनादिक देने का पाठ है, सो इस पाठ में बिल कुल नहीं है, क्योंकि अंबड परिव्राजक था, सो परघर में भिक्षा वृत्ति से जीमता था, तो अशन, पान, खादम, स्वादम वगैरह श्रमण निर्ग्रंथ को कहां से देवे ? तथा आनंद के पाठ में किस को वंदना नमस्कार करना सो पाठ बिल कुल नहीं है और इस पाठ में अरिहंत, की प्रतिमा को वंदना नमस्कार करने का पाठ है; इतना बड़ाफेर है तो भी जेठमल दोनों पाठों को एक सरीखा ठहराता है सो मिथ्यात्व का उदय है. तथा चैत्य शब्द का अर्थ अकल के दुश्मन जेठमलने साधु करा है, सो बिलकुल असत्य है यह बात दृष्टांत पूर्वक आनंद के पाठ में हमने सिद्ध करदी है ॥

फेर जेठमल लिखता है कि "चैत्य का अर्थ प्रतिमा मानोगे तो गुरुको वंदना का पाठ कहां है सो दिखाओ" उत्तर-अन्य तीर्थी के गुरुका जब त्याग किया तब जैनमत के साधु वांदने योग्य रहे, यह अर्थापत्ति से ही सिद्ध होता है; जैसे किसी श्रावकने रात्री भोजन का त्याग किया तो उस को दिन में भोजन करने का खुलारहा कि नहीं ? किसी योगीने वस्ती में रहने का त्याग किया तो उस को वन में रहने का खुला रहा कि नहीं ? किसी सम्यग् दृष्टि पुरुष ने जिनाज्ञाके उत्थापक जानके ढूंढको का त्याग किया तो उसको जिनाज्ञा में वर्त्त ने वाले सुसाधु वंदना करने योग्य रहे कि नहीं ? जरूर ही रहे, ऐसे ही अन्य दर्शनी के गुरुका त्याग किया तब जैन दर्शन के गुरु तो वंदने योग्य ही रहे, इस वास्ते ऐसी कुतर्क करनी सो निष्फल ही है. फेर जेठमल ने लिखा है कि "अंबड साधु को वांदता था" सो असत्य है, यद्यपि अंबड शुद्ध श्रद्धावान् होने से जैनमत के साधु को वांदने योग्य श्रद्धता था, तथापि आप सन्यासी तापसोंका भेषधारी परिव्राजकाचार्य था, और अन्य मती तिसको गुरु बुद्धि से पूजते थे,इस वास्ते क्षमा श्रमण पूर्वक साधु को वंदना नहीं करता था,और इसी वास्ते सूत्र में 'णण्णथ्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा" यह पाठ दोवारा लिखा है; और आनंद गृहस्थी था, उस को पूर्वोक्त तीनों वस्तुओं के प्रतिपक्षीको वंदना करनी उचित थी,इसवास्ते दोवारा पाठसूत्र में नहीं लिखा है॥

जेठमल ने लिखा है कि "अंबड, साधु को अशनादिक देता था" सो भी असत्य है, क्योंकि यह बात उस के पाठ में लिखी नहीं है, तथा वोह आप ही पर घर में जीमता था तो साधुको अशनादि कहां से देवे ? जैसे ढूंढक लोग

आप ही जिनाज्ञा के उत्थापक होने से भवसमुद्र में डूबने वाले है तो वोह दूसरों को कैसे तार सकें? यह दृष्टांत समझ लेना॥

फेर जेठमल लिखता है कि "अंबड के बारह व्रत सूत्र पाठ मे कहे हैं' सो भी असत्य है जैसे आनंद के बाहर व्रत कहे है, तैसे अंबडके व्रत किसी जगह भी सूत्र मे नहीं कहे है; यदि कहे है तो सूत्र पाठ दिखाओ। ※

प्रश्न के अंत में जेठमल जैन दर्शनीयों को मिथ्यात्व मोहनी कर्म का उदय लिखता है सो आप उस को ही है,और इसी वास्ते उसने पूर्वोक्त असत्य लिखा है ऐसे सिद्ध होता है जैसे कोई एक पुरुष शीघ्रता में घृत खरीदने को जाता था, चलते हुए उस को तृषा लगी, इतने में किसी औरत के पास रस्ते में उस ने पानी देखा तब वोह बोला कि मुझे "घृत" पिला; यद्यपि उस को पीना तो पानी था परन्तु अंतष्करण में घृत ही घृत का ख्याल होने से वैसे बोला गया; ऐसे ही जेठमल को भी मिथ्यात्व मोहनी का उदय था जिस से उसने ऐसे लिख दिया है, ऐसे निश्चय समझना॥ इति॥

———o:o:o———

(१८) सात क्षेत्र में धन खरचना कहा है।

(१८) में प्रश्नोत्तर में जेठमल ने लिखा है कि "सात क्षेत्र किसी ठिकाने सूत्र में नहीं कहे हैं"उत्तर-भत्तपच्चक्खाण पइन्ना सूत्र के मूल पाठ में (१) जिनबिंब, (२) जिनभवन (३) शास्त्र, (४) साधु, (५) साध्वी, (६) श्रावक (७) श्राविका, यह सात क्षेत्र कहे हैं, सो क्या ढूंढक नहीं जानते हैं? यदि कहोगे कि हम यह सूत्र नहीं मान ते हैं तो नंदि सूत्र क्यों मानते हो? क्योंकि श्रीनंदि सूत्र में इस सूत्रका नाम लिखा है इस वास्ते भत्तपच्चक्खाण पइन्ना सूत्रानुसार सात क्षेत्र में गृहस्थी को धन खरचना सो ही फलदायक है *

※ आनंद श्रावक,के भी बाहर व्रत उपासक दशांग सूत्रके मूलपाठ में खुलाशा नहीं है।

* श्रीभत्त पच्चक्खाण सूत्र का पाठ यह है.—

अनियाणोदारमणो हरिसवस विसट्ट कंचुयकरालो।
पूएइ गुरु संघं साहम्मी अमाइ भत्तीए॥ ३०॥
निअद्व्वम उव्वाजिणिंद भवण जिणबिंब वरपइट्ठासु।
विअरइ पसत्थ पुत्थय सुतित्थ तित्थयर पूआसु॥ ३१॥

जेठमल लिखता है कि "आनंदादिक श्रावकोंने व्रत आराधे पडिमा अंगीकार करीं,संथारा किया,यह सर्व सूत्रों में कथन है, परन्तु कितना धन खरचा और किस क्षेत्र में खरचा सो नहीं कहा है" ॥

उत्तर–अरे भाई ! सूत्र में जितनी बात की प्रसंगोपात जरूरत थी उतनी कही है, और दूसरी नहीं कही है, और जो तुम विनाकही कुल बातोंका अनादर करते हो तो आनंदादिक दश ही श्रावकों ने किस मुनिको दान दिया, वो किस मुनिको लेने के वास्ते सामने गये, किस मुनिको छोड़ने वास्ते गये, किस रीति से उन्होंने प्रति क्रमण किया इत्यादि बहुत बातें जोकि श्रावकोंके वास्ते संभवित हैं कही नहीं है, तो क्या वो उन्होंने नहीं करी हैं ? नहीं जरूर करी है तैसे ही धन खरचने संबंधी बातभी उस में नहीं कही है परन्तु खरचा तो जरूर ही है, और हम पूछते हैं कि आनंदादि श्रावकों ने कितने उपाश्रय कराये सो बात सूत्रों में कही नहीं है, तथापि तुम ढूंढक लोग उपाश्रय कराते हो सो

तथा अध्यात्मकल्पद्रुम नामा शास्त्र में धर्म्म में धन लगाना ही सफल कहा है तथाहि

क्षेत्रवास्तु धन धान्य गवाश्वैर्मोलितैः सनिधिभिस्ततुभाजां ।
क्लेशपापनरकाभ्यधिकः स्यात् को गुणो यदि न धर्मनियोग. ॥
क्षेत्रेषु नोवपसि यत्सदपि स्वमेतद्यातासितत्परभवे किमिदगृहीत्वा
तस्यार्जनादि जनिताघचयार्जिता त्तभावीकथंनरकदुःखभराच्चमोक्षः

तथा श्रीठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे के चौथे उद्देशे में श्रावक शब्दका अर्थ टीका कार महा राज ने किया है, उस में भी सात क्षेत्र में धन लगाने से श्रावक बनता है अन्यथा नहीं तथाहिः ।

श्रान्ति पचन्ति तत्त्वार्थ श्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्रास्ताथा वपन्ति गुणवत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वास्तथा किरन्ति क्लिष्ट कर्मरजो निक्षिपन्तीति कास्ततः कर्म धारये श्रावका इति भवति ॥

यदाह ! श्रद्धालुतां श्राति पदार्थ चिन्तनाद्धनानि पात्रेषु वपत्य नारतं ।
किरत्यपुण्यानि सुसाधु सेवनादथापि तं श्रावक माहुरंजसा ।

तथा श्रीदानकुलक में सातक्षेत्र में बीजा धन यावत् मोक्षफलका देने वाला कहा है तथाहि-

जिणभवणबिंब पुत्थय संघसरूवेसु सत्त खित्तेसु ।
ववियं धणंपि जायइ सिवफलयंमहो अणंतगुणं ॥ २० ॥

इत्यादि अनेक शास्त्रों में सप्तक्षेत्र विषायिक वर्णन है, परंतु ज्ञानदृष्टि विना कैसे दिखे ।

किस शास्त्रानुसार कराते हो सो दिखाओ । *

और जेठमल लिखता है कि "आनंदादिक श्रावकों ने संघ निकाला, तीर्थ यात्रा करी, मंदिर बन वाये, प्रतिमा प्रातिष्ठी वगैरह बातें सूत्र में होवे तो दिखाओ" उत्तर-आनंदादिक श्रावकों के जिन मंदिरों का अधिकार श्रीसमवायांग सूत्र में है, आवश्यक सूत्र में तथा योग शास्त्र में श्रेणिक राजाके बनवाये जिन मंदिर का अधिकार है, वग्गुर श्रावक ने श्री मल्लिनाथ जी का मंदिर बधाया सो अधिकार श्री आवश्यक सूत्र में है तथा उसी सूत्र में भरत चक्र वर्त्ती के अष्टापद पर्वत पर चउवीस जिन बिंवस्थापन कराने का अधिकार है, इत्यादि अनेक जैन शास्त्रों में कथन है, तथापि जैसे नेत्र विना के आदमी को कुछ नहीं दिखता है, तैसे ही ज्ञान चक्षु विना के जेठमल और उस के ढूंढकों को भी सूत्र पाठ नहीं दिखता है, तथा जेठमल ने कुयुक्तियों करके सात क्षेत्र उथापे हैं तिन का अनुक्रम से उत्तर-१-२ क्षेत्र जिन बिंब तथा जिन भवन-इसकी बावत जेठमल ने लिखा है कि 'मंदिर प्रतिमा तो पहलेंथ ही नहीं और जो थे ऐसे कहोगे तो किसने कराये वगैरह अधिकार सूत्र में दिखाओ" इसका उत्तर प्रथम हमने लिख दिया है, और उस से दोनों क्षेत्र सिद्ध होते हैं ॥

३ क्षेत्र शास्त्र- इसकी बावत जेठमल लिखता है कि 'पुस्तक तो महावीर स्वामी के पीछे (९८०) वर्ष लिखे गये हैं इस से पाहिले तो पुस्तक ही नहीं थे, तो पुस्तक के निमित्त द्रव्य निकाल ने का क्या कारण ?" उत्तर इस बात का निर्णय प्रथम हम कर आए हैं तथा श्री अनुयोगद्वार सूत्र में कहा हैं कि "दव्वसुयं जं पत्ताय पुथ्थय लिहियं" द्रव्य सुत सो जो जो पाने पुस्तक में लिखा हुआ हैं*, इस से सूत्र कार के समय में पुस्तक लिखे हुए सिद्ध होते है तथा तुमारे कहे मूजिब उस समय बिल कुल पुस्तक लिखे हुए थे ही नहीं तो श्रीऋषभदेव स्वामी की सिखलाई अठारां प्रकार की लिपी का व्यवच्छेद होगया था ऐसे सिद्ध होगा और सो बिल कुल झूठ है, और जो अक्षर ज्ञान उस समय होवे ही नहीं तो लौकिक व्यवहार कैसे चले ? अरे ढूंढको ! इससे समझो कि उस समय में पुस्तक तो थे, फकत सूत्र ही लिखे हुए नहीं थे और

---

* पंजाब देश में थानक, जैन सभा वगैरह नाम से मकान बनायें जाते हैं जिन के निमित्त थानक, या जैन सभा, या धर्म के नाम से चढावा भी लोगों से लिया जाता है ॥

* अनुयोग द्वार सूत्र के पाट की .

टीका-तृतीय भेद परिज्ञानार्थमाह से किंत मित्यादि अत्र निर्वचनं जाणग

सो देवद्धी गणि क्षमाश्रमण ने लिखे हैं, परन्तु (९८०) वर्षे पुस्तक लिखगये हैं ऐसे तुमारे जेठमल ने लिखा हैं सो किस शास्त्रानुसार लिखा है ? क्योंकि तुमारे माने [३२] सूत्रों में तो यह बात है ही नहीं ॥

४-५ मा क्षेत्र साधु, और साध्वी इस बाबत जेठमल ने लिखा है कि "साधु के निमित्त द्रव्य निकाल के तिसका आहार, उपधि, उपाश्रय, करावे तो सो साधु को कल्पे नहीं, तो उस निमित्त धन निकाल ने का क्या कारण ? इस बात पर श्री दशवै कालिक, आचारांग, निशीथ वगैरह सूत्रों का प्रमाण दिया है" तिसका उत्तर–साधु साध्वी के निमित्त किया आहार, उपधि, उपाश्रय प्रमुख तिन को कल्पता नहीं हैं, सो बात हमभी मान्य करते हैं; साधु अपने निमित्त बना नहीं लेते है और सुज्ञ श्रावक अपनी शुद्ध कमाई के द्रव्य में से साधु, साध्वी को आहार, उपधि, वस्त्र पात्र प्रमुख से प्रति लाभते हैं, परन्तु साधु साध्वी के निमित्त निकाले द्रव्य में से प्रतिलाभते नहीं है,और साधु लेते भी नहीं है, इन दोक्षेत्रके निमित्त निकाला द्रव्य तो किसी मुनिको महाभारत व्याधि होगया होवे उस के हटाने वास्ते किसी हकीम आदि को देना पड़े, अथवा किसी साधुने काल किया होवे तिस में द्रव्य खरचना। पड़े इत्यादि अनेक कार्य्यों में खरचा जाता है तथा पूर्वोक्त काम में भी जो धनाढ्य श्रावक होते हैं, तो वो अपने पास से ही खरचते हैं परन्तु किसी गाम में शक्ति रहित निर्धन श्रावक रहते होवें और वहां ऐसा कार्य आन पड़े तो उस में से खरचा जाता है।

६–७ मा क्षेत्र श्रावक, और श्राविका इनकी बाबत जेठमल लिखता है कि "पुण्यवान् होवे सो खैरात का दान लेवे नहीं" परन्तु अकल के बारदान ढूंढक भाइ! समझो तो सही सब जीव एक सरीखे पुण्यवान् नहीं होते हैं, कोई गरीब कंगाल भी होते हैं कि जिन को खाने पीने की भी तंगी पड़ती है तो तैसे गरीब सधर्मीको द्रव्य देकर मदद करनी तिनको आजीविकामें सहायता देनी

सरीर भविय सरीर वइरित्तं दव्वसुतमित्यादि यत्र ज्ञशरीर भव्यशरीरयोः संबंधि अनन्तरोक्त स्वरूपं न घटते तत्ताभ्यां व्यतिरिक्तं भिन्नं द्रव्यश्रुतं किं पुनस्तदित्याह पत्तयपुत्थय लिहियंति पत्र काणि तलताल्यादि संबंधीनि तत्संघात निष्पन्नास्तु पुस्तकास्ततश्च पत्रकाणि च पुस्तकाश्च तेषु लिखितं पत्रकपुस्तक लिखितं अथवा पोथ्ययंति पोतं वस्त्रं पत्रकाणिच पोतंच तेषु लिखितं पत्रकपोत लिखितं ज्ञशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्तं द्रव्यश्रुतं अत्रच पत्रकादि लिखितश्रुतस्य भावश्रुत कारणत्वात् द्रव्यत्वमवसेयमिति ॥

यह धनाढ्य श्रावकों का फ़रज है इस वास्ते धनी गृहस्थी अपने सह धर्मियों को मदद करते हैं, और जो अपने में शक्ति न होवे तो तिस क्षेत्र निमित्त निकाले धन में से सहायता करते हैं और सहधर्म्मी को सहायता करे, यह कथन श्री उत्तराध्ययन सूत्र के अठाईस में अध्ययन में है *

जेठमल लिखता है कि "श्रावक दीन अनाथ को अंतराय देवे नहीं" यह बात सत्य है, परन्तु पूर्वोक्त लेखको विचार के देखोगे तो, मालूम हो जावेगा कि इस से दीन अनाथ को कोई अंतराय नहीं होती है, तथा इस रीति से श्रावकों को दिया द्रव्य खैरायत का भी नहीं कहाता है ऊपर के लेखसे शास्त्रों म सात क्षेत्र कहे हैं, तिन में द्रव्य लगाने से अच्छे फल की प्राप्ती होती है, और सुश्रावकों का द्रव्य उन क्षेत्रों में खरच होता था, और हो रहा है, ऐसे सिद्ध होता है ॥

इस प्रसंग में जेठमल ने श्रीदशवैकालिकसूत्र की यह गाथा लिखी है तथाहिः-

---

* श्रीउत्तराध्ययन सूत्र का पाठ यह है.-

निस्संकिय निंकंखिय निवितिगिच्छा अमूढं दिठीय ।
उववूह थिरी करणो वच्छल्ल पभावणो अठ ॥ ३१ ॥

टीका-निःशंकितं देशतः सर्व तश्चशंकारहितत्वंपुनर्निः कांक्षितत्वं शाक्याद्यन्य दर्शन ग्रहणवाञ्छारहितत्वं निर्विचिकित्स्यं फलं प्रति सन्देह करणं विचिकित्सा निर्गता विचिकित्सा निर्विचिकित्सा तस्यभावो निर्विचिकित्स्यं किमेतस्य तपः प्रभृतिक्लेशस्य फलं वर्त्तते नवेति लक्षणं अथवा विदन्तीति विदः साधवस्तेषां विजुगुप्सा किमेते मल मलिनदेहाः अचित्तपानीयेन देहं प्रक्षालयतां को दोषः स्यादित्यादि निन्दा तदभावो निर्विजु गुप्सं प्राकृतार्षत्वात्सूत्रे निर्विचिकित्स्य इति पाठः अमूढा दृष्टि रमूढदृष्टिः ऋद्धिमत्कुतीर्थिकानां पारव्राजकादी नामृद्धिं दृष्ट्वा अमूढा किमस्माकं दर्शनं यत्सर्वथादारिद्राभिभूतं इत्यादि मोहरहिता दृष्टिर्बुद्धिरमूढदृष्टिः यत्परतीर्थिनांभूयसीमृद्धिं दृष्ट्वापि स्वकीयेऽकिञ्चने धर्ममतेः स्थिरीभावः । अयंचतुर्विधो प्याचार अन्तरंग उक्तोऽथवाह्याचारमाह । उपबृंहणा दर्शनादि गुणवतां प्रशंसा पुनः स्थिरीकरणं धर्मानुष्ठानं प्रति सीदतां धर्मवतां पुरुषाणां साहाय्य करणेन धर्मेस्थिरीकरणं पुनर्वात्सल्यं साधर्मिकाणां भक्तपानाद्यैर्भक्ति करणं पुनः प्रभावनाच स्वतीर्थोन्नति करणमेतेऽष्टौ आचाराः सम्यक्त्वस्य ज्ञेया इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

पिंडं सिज्जंच वथ्थंच चउथ्थं पायमेवय ।
अकप्पियंन इच्छेज्जा पडिगाहिंच कप्पियं ॥ ४८ ॥

इस श्लोकका अर्थ प्रगट पणे इतना ही है कि आहार, शय्या वस्त्र और चौथा पात्र यह अकलपनिक लेने की इच्छा न करे,और कलपनिक लेलेवे तथापि जेठमल ने दंडे को अकलपनिक ठहराने वास्ते पूर्वोक्त श्लोक के अर्थ में "दंडा" यह शब्द लिख दिया है और तिस से भी जेठमल दंडे को अकलपनिक सिद्ध नहीं कर सका है, बलकि जेठमल के लिखने से ही अकलपनिक दंडे का निषेध कर ने से कलपनिक दंडा साधुको ग्रहण करना सिद्ध होगया, आहार, शय्या, वस्त्र, पात्रवत् तो भी साधुको दंडा रखना सूत्र अनुसार है,सो ही लिखते हैः-

श्री भगवती सूत्र में बिधिवादे दंडा रखना कहा है सो पाठ प्रथम प्रश्नोत्तर मे लिखा है।

श्री ओघनिर्युक्ति सूत्र में दंडे की शुद्धता निमित्त तीन गाथा कही हैं।

श्री दशवैकालिक सूत्र में विधिवादे 'दंडगंसिवा" इस शब्द करके दंडा पडिलेहना कहा है।

श्रीप्रश्न व्याकरण सूत्र मे पीठ, फलक, शय्या, संथारा, वस्त्र, पात्र, कंबल, दंडा, रजोहरण, निषद्या, चोलपट्टा, मुखवस्त्रिका, पाद प्रोंछन इत्यादि मालिक के दिये विना अदत्तादान, साधु ग्रहण न करेःऐसे लिखा है। इससे भी साधु को दंडा ग्रहण करना सिद्ध होता है, अन्यथा विना दिये दंडे का निषेध शास्त्रकार क्यों करते ? श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रका पाठ यह है।

आविदत्त पीढ फलग सेज्जा संथारगवत्थ पाय कंबल दंडगरओहरण निसेज्जं चोलपट्टग मुहपोत्तियं पाद पुंछणादि भायणं भंडोवहि उवगरणं ॥

इत्यादि अनेक जैन शास्त्रों में दंडेका कथन है, तो भी अज्ञानी ढूंढक विना समझ बिलकुल असत्य कल्पना करके इस बातका खंडन करते हैं,(जो कि किसी प्रकार भी हो नहीं सकता है) सो केवल उनकी मूर्खता का ही सूचक है। प्रश्न के अंतमें जेठमल ढूंढकने "सात क्षेत्र में धन खरचाते हो उससे चहुट्टेके चोर होते हो" ऐसा महामिथ्यात्व के उदयसे लिखा है परन्तु उसका यह लिख-

ना ऊपर के दृष्टांतोंसे असत्य सिद्ध होगया है क्योंकि सूत्रों में सात क्षेत्रों में द्रव्य खरचना कहा है, और इसी मूजिब प्रसिद्ध रीते श्रावक लोग द्रव्य खरचते हैं और उस से वो पुण्यानुबंधि पुण्यबांधते है, इतना ही नहीं, बलकि बहुत प्रशंसा के पात्र होते है, यह बात कोई छिपी हुई नहीं है, परन्तु असली तहकीकात करने से मालूम होता है कि चहुट्टे के चोर तो वोही हैं जो सूत्रों में कही हुई बातों को उत्थापते हैं, सूत्रों को उत्थापते हैं, अर्थ फिरा लेते हैं शास्त्रोक्त भेषको छोड़के विपरीत भेष में फिरते हैं इतनाही नहीं, परन्तु शासन के अधि पति श्रीजिनराज के भी चोर है और इस से इनको निश्चय राज्यदंड(अनंत संसार) प्राप्त होने वाला है ॥

——*=०※०=*——

(१६) द्रोपदी ने जिन प्रतिमा पूजी है।

१९ में प्रश्नोत्तर में द्रौपदी के जिन प्रतिमा पूजने का निषेध करने वास्ते जेठमल ने बहुत कुतर्कें करी हैं, परन्तु वे सर्व झूठ हैं इस वास्ते क्रम से तिन के उत्तर लिखते है ॥

श्रीज्ञाता सूत्र में द्रोपदी ने जिन मंदिर में जाकर जिन प्रतिमा की१७सतरे भेदे पूजा करी, नमोथ्थुणं कहा ऐसा खुलासा पाठ है-यतः ॥

तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ मज्जणघर मणुप्प विसइ राहाया कय-बलि कम्मा कयकोउय मंगल पायच्छित्ता सुद्ध पावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ जेणेव जि-नघरे तेणेव उवागच्छइ जिनघर मणुपविसइ पविसइत्ता आलोए जिण पडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परामुसइ एवं जहा सुरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जावधुवं डहइ धुवं डहइत्ता वामं जाणु अंचेइ अंचेइत्ता दा-हिणं जाणु धरणी तलांसि निहट्टु तिखुत्तो मुद्धाणं धरणी

तलांसि निवेसेइ निवेसइत्ता इसिं पच्चुणमइ करयल जाव कट्टु एवं वयासि नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ नमं सइ जिन घराओ पडिणिक्खमइ ॥

अर्थ–तब सो द्रौपदी राजवरकन्या जहां स्नान मज्जन करने का घर (मकान) है तहां आवे, मज्जन घर में प्रवेश करे, स्नान करके किया है बलिकर्म पूजाकार्य अर्थात् घर देहरे में पूजा करके कौतुक तिलकादि मंगल दधि दूर्वा अक्षतादिक सो ही प्रायश्चित्त दुःस्वप्नादि के घातक किये है जिस ने शुद्ध उज्ज्वल वड़े जिन मंदिर में जाने योग्य ऐसे वस्त्र पहिर के मज्जन घर में से निकले, जहां जिनघर है वहां आवे. जिन घर में प्रवेश करे, करके देखते ही जिन प्रतिमा को प्रणाम करे पिछे मोर पीछीले, लेकर जैसा सूर्याभ देवता जिन प्रतिमा को पूजे तैसे सर्व विधि जाणना, सो सूर्याभका अधिकार यावत् धूपदेने तक कहना। पीछे धूप देके वामजानु (खब्बा गोड़ा) ऊँचा रखे, जिमणा जानु (सज्जा गोड़ा) धरती पर स्थापन करे, करके तीन वेरी मस्तक पृथ्वीपर स्थापे, स्थापके थोडीसी नीचे झुक के, हाथ जोड़ के दशों नखों को मिला के मस्तक पर अंजली करके ऐसे कहे, नमस्कार होवे अरिहंत भगवंत प्रति यावत् सिद्धि गतिको प्राप्त हुए हैं यहां यावत् शब्द से सम्पूर्ण शक्रस्तव कहना, पीछे वांदना नमस्कार करके जिन घरसे निकले ॥

पूर्वोक्त प्रकार के सूत्रों में कथन हैं तो भी मिथ्या दृष्टि ढूंढिये जिन प्रतिमा की पूजा नहीं मानते हैं सो तिन को मिथ्यात्वका उदय है ॥

जेठमल ने लिखा है कि 'किसी ने वीतराग की प्रतिमा पूजी नहीं है और किसी नगरी में जिन चैत्य कहे नहीं है" इसका उत्तर–श्री उववाइ सूत्र में चंपा नगरी में "बहुला अरिहंत चेइयाइं" अर्थात् बहुते अरिहंतके चैत्य हैं ऐसे कहा है, और अन्य सब नगरीयों के वर्णन में चंपा नगरी की भलावणा सूत्रकार ने दी है, ता इससे ऐसे निर्णय होता है कि सब नगरीयों में महल्ले महल्ले चंपा नगरी की तरह जिन मंदिर थे, तथा आनंद, कामदेव, शंख पुष्कली प्रमुख श्रावकों तथा श्रेणिक महाबल प्रमुख राजाओं की करी पूजा का अधिकार सूत्रों में बहुत जगह है इसवास्ते जिस जगह पूजा का अधिकार है उस जगह जिन मंदिर तो है ही इस में कोई शक नहीं तथा तिन श्रावकों के पुजा के अधिकार में "कयबलि कम्मा"–शब्द खुलासा है जिसका अर्थ स्वपर दर्शन में "देवपूजा" ही होता है इसवास्ते बहुत श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी है और

बहुत ठिकाने जिन मंदिर थे ऐसे खुलासा सिद्ध होता है ॥

जेठमल ने लिखा है कि 'फकत द्रौपदी ने ही पूजा करी है और सो भी सारी उमर में एक हीवार करी है" उत्तर-इस कुमति के कथन का सार यह है कि पूजा के अधिकार में स्त्री कही कोई श्रावक क्यों नहीं कहा ? अरे मूर्खों के भाई ! रेवती श्राविका ने औषध विहराया तो किसी श्रावक ने विहराया क्यों नहीं कहा ? तथा इस अवसर्पिणी में प्रथम सिद्ध मरुदेवी माता हुई, श्री वीर प्रभुका अभिग्रह पांच दिन कम ६ महीं ने चंदन बालाने पूर्ण किया, संगम के उपसर्ग से ६ महीने वत्सपाली बुढ़िया क्षीर से प्रभु को प्रतिलाभती भई, तथा इस चउवीसी में श्री मल्लिनाथ जी अनंती चउवीसीयां पीछे स्त्री पणेतीर्थंकर हुए इत्यादिक बहुत बड़े२ काम इस चउवीसी में स्त्रियोंने किये हैं, प्रायः पुरुष तो शुभ कार्य करे उस में क्या आश्चर्य है ! परन्तु स्त्रियों को करना दुर्लभ होता है पुरुषको तो पूजा की सामग्री मिलनी सुगम है, परन्तु स्त्री को मुश्कल है, इस वास्ते द्रौपदी का अधिकार विस्तार से कहा है. यदि स्त्रीने ऐसे पूजा करी तो पुरुषों ने बहुत करी हैं इस में क्या संदेह है ? कुछ भी नहीं। और जो कहा है कि एक ही वार पूजा करी कहा है पीछे पूजा करी कहीं भी नहीं कही है इस का उत्तर-प्रतिमा पूजनी तो एक वार भी कही है, परन्तु द्रौपदी ने भोजन किया ऐसे तो एक वार भी नहीं कहा है तो तुमारे कहे मूजिब तो तिस ने खाया भी नहीं होवेगा । तथा तुंगीया नगरी के श्रावकों ने साधु को एक ही समय वंदना करी कही है, तो क्या दूसरे समय वंदना नहीं करी होगी ? जरा विचार करो कि लग्न (विवाह) के समय मोहकी प्रबलता में भी ऐसे पूर्णोल्लास से जिन पूजा करि है तो दूसरे समय अवश्य पूजा करी ही होवेगी इस मे क्या संदेह है ? परन्तु सूत्रकार को ऐसे अधिकार वारं वार कहने की जरूरत नहीं है; क्योंकि आगम की शैली ऐसी ही है, और उस को जानकार पुरुष ही समझते हैं, परन्तु तुमारे जैसे बुद्धि हीन मूर्ख नहीं समझते है; सो तुमारा मिथ्यात्व का उदय है ।

जेठमल ने लिखा है कि"पद्मोत्तर राजा के वहां द्रौपदीने बेले बेले के पारणे आयंबिलका तप किया परन्तु पूजातो नहीं करी" उत्तर-अरे भाई ? इतना तो समझो कि तपस्या करनी सो तो स्वाधीन बात है और पूजा करने में जिन मंदिर तथा पूजाकी सामग्री आदि का योग मिलना चाहिये, सो पराधीन तथा संकट में पड़ी हुई द्रौपदी उस स्थल मे पूजा कैसे कर सकी?सो विचार कर देखो !

जेठमल नेलिखा है कि 'द्रौपदी ने पूर्व जन्म में सात काम अयोग्या करे, इस वास्ते तिस की करी पूजा प्रमाण नहीं" उत्तर-इससे तो ढूंढक और बुद्धि

हीन ढूंढक शिरो मणि जेठमल श्रीमहावीर स्वामीको भी सच्चे तीर्थंकर नहीं मानते होवेंगे ! क्योंकि श्रीमहावीरस्वामी के जीवने भी पूर्व जन्म में कितनेक आयोग्य काम करे थे जैसे कि–

(१) मरीचि के भव में दीक्षा विराधी सो अयोग्य।
(२) त्रिदंडी का भेष बनाया सो अयोग्य।
(३) उत्सूत्र की प्ररूपणा करी सो अयोग्य।
(४) नियाणा किया सो अयोग्य।
(५) कितनेहीभवोंमेंसन्यासीहो के मिथ्यत्वकी प्ररूपणाकरीसो आयोग्य।
(६) कितने ही भवों में ब्राह्मण होके यज्ञ करेसो आयोग्य।
(७) तीर्थंकर होके ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए सो आयोग्य।

इत्यादि अनेक अयोग्य काम करेतो क्या पूर्वादि जन्म में इन कामों के करने से श्रीमन्महावीर अरिहंत भगवंत को तीर्थंकर न मानना चाहिये ? मानना ही चाहिये,क्योंकि कर्म वशवर्त्ती जीव अनेक प्रकार के नाटक नाचता है,परन्तु उस से वर्त्तमान में तिस के उत्तमपणे को कुछ भी बाधा नही आती है; तैसे ही द्रौपदी की करी जिन प्रतिमा की पूजा श्रावक धर्म की रीति के अनुसार है, इस वास्ते सोभी मानना ही चाहिये, न माने सो सूत्र विराधक है।

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी की पूजा में भलामणभी सूर्याभ कृत जिन प्रतिमा की पूजा की दी है परन्तु अन्य किसी की नहीं दी है" उत्तर–सूर्याभ की भलामण देने का कारण तो प्रत्यक्ष है कि जिन प्रतिमा की पूजा का विस्तार श्रीदेवर्धिगणि क्षमा श्रमणजी ने रायपसेणी सूत्र में सूर्याभ के अधिकार में ही लिखा है, सो एक जगह लिखा सब जगह जान लेना, क्योंकि जगह जगह विस्तार पूर्वक लिखने से शास्त्र भारी हो जाते है, और आनंद कामदेवादि की भलामण नहीं दी, तिस का कारण यह है कि तिनके अधिकार में पूजा का पूरा विस्तार नहीं लिखा है तो फेर तिन की भलामण कैसे देवें ? तथा यह भलामणा तीर्थंकर गणधरो ने नहीं दी है, किन्तु शास्त्र लिखने वाले आचार्य ने दी है, तीर्थंकर महाराजने तो सर्व ठिकाने विस्तार पूर्वक ही कहा होगा परन्तु सूत्र लिखने वाले ने सूत्र भारी हो जाने के विचार से एक जगह विस्तार से लिख कर और जगह तिस की भलामणा दी है +

---

* जैसे ज्ञाता सूत्र में श्रीमाल्लिनाथ स्वामी के जन्म महोत्सवकी भलामण जंबूद्वीप पन्नत्ति सूत्र की दी है सो पाठ यह है–

तथा आनंद श्रावक को सूत्र में पूर्ण बाल तपस्वी की भलामणा दी है तो इस से क्या आनंद मिथ्या दृष्टि हो गया ? नहीं ऐसे कोई भी नहीं कहेगा, ऐसे ही यहां भी समझना * ॥

जेठमल ने लिखा है कि 'द्रौपदी सम्यग् दृष्टिनी नहीं थी तथा श्राविका भी नहीं थी क्योंकि तिस ने श्रावक व्रत लिये होते तो पांच भर्त्तार (पति) क्यों करती ?" उत्तर-द्रौपदीने पूर्वकृत कर्म के उदय से पंचकी शाक्षी से पांच पति अंगीकार करे हैं परन्तु तिस की कोई पांच पति करने की इच्छा नहीं थी और इस तरह पांच पति करने से भी तिस के शील व्रतको कोई प्रकार की भी बाधा नहीं हुई है, और शास्त्रकारोंने तिसको महासती कहा है. तथा बहुत से ढूंढीये भी तिस को सती मानते हैं, परन्तु अकल के दुश्मन जेठमल की ही मति विपरीत हुई जो तिस ने महासती को कलंक दिया है. और उस से महा पाप का बंधन किया है, कहा है ' विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" ॥

श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि जघन्य से चाहे कोई एक व्रत करे तोभी

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अठ्ठ दिसाकुमारिय महत्तरियाओ जहा जंबूद्दीवपण्णत्तिए सव्वं जम्मणं भाणियव्वं णवरं मिहिलियाए णयरीए कुंभरायस्स भवणंसि पभावइए देवीए अभिलावो णेयव्वो जाव णंदीसरवर दीवे महिमा ॥

इत्यादि अनेक शास्त्रों में अनेक शास्त्रों की भलामणा दी हैं ॥

* श्रीज्ञाता सूत्र में श्रीमल्लिनाथ स्वामी के दीक्षानिर्गमन को जमाले की भलामणा दी है तो क्या श्रीमल्लिनाथ स्वामी जमालि सरीखे होगये ? कदापि नहीं,तथा इसी ज्ञाता सूत्र के पाठ से सूत्रों में भलामणा, लिख ने वाले आचार्य ने दी है यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है; नहीं तो जमालि जो श्रीमहावीर स्वामी के समय में हुआ उस के निर्गमन की भलामणा श्री मल्लिनाथ स्वामी के अधिकार में कैसे हो सकेगी ? श्रीज्ञाता सूत्र का पाठ यह है ॥

"एवं विणिग्गमो जहा जमालीस्स",

वो श्रावक कहाता है, पुनः तिसही सूत्र में उत्तर गुण पञ्चक्खाण भी लिखे हैं; तथा श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्र में "दंसण सावए" अर्थात् सम्यक्त्व धारी को भी श्रावक कहा है श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्रवृति में भी द्रौपदी को श्राविका कही है, श्री ज्ञाता सूत्र में कहा कि-

तएणं सा दोवइ देवी कच्छुल्लणारयं असंजय अविरय अप्पडिहय अपच्चक्खाय पावकम्मंति कट्टु णो आढाइ णोपरियाणाइणो अभुठेइ ॥

अर्थ-जब नारद आया तब द्रौपदी देवी कच्छुलनामा वन में नारद को असंजती, अविरती, नहीं हणे नहीं पच्चखे पाप कर्म जिस ने ऐसा जान के न आदर करे, आयाभी न जाने, और खड़ी भी न होवे ॥

अब विचार करोकि द्रौपदी ने नारद जैसे को असंजती जान के वंदना नहीं करी है तो इस से निश्चय होता है कि वो श्राविका थी, और तिसका सम्यक्त्वव्रत आनंद श्रावक सरीखाथा, तथा अमर कंका नगरी में पद्मोत्तर राजा द्रौपदी को हरके लेगया उस अधिकार में श्री ज्ञाता सूत्र में कहा है कि-

तएणं सा दोवइ देवी छठ छठेणं अणि खित्तेणं आयंबिल परिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावमाणी विहरइ ॥

अर्थ--पद्मोत्तर राजा ने द्रौपदी को कन्या के अंते उर में रखा, तब वो द्रौपदी देवी छठ छठ के पारणे निरंतर आयंबिल परि गृहीत तप कर्म कर के अर्थात् बेले के पारणे आयंबिल करती हुई आत्मा को भावती हुई विचरती है, इस से भी सिद्ध होता है कि ऐसे जिनाज्ञायुक्त तपकी करने वाली द्रौपदी श्राविका ही थी ॥-

"द्रौपदी को पांच पतिका नियाणा था सो नियाणा पूरा होने से पहिले द्रौपदी ने पूजा करी है इस वास्ते मिथ्या दृष्टि पण में पूजा करी है" ऐसे जेठमल ने लिखा है तिसका उत्तर-श्री दशा श्रुतस्कंध में नव प्रकार के नियाणे कहे हैं, तिन में प्रथम के सात नियाणे काम भोग के हैं सो उत्कृष्ट रससे नियाणा किया होवे तो सम्यक्त्व प्राप्ति न होवे, और मंद रससे नियाणा किया होवे तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होजावे, जैसे कृष्णवासुदेव नियाणा कर के होये

है तिन को भी सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है,जेकर कहोगे कि "वासुदेव की पदवी प्राप्त होने पर नियाणा पूरा होगया इसवास्ते वासुदेव की पदवी प्राप्ति हुई पीछे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है. तैसे द्रौपदी का भी पांच पति की प्राप्त से नियाणा पूरा होगया पीछे विवाह (पाणिग्रह) होने के पीछे द्रौपदी ने सम्यक्त्व की प्राप्ति करी" तो सो असत्य है; क्योंकि नियाणातो सारे भवतक पहुंचता है. श्रीदशा श्रुतस्कंध मे ही नवमा नियाणा दीक्षा का कहा है सो दीक्षा लेने से नियाणा पूराहोगया ऐसे होवेतो तिस ही भव में केवलज्ञान होना चाहिये परन्तु नियाणे वाले को केवलज्ञान होने की शास्त्रकार ने ना कही है। इस वास्ते नियाणा भव पूरा होवे वहां तक पहुंचे ऐसे समझना और मंद रस से नियाणा किया होंवे तो सम्यक्त्व आदि गुण प्राप्त हो सकते हैं, एक केवल ज्ञान प्राप्त न होवे, ऐसे कहा है; द्रौपदी का नियाणा मंद रस से ही है इसवास्ते बाल्यावस्था में सम्यक्त्व पाई संभवे है ॥

जैसे श्रीकृष्णजी ने पूर्व भव में नियाणा किया था तो वासुदेव का पदवी सारे भव पर्यंत भोग विना छूटता नहीं, परन्तु सम्यक्त्व को बाधा नहीं; तैसे ही द्रौपदी ने पांच पतिका नियाणा किया था तिससे पांचपति होए विना छूटता नहीं, परन्तु सो नियाणा सम्यक्त्व को बाधा नहीं करता ॥

इस प्रसंग में जेठमल ने नियाणे के दो प्रकार (१) द्रव्य प्रत्यय (२) भव प्रत्यय कहे हैं सो झूठ है, क्योंकि दशा श्रुतस्कंध सूत्र में ऐसा कथन नहीं है, दशाश्रुतस्कंधके नियाणे मूजिव तो द्रौपदी को सारे जन्म में केवली प्ररूप्या धर्म भी सुनना न चाहिये और द्रौपदी ने तो संयम लिया है,इस वास्ते द्रौपदी का नियाणा धर्म का घातक नहीं था और चक्रवर्ती तथा वासुदेवको भव प्रत्यय नियाणा जेठमल ने कहा है और जब तक नियाणेका उदय होवे तबतक सम्यक्त्व की प्राप्ति न होवे ऐसे भी कहा है, तो कृष्ण वासुदेव को सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे हुई सो जरा विचार कर देखो । इस से सिद्ध होता है कि जेठमल का लिखना स्वकपोल कल्पित है,यदि आम्नाय विना और गुरुगम विना केवल सूत्राक्षर मात्र को ही देख के ऐसे अर्थ करोगे तो इस ही दशाश्रुतस्कंध में तीसस्थान के महा मोहनी कर्म बांधे ऐसे कहा है और महा मोहनी कर्म की उत्कृष्टी स्थिति (७०) कोटा कोटी सागरोपम की है तो परदेशी राजा ने घने पंचेंद्रीजीवों की हिंसा करी, ऐसे श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है तो तिसको अणुव्रत की प्राप्ति न होनी चाहियें; तथा महामोहनी कर्म बांध के संसार में रुलना चाहिये, परन्तु सो तो एकावतारी है, तो सूत्रकी यह बात कैसे मिलेगी इस वास्ते सूत्र वांचना और तिसका अर्थ करना सो गुरुगम से ही करना चाहिये, परन्तु तुम ढूंढकों को तो गुरुगम है ही नहीं, जिस से अनेक जगा उलटा

अर्थ कर के महा पाप बांधते हो और सूत्र में द्रौपदी ने पूजा करी वहां सूर्याभ की भलामणा दी है इस से भी द्रौपदी अवश्यमेव सम्य क्त्ववती सिद्ध हुः तथा विवाह की महामोहका गिरदी धूम धाम में जिन प्रतिमा की पूजा याद आई, सो पक्की श्रद्धावंती श्राविका ही का लक्षण है इसवास्ते द्रौपदी सुलभ बोधिनी ही थी ऐसे सिद्ध होता है।

जेठमल ने लिखा है कि "द्रौपदी के माता पिता भी सम्यग दृष्टि नहीं थे क्योंकि उनोंने मांस मदिरा का आहार बनवाया था" तिसका उत्तर–जेठमल का यह लिखना बिलकुल बेहुदा है क्योंकि कृष्ण वासुदेव प्रमुख घने राजे उस में शामिल थे पांडव भी तिन के वीच मे थे, इस से तो कृष्ण पांडवादि कोई भी सम्यग्दृष्टि न हुए वाहरे जेठमल ! तुमने इतना भी नहीं समझा कि नौकर चाकर जो काम करते हैं सो राजाही का करा कहा जाता है, इस वास्ते द्रौपदी के पिता ने मांस नहीं दिया जेकर उसका पाठ मानोंगे तो कृष्ण वासुदेव, पांडव वगैरह सर्व राजाओं ने मांस खाया तुमको मानना पड़ेगा ! तथा श्रीउग्रसेन राजा के घर में कृष्ण वासुदेव प्रमुख बहुत राजाओं के वास्ते क्या मांस मदिरा का आहार बनवाया गया था तिन में पांडवभी थे तो क्या तिससे तिन का सम्यक्त्व नाश हो जावेगा ? नहीं, श्रेणिक राजा कृष्ण वासुदेव प्रमुख सम्यक्त्व दृष्टि थे, परन्तु तिन को एक भी अणुव्रत नहीं था तो तिससे क्या तिन को सम्यक्त्व विना कहना चाहिये ! नहीं कदापि नहीं, इसवास्ते इस में समझने का इतना ही है कि उस समय विवाहादि महोत्सव गौरा आदि में उस वस्तु के वनाने का प्रायः कितनेक क्षत्रियों के कुलका रिवाज था इसवास्ते यह कहना मिथ्या है, कि द्रौपदी के माता पिता सम्यग् दृष्टि नहीं इस ठिकाने जेठमल ने लिखा है कि ,' ६ प्रकार का आहार बनाया" परन्तु ज्ञाता सूत्र में ६ आहरका सूत्र पाठ है नहीं; तिस सूत्र पाठ में चार आहार से अतिरिक्त जो कथन है सो चार आहार का विशेषण है, परन्तु ६ आहार नहीं कहे है इससे यही सिद्ध होता है कि जेठमल को सूत्र का उपयोग ही नहीं था, और उसने जो जो वातें लिखी हैं सो सर्व स्वमति कल्पित लिखी है।

जेठमल लिखता है कि " द्रौपदी ने प्रतिमा पूजी सो तीर्थंकर की प्रतिमा नहीं थी क्योंकि तिसने तो प्रतिमाको वस्त्र पहिनाए थे और तुम हाल की जिन प्रतिमा को वस्त्र नहीं पहिनाते हो" तिसका उत्तर–जिस समय द्रौपदी ने जिन प्रतिमा की पूजा करी तिस समय में जिन प्रतिमाको वस्त्र पहिराने का रिवाज था सो हम मंजूर करते है परन्तु वस्त्र पहिराने का रिवाज अन्यदर्शनियों में दिन प्रति दिन अधिक होने से जिन प्रतिमा भी वस्त्र युक्त होगी तो

पिछान में न आवेगी ऐसे समझ के सूत प्रमुख के वस्त्र पहिराने का रिवाज बहुत वर्षों से कम होगया है, परन्तु हाल में वस्त्र के बदले जिन प्रतिमाको सोना, चांदी हीरा, माणक प्रमुख की अंगीयां पहिराई जाती हैं; तथा जामा और कबजा-फतुइ कमीज-प्रमुख के आकार की अंगीयां होती हैं, जिनको देख के सम्यग् दृष्टि जीव जिन को कि जिन दर्शन की प्राप्ति होती है, तिनको साक्षात् वस्त्र पाहिराये ही प्रतीत होते है, परन्तु महा मिथ्यादृष्टि ढूंढिये जिनको कि पूर्व कर्म के आवरण से जिन दर्शन होना महा दुर्लभ है तिनको इस बात की क्या खबर होवे !! तिनको खोटे दूषण निकाल ने की ही समझ है, तथा हाल में सतरां भेदी पूजा में भी वस्त्र युगल प्रभुके समीप रखने में आते हैं, हमेशां शुद्ध वस्त्र से प्रभुका अंग पूंजा जाता है, इत्यादि कार्यों में जिन प्रतिमा के उपभोग में वस्त्र भी आते हैं, तथा इस प्रसंग में जेठमल ने लिखा है कि "जिस रीति से सूर्याभ ने पूजा करी है तिसही रीतिसे द्रौपदी ने करी" तो इस से सिद्ध होता है कि जैसे सूर्याभने सिद्धायतन में शाश्वती जिन प्रतिमा पूजी है तैसे इस ठिकाने द्रौपदी की पूजा करी भी जिन प्रतिमा की ही है।

और जेठमल ने भद्रा सार्थवाही की करी अन्य देव की पूजा को द्रौपदी की करी पूजा के सदृश होने से द्रौपदी की पूजा भी अन्य देव की ठहराई है, परन्तु वो मूर्ख सरदार इतना भी नहीं समझता है कि कितनीक बातों में एक सरीखी पूजा होवे तो भी तिस में कुछ बाधा नहीं जैसे हाल में भी अन्य दर्शनी श्रावक की कितनीक रीति अनुसार अपने देवकी पूजा करते हैं तैसे इस ठिकाने भद्रा सार्थ वाही ने भी द्रौपदी की तरां पूजा करी है तो भी प्रत्यक्ष मालूम होता है, कि द्रौपदी ने 'नमुथ्थुणं" कहा है इस वास्ते तिस की करी पूजा जिन प्रतिमा की ही है, और भद्रा सार्थवाही ने 'नमुथ्थुणं"नहीं कहा है इसवास्ते तिन की पूजा अन्य देवकी है॥

तथा द्रौपदी ने "नमुथ्थुणं"जिन प्रतिमा के सन्मुख कहा है यह बात सूत्र में है,और जेठमल यह बात मंजूर करता है परन्तु यह प्रतिमा अरिहंत की नहीं ऐसा अपना कुमत स्थापन करने के वास्ते लिखता है कि "अरिहंत के सिवाय दूसरों के पास भी नमुथ्थुणं'कहाजाता है,गोशाला के शिष्य गोशाले को नमुथ्थुणं कहते थे; तथा गोशाले के श्रावक षडावश्यक करते थे तब गोशाले को नमुथ्थुणं कहते थे"यह सब झूठ है,क्योंकि नमुथ्थुणं के गुण किसी भी अन्य देव में नहीं है,और न किसी अन्य देवके आगे नमुथ्थुणं कहा जाता है। तथा न किसी ने अन्य देव के आगे नमुथ्थुणं कहा है तो भी जेठमलने लिखा है,कि"अरिहंत के सिवाय दूसरे(अन्य देवों)के पास भी नमुथ्थुणं कहा जाता है"तो इस लेख से जे-

ठमल ने वीतराग देवकी अवज्ञा करी है क्योंकि इस लिखने से जेठमल ने अन्य देव और वीतराग देव को एक सरीखे ठहराया है, हा कैसी मूर्खता ! अन्य देव और वीतराग जिनमें अकथनीय फरक है, अपना मत स्थापन करनेके वास्ते तिनको एक सरीखे ठहराता है कि:"नमुथ्थुणं" अरिहंत के सिवाय अन्य देवों के पास भी कहा जाता है; सो यह लेख जैन शैली से सर्वथा विपरीत है, जैनमत के किसी भी शास्त्र में अरिहंत और अरिहंत की प्रतिमा सिवाय अन्य देव के आगे नमुथ्थुणं कहना, या किसी ने कहा लिखा नहीं है। जेठमल ने इस संबंध में जो जो दृष्टांत लिखे हैं और जो जो पाठ लिखे हैं तिन में अरिहंत या अरिहंत की प्रतिमा के सिवाय किसी अन्य देवके आगे किसी ने नमुथ्थुणं कहा होवे ऐसा पाठ तो है ही नहीं, परन्तु भोले लोकों को फसाने और अपने कुमत को स्थापन करने के लिये विना ही प्रयोजन सूत्रपाठ लिख के पोथी बड़ी करी है, इस से मालूम होता है कि जेठमल महामिथ्या दृष्टि और मृषावादी था और उसने द्रौपदी कृत अरिहंत की प्रतिमाकी पूजालोपन के वास्ते जितनीकुयुक्तियां लिखी हैं, सो सर्व अयुक्त और मिथ्या है ॥

तथा जेठमल जिन प्रतिमा को अवधि जिन की प्रतिमा ठहराने वास्ते कहता है कि "सूत्र में अवधिज्ञानी को भी जिन कहा है इस वास्ते यह प्रतिमा अवधि जिन की संभव होती है" उत्तर–सूत्र में अवधि जिन कहा है सो सत्य परन्तु "नमुथ्थुणं" केवली अरिहंत या अरिहंतकी प्रतिमा सिवाय अन्य किसी देवता के आगे कहे का कथन सूत्र में किसी जगा भी नहीं है, और द्रौपदी ने तो "नमुथ्थुणं" कहा है इस वास्ते वो प्रतिमा केवली अरिहंतकी ही थी, और तिसकी ही पूजा महासती द्रौपदी श्राविका ने करी है ॥

फेर जेठमल कहता है कि 'अरिहंतने दीक्षा ली तब घर का त्याग किया है इसलिये तिस का घर होवे नहीं" उत्तर–मालूम होता है कि मूर्खों का सरदार जेठमल इतना भी नहीं समझता है कि भावतीर्थंकर का घर नहीं होता है,परंतु यह तो स्थापना तीर्थंकर की भक्ति निमित्त निष्पन्न किया हुआ घर है, जैसे सूत्रों में सिद्ध प्रतिमा का आयतन यानि घर अर्थात् सिद्धायतन कहा है तैसे ही यह भी जिन घर है, तथा सूत्रों में देव छंदा कहा है, इसवास्ते जेठमलकी सब कुयुक्तियां झूठी हैं ॥

तथा इस प्रसंग में जेठमल ने विजय चोर का अधिकार लिख के बताया है कि "विजय चोर राजगृही नगरी में प्रवेश करने के मार्ग, निकलने के मार्ग मद्य पान करने के मकान, वेश्या के मकान, चोरों के ठिकाने, दो तीन तथा चार रास्ते मिलने वाले मकान, नाग देवता के, भूत के तथा यक्ष के मंदिर इत

मे ठिकाने जानता है ऐसे सूत्र में कहा है तो राजगृही में तीर्थंकर के मंदिर होवे तो क्यों न जाने ? उत्तर-प्रथम तो यह दृष्टांत ही निरुपयोगी है, परन्तु जैसे मूर्ख अपनी मूर्खताई दिखाये विना ना रहे, तैसे जेठमल ने भी निरुपयोगी लेख से अपनी पूर्ण मूर्खताई दिखाई है; क्योंकि यह दृष्टांत बिलकुल तिस के मतको लगता नहीं है, एक अल्पमतिवाला भी समझ सका है, कि इस अधिकार में चोर के रहने के छिपने के, प्रवेश करने के, जो जो ठिकाने तथा रस्ते हैं, सो सर्व विजय चोर जानता था। ऐसे कहा है। सत्य है क्योंकि ऐसे ठिकाने जानता न होवे तो चोरी करनी मुश्किल हो जावे, सो जैसे सेठ शाहुकारों की हवेलीयां राज्य मंदिर हस्तिशाला, अश्वशाला और पोषधशाला(उपाश्रय) वगैरह नहीं कहे हैं,ऐसे ही जिन मन्दिर भी नही कहे क्योंकि ऐसे ठिकाने प्रायःचोरों के रहने लायेक नहीं होते हैं इनसे इन के जानने का उसको कोई प्रयोजन नहीं था, परन्तु इन से यह नहीं समझना कि उस नगरी मे उस समय जिन मंदिर, उपाश्रय वगैरह नहीं थे, परन्तु इस नगरी में रहने वाले श्रावक हमेशां जिन प्रतिमा की पूजा करते थे इसवास्ते बहुत जिन मंदिर ऐसा सिद्ध होता है।

कोणिक राजाने भगवंत की वंदना करी तिसका प्रमाण देके जेठमल ऐसे ठहराता है कि "तिसने द्रौपदी की तरह पूजा क्यों नहीं करी ? क्योंकि प्रतिमा से तो भगवान् अधिक थे" उत्तर-भगवान् भाव तीर्थंकर थे,, इसवास्ते तिनकी वंदना स्तुति वगैरह ही होती है, और तिनके समीप सतरां प्रकारी पूजामें से वाजित्रपूजा, गीतपूजा, तथा नृत्यपूजा वगैरह भी होती है, चामर होते हैं, इत्यादि जितने प्रकार की भक्ति भावतीर्थंकर की करनी उचित है उतनी ही होती है, और जिनप्रतिमा स्थापना तीर्थंकर है इस वास्ते तिनकी सतरां प्रकार आदि पूजा होती है, तथा भावतीर्थंकर को नमुथ्थुणं कहा जाता है, तिस में "ठाणं संपाविउं कामे" ऐसा पाठ है अर्थात् सिद्धगति नाम स्थानकी प्राप्ति के कामी हो ऐसे कहा जाता है और स्थापना तीर्थंकर अर्थात् जिनप्रतिमा के आगे द्रौपदी वगैरहने जहां जहां नमुथ्थुणं कहा है वहां वहां सूत्र में "ठाणं संपत्ताणं" अर्थात् सिद्धगति नाम स्थानको प्राप्त हुए हो ऐसे जिनप्रतिमा को सिद्ध गिना है, इस अपेक्षा से भावतीर्थंकर से भी जिन प्रतिमा की अधिकता है, दुर्मति ढूंढिये तिसको उत्थापते है तिस से वोह महामिथ्यात्वी हैं ऐसे सिद्ध होता है.

तथा 'जिन' किस किस को कहते हैं इस बाबत जेठमल ने श्रीहेमचंद्राचार्य कृत अनेकार्थी हैमी नाममाला का प्रमाण दिया है, परंतु यदि वह ग्रंथ तुम ढूंढिये मान्य करते हो तो उसी ग्रंथमें कहा है कि "चैत्यं जिनौक स्तद्बिम्बं चैत्यो जिनसभातरुः" सो क्यों नहीं मानते हो ? तथा वालि शब्द का अर्थ भी

तिस ही नाममाल में 'देव पूजा' करा है तो वोह भी क्यों नहीं मानते हो यदि ठीक ठीक मान्य करोगे तो किसी भी शब्द के अर्थ में कोई भी बाधान आवेगी ढूंढ़िये सारा ग्रंथ मानना छोड़ के फकत एक शब्द कि जिस के बहुत से अर्थ होते होवें तिनमें से अपने मन माना एक ही अर्थ निकाल के जहां तहां लगाना चाहते है परंतु ऐसे हाथ पैर मारने से खोटामत साचा होने का नहीं है ॥

तथा जेठमल और तिसके कुमति ढूंढ़िये कहते है कि द्रौपदीने विवाहके समय नियाणेके तीव्र उदयसे पतिकी वांछासे विषयार्थ पूजा करीहै" उत्तर—अरे मूढो! यदि पतिकी वांछासे पूजा करीहोती, तो पूजा करने समय अच्छा खूबसूरत पति मांगना चाहिये था, परंतु तिसने सो तो मांगाही नहीं है उसने तो शक्रस्तवन पढ़ा है जिस में "तिन्नाणं तारयाणं" अर्थात आपतरेहो मुझ को तारो इत्यादि पदों करके शुद्ध भावना से मोक्ष मांगा है; परंतु जैसे मिथ्यात्वी योग्य पति पाऊंगी, तो तुम आगे याग भोग करूंगी इत्यादि स्तुतिमें कहती है, तैसे उसने नहीं कहा है, इसवास्ते फकत अपने कुमत को स्थापन करने वास्ते सम्यग्दृष्टिनी श्राविका के शिर खोटा कलंक चढ़ाते हो सो तुमको संसार बधाने का हेतु है; और इसतरां महासति द्रौपदी के शिर अणहोया कलंक चढ़ाने से तथा उस सम्यक्तवती श्राविकाके अवर्णवाद बोलनेसें तुम बड़भारी दुख के भोगी होगे, जैसे तिस महासती द्रौपदी को अति दुःख दिया, भरी सभा के बिच निर्लज्ज होके तिस की लज्जा लेनेकी मनसा करी, इत्यादिअनेक प्रकार का तिस के ऊपर जुलम करा जिस से कौरवों का सह कुटुंब नाश हुआ कैयाक्चिक भी उस मूजब करने से अपने एक सो भाइयों के मृत्युका हेतु हुआ पद्मोत्तर राजाने तिस को कुदृष्टिसे हरण किया जिस से आखीर तिसको तिस के शरणे जाना पड़ा और तबही वो बंधन से मुक्त हुआ, तैसे तुमभी उस महा सती के अवर्णवाद बोलने से इस भवमें तो जैनबाह्य हुएहो, इतनाही नहीं परंतु परभव में अनंत भव रुलने रूप शिक्षा के पात्र होवोगे इस में कुछ ही संदेह नहीं है, इस वास्ते कुछ समझो और पाप के कुयेमें न डूब मरो किन्तु कुमतको त्यागके सुमतको अंगीकार करो।

"अरिहंतका संघट्टा स्त्री नहीं करती है तो प्रतिमा का संघट्टा स्त्री कैसें करें तिसका उत्तर-प्रतिमा जो है सो स्थापना रूप है इस वास्ते तिसके स्त्री संघट्टे में कुछभी दोष नहीं है, क्योंकि वो कोई भाव अरिहंत नहीं है किन्तु अरिहंत की प्रतिमा है, यदि जेठमल स्थापना और भाव दोनों को एक सरीखेही मानता है तो सूत्रों में सोना, रूपा स्त्री, नपुंसकादि अनेक वस्तु लिखी है; और सूत्रों में जो अक्षर हैं वो सर्व सोना रूपा स्त्री नपुंसकादि की स्थापना है;इसलिये

इनके वांच ने से तो किसी भी ढूंढक ढूंढकनी का शील महा व्रत रहेगा नहीं, तथा देवलोक की मूर्तियां, और नरक के चित्र, वगैरह ढूंढकों के साधु, तथा साध्वी, अपने पास रखते है; और ढूढकों को प्रतिबोध करने वास्ते दिखाते है; उन चित्रो में देवांगनाओ के स्वरूप, शालिभद्रका, धन्नेका तथा तिनकी स्त्रीयों वगैरह के चित्राम भी होते है, इस वास्ते जैसे उन चित्रों में स्त्री तथा पुरुष पर्णे की स्थापना है तैसे ही जिन प्रतिमा भी अरिहंत की स्थापना है, स्थापना को स्त्री का संघट्टा होना न चाहिये ऐसे जो जेठमल और तिसके कुमति ढूंढक मानते हैं तो पूर्वोक्त कार्यों से ढूंढकों के साधु साध्वीयों का शील व्रत(ब्रह्मचर्य) केसे रहेगा ? सो विचार करलेना * ।

और जेठमल ने लिखा है कि "गौतमादिक मुनि तथा आनदादिक श्रावक प्रभुसे दूर बैठे परन्तु प्रभुको स्पर्श करना न पाये" उत्तर-मूर्ख जेठमल इतना भी नहीं समझता कि वहुत लोगोंके समक्ष धर्म देशना श्रवण करने को बैठना मर्यादा पूर्वक ही होता है; परन्तु सो इस में जेठमल की भूल नहीं है; क्योंकि ढूंढिये मर्यादा के वाहिर ही है, इस वास्ते यह नहीं कहा जा सकता है कि गौतमादि प्रभु को स्पर्श नहीं करते थे और तिनको स्पर्श करने की आज्ञाही नहीं थी क्योंकि श्रीउपासक दशांग सूत्र में आनंद श्रावक ने गौतम स्वामी के चरण कमल को स्पर्श कियेका अधिकार है, और तुम ढूंढिये पुरुषों का संघट्टा भी करना वर्जते हो तो उसको शास्त्रोक्त कारण दिखाओ ? तथा तुम जो पुरुषों का संघट्टा करते हो सो त्याग दो, * ।

तथा जेठमल ने लिखा है कि "पांच अभिगम में सचित्त वस्तु त्याग के जाना लिखा है" सो सत्य है सचित्त वस्तु अपने शरीर के भोगकी त्यागनी कही है,पुजाकी सामग्री त्यागनी नहीं लिखी है;क्योंकि श्रीनंदि सूत्र,अनुयोग द्वार सूत्र, तथा उपासक दशांग सूत्र में कहा है कि तीन लोक वासी जीव "महिय पूइय" अर्थात् फूलों से भगवान् की पूजा करते हैं, ।

जेठमल लिखता है कि "अभोगी देव की पूजा भोगी देवकी तरह करते हैं, उत्तर-भगवान् अभोगी थे तो क्या आहार नहीं करते थे ? पानी नहीं पीते थे ?

* सोहन-लाल, गेंडेराय, पार्वती, वगैरह का फोटो पजाब के ढूंढिये-अपने पास-रखते हैं इस से तो सोहनलाल पार्वती वगैरह के ब्रह्मचर्य फकका भी न रहा होगा ।

* ढूंढिये श्रावक, अपने गुरु गुरणी के चरणों को हाथ लगाके वंदना करते है सोभी जेठमल की अकल मूजिब आज्ञा बाहिर और वे अकल माल्म होते हैं ।

बैठते नहीं थे ? इत्यादि कार्य करते थे, या नहीं ? करते ही थे. परन्तु तिनका यह करना निर्जरा का हेतु है, और दूसरे अज्ञानीयों का करना कर्म बंधन का है, तथा प्रभु जब साक्षात् विचरते थे तब तिनकी सेवा, पूजा देवता आदिकों ने करि है सो भोगीकी तरह या अभोगी की तरह सो विचार लेना ? प्रभु को चामर होतेथे प्रभु रत्न जडित सिंहासनों पर बिराजते थे, प्रभुके समवसरण में जल थल के पैदा भये फुलों की गोड़े प्रमाण देवते वृष्टि करते थे, देवते तथा देवांगना भगवंत के समीप अनेक प्रकार के नाटक तथा गीत गान करते थे इस वास्ते प्यारे ढूंढियों ! विचार करो कि यह भक्ति भोगी देवकी नहीं थी किंतु वीतरागदेव की थी और उस भक्ति के करने वाले महापुण्यराशि बंधन के वास्ते ही इस रीतिसे भक्ति करते थे और वैसेही आज कल भी होती है प्यारे ढूंढियों ! तुम भोगी अभोगी की भक्ति जुदी जुदी ठहराते हो परन्तु जिस रीति से अभोगी की भक्ति, वंदना, नमस्कारादि होती है तिस ही रीतिसे भोगी राजा प्रमुख की भी करने में आती है, जब राजा आवे तब खड़ा होना पडता है, आदर सत्कार दिया जाता है इत्यादि बहुत प्रकार की भक्ति अभोगीकी तरह ही होती है और तिसही रीति सो तुम अपने ऋषि-साधुओंकि भक्ति करते हो तो वे तुमारे रिख भोगी हैं कि अभोगी ?सो विचार लेना। फेर जेठमल लिखता है कि "जैसे पिता को भूख लगने से पुत्र का भक्षण करे यह अयुक्त कर्म है, तैसे तीर्थंकर के पुत्र समान षट् काय के जीवों को तीर्थंकर की भक्ति निमित्त हणते हो सोभी अयुक्त है" उत्तर-तीर्थंकर भगवंत अपने मुखसे ऐसे नहीं कहते हैं कि मुझको वंदना, नमस्कार करो, स्नान कराओ, और मेरी पूजा करो, इसवास्ते वे तो षट् काया के रक्षक ही हैं, परन्तु गणधर महाराजा की बताई शास्त्रोक्त विधि मूजिब सेवकजन तिनकी भक्ति करते हैं तो आज्ञायुक्त कार्य में जो हिंसा है सो स्वरूप से हिंसा है, परन्तु अनुबंध से दया है ऐसे सूत्रों में कहा है, इसवास्ते सो कार्य कदापि अयुक्त नहीं कहा जाता है * तथा हम तुम को पूछते हैं कि तुमारे रिख-साधु, तथा साध्वी, त्रिविध जीव हिंसा का पच्चक्खाण करके नदीयां उतरते हैं, गोचरी करके लेआते है, आहार निहार विहारादि अनेक कार्य करते हैं जिन में प्रायः षट् काया की हिंसा होती है तो वे तुमारे साधु साध्वी षट् काया के रक्षक हैं कि भक्षक हैं ? सो विचार के

---

* स्वरूप से जिन में हिंसा, और अनुबंध से दया, ऐसे अनेक कार्य करने की साधु साध्वीयोंको शास्त्रों में आज्ञा दी है. देखो श्री आचारांग, ठाणांग, उत्तराध्यन, दशवैकालिक प्रमुख जैन शास्त्र तथा आठ प्रकारकी दयाकास्वरूप भाषा में देखना होवे तो देखो श्री जैन तत्त्व दर्शका सप्तम परिच्छेद।

देखो ! जेठमल के लिखने मूजिब और शास्त्रोक्त रीति अनुसार विचार करने से तुमारे साधु साध्वी जिनाज्ञा के उत्थापक होने से षट् कायाके रक्षक तो नहीं हैं परन्तु भक्षक ही है, ऐसे मालूम होता है और उससे वे संसार में रुलने वाले है, ऐसा भी निश्चय होता है ॥

प्रश्न के अंत में मूर्ख शिरो माणि जेठमल ने ओघनिर्युक्ति की टीकाका पाठ लिखा है सो बिलकुल झूठा है. क्योंकि जेठमल के लिखे पाठ में से एक भी वाक्य ओघनिर्युक्ति की टीका में नहीं. है जेठमल का यह लिखना ऐसा है कि जैसे कोई स्वेच्छा से लिखदेवे कि "जेठमल ढूंढक किसी नीच कुल में पैदा हुआ था इस वास्ते जिन प्रतिमा का निंदकथा ऐसा प्राचीन ढूंढक निर्युक्ति में लिखा है" ॥ ॥ इति ॥

---

(२०) सूर्याभने तथा विजय पोलीए ने जिन प्रतिमा पूजी है

वीश में प्रश्नोत्तर में जेठमल ने सूर्याभ देवता और विजय पोलीएकी करी जिन प्रतिमा की पूजा का निषेध करने वास्ते अनेक कुयुक्तियां करी हैं तिन सर्वका प्रत्युत्तर अनुक्रम से लिखते हैं ॥

(१) आदि में सूर्याभ देवताने श्री महावीर स्वामी को आमल कल्पा नगरी के बाहिर अंबसाल वन में देखा तब सन्मुख जाके नमुथ्थुणं कहा तिस में सूत्र कारने "ठाणंसंपत्ताणं" तक पाठ लिखा है इस वास्ते जेठमल पिछले पद कल्पित ठहराता है, परन्तु यह जेठमल का लिखना मिथ्या है, क्योंकि वेपद कल्पित नहीं है किन्तु शास्त्रोक्त है इस बाबत११में प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख आए हैं ॥

(२) पीछे सूर्याभ ने कहा कि प्रभुको वंदना नमस्कार करने का महाफल है. इस प्रसंग में जेठमल ने जो सूत्र पाठ लिखा है सो संम्पूर्ण नहीं है, क्योंकि तिस सूत्र पाठ के पिछले पदों में देवता संबंधी चैत्य की तरह भगवंत की पर्युसना करूंगा ऐसे सूर्याभने कहा है, सत्या सत्य के निर्णय वास्ते वो सूत्र पाठ श्री रायपसेणी सूत्र से अर्थ सहित लिखते है -यतः श्रीराज प्रश्नीयसूत्रे- ॥

तं महाफलं खलु तहा रुवाणं अरहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण वंदण नमंसण पडि पुच्छण पज्जुवासणयाए एगस्सवि आय-

रियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ते गच्छामिणं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि एयं मे पेच्चा हियाए खमाए निस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ ॥

अर्थ–निश्चय तिसका महाफल है, किसका सो कहते हैं, तथारूप अरिहंत भगवंत के नाम गोत्र के भी सुनने का परन्तु तिस का तो क्याही कहना ? जो सन्मुख जाना वदना करनी नमस्कार करना, प्रतिपृच्छा करनी, पर्य्युपासना सेवा करना, एकभी आर्य (श्रेष्ठ) धार्मिक वचन का सुनना इसका तो महाफल होवे ही और विपुल अर्थका ग्रहण करना तिस के फलका तो क्याही कहना ? इस वास्ते मैं जाउं श्रमण भगवंत महावीर को वंदना करूं नमस्कार करूं, सत्कार करूं, सन्मान करू. कल्याण कारी मंगल कारी देव संबंधि चैत्य (जिन प्रतिमा) तिस की तरह सेवाकरू. यह मुझको परभव में हितकारी, सुखके वास्ते, क्षेमके वास्ते, निः श्रेयस् जो मोक्ष तिस के वास्ते, और अनुगमन करने वाला अर्थात् परंपरा से शुभानुबंधि–भव भव में साथ जाने वाला होगा ॥

पूर्वोक्त पाठ में देवके चैत्य की तरह सेवा करूं ऐसे कहा इस से "स्थापना जिन और भाव जिन" इन दोनों की पूजा प्रमुख का समान फल सूत्र कारने वतलाया है ॥

जेठमल कहता है कि "वंदना वगैरह का मोटा लाभ कहा परन्तु नाटक का मोटा (बड़ा) लाभ सूर्याभने चिन्तवन नहीं किया, इस वास्ते नाटक भगवंतकी आज्ञा का कर्त्तव्य मालुम नहीं होता है" उत्तर-जेठमल का यह लिखना असत्य है,क्योंकि नाटक करना अरिहंत भगवंत की भाव पूजा में है और तिस का तो शास्त्रकारों ने अनंत फल कहा है, इस वास्ते सो जिनाज्ञा का ही कर्तव्य है, श्रीनंदि सूत्र में भी ऐसे ही कहा है, और सुर्याभने भी बड़ा लाभ चिन्तवन करके ही प्रभुके पास नाटक किया है ॥

(३) "पेच्चा" शब्दका अर्थ परभव है ऐसा जेठमल ने सिद्ध किया है सो ठीक है इस वास्ते इस में कोई विवाद नहीं है ।

(४) सूर्याभने अपने सेवक देवता को कहा यह बात जेठमल ने, अधूरी

लिखी है इसवास्ते श्रीरायपसेणी सूत्रानुसार यहां विस्तार से लिखते हैं ॥

सुर्याभ देवताने अपने सेवक देवता को बुला कर कहा कि हे देवानु प्रिय तुम आमलकल्पा नगरी में अंबसाल वन में जहां श्रीमहावीर भगवंत समवसरे हैं, तहां जाओ जाके भगवंत को वंदना नमस्कार करो, तुमारा नाम गोत्र कह के सुनाओ, पीछे भगवंत के समीप एक योजन प्रमाण जगह पवन करके तृण पत्र, काष्ठ कंडे कांकरे (रोड़े) और अशुचि वगैरह से रहित (साफ) करो करके गंधोदक की वृष्टि करो जिस से सर्व रजशांत होजावे अर्थात् बैठ जावे, उड़े नहीं; पीछे जल थल के पैदा भये फूलों की वृष्टि दंडी नीचे और पांखडी ऊपर रहे तैसे जानु (गोडे) प्रमाण करो करके अनेक प्राकर की सुगंधी वस्तुओं से धूप करो यावत् देवताओं के अभिगवन करने योग्य(आने लायक) करो ॥

सुर्याभ दवताका ऐसा आदेश अंगीकार करके आभियागिक दवता वैक्रियसमुद्घात करे, करके भगवंत के समीप आवे, आयके वंदना नमस्कार करके कहे कि हम सुर्याभ के सेवक हैं और तिस के आदेशसे देवके चैत्य की तरह आप की पर्युपासना करेगे ऐसे वचन सुनके भगवंतने कहा यतःश्रीराजप्रश्नीय सूत्रे-

पोराणमेयं देवा जीयमेयं देवा कियमेयं देवा करणिज्जमेयं देवा आचीन्नमेयं देवा अप्भणुन्नाय मेवं देवा ॥

अर्थ-चिरंतन देवतायोंने यह कार्य किया है हे देवताओं के प्यारे ? तुमारा यह आचार है तुमारा यह कर्त्तव्य है,तुमारी यह करणी है तुम को यह आचारने योग्य है,और मैंने तथा सर्व तीर्थंकरोने भी आज्ञा दी है।इस मूजिब भगवंत के कहे पीछे वे अभियोगिक देवते प्रभु को वंदना नमस्कार करके पूर्वोक्त सर्व कार्य करते भये, इस पाठ में जेठमल कहता है कि ' सुर्याभने देवता के अभिगमन करने योग्य करो ऐसे कहा परन्तु एसे नहीं कहा कि भगवंतके रहने योग्य करो ! " तिसका उत्तर-देवता के आने योग्य करो ऐसे कहा तिस का कारण यह है कि देवता के अभिगमन करने की जगह अति सुंदर होती है मनुष्यलोक में तैसी भूमि नहीं होती है इसवास्ते सुर्याभ का वचनतो भूमि का विशेषण रूप है और तिस में भगवंतका ही बहुमान और भक्ति है ऐसे समझना * ॥

---

* यहां तो देवता योग्य कहा, परन्तु चौतीस अतिशय में जो सुगन्ध जल वृष्टि, पुष्प वृष्टि आदिक लिखी है सो किस के वास्ते लिखी है ? जरा हृदय नेत्र खोल के समवायांग सूत्र के चौतीसमें समवायमें चौतीस अतिशयों का वर्णन देखो ! ।

(५) जलय थलय., इन दोनों शब्दों का अर्थ जलके पैदा भये और थलके पैदा भये ऐसा है तिस को फिराने वास्ते जेठमल कहता है कि "सुर्याभ के सेवकने पुष्प की वृष्टि करी वहां (पुष्फवद्दलं विउव्वइ) अर्थात् फूल का वादल विकुर्वे ऐसे कहा है इसवास्ते वे फूल वैक्रिय ठहरते हैं और उससे आचित्त भी हैं" यह कहना जेठमल का मिथ्या है; क्योंकि फूलोंकी वृष्टि योग्य वादल विकुर्वन करा है परन्तु फूल विकुर्वे नहीं हैं, इस वास्ते वे फूल सचित्त ही है, तथा जेठमल लिखता है कि "देव कृत वैक्रिय फूल होवे तो वे सचित्त नहीं" सोभी झूठ है क्योंकि देवकृत वैक्रिय वस्तु देवता के आत्म प्रदेश संयुक्त होती है इस वास्ते सचितही है, आचित्त नहीं, तथा चौतीस अतिशय में पुष्पवृष्टि का अतिशय है सो जेठमल "देवकृत नहीं प्रभु के पुण्य के प्रभाव से है" ऐसे कहता है सो झूठ है. क्योंकि (३४) अतिशय में (४) जन्म से (११) घाति कर्म के क्षय से और [१९] देवकृत हैं तिस में पुष्पवृष्टि का अतिशय देवकृत में कहा है इस बमूजिब अतिशय की बात श्रीसमवायांग सूत्र में प्रसिद्ध है कितने क ढूंढीये इसजगह "जलयथलय" इन दोनों शब्दो का अर्थ "जल थल के जैसे फूल" कहते हैं, परन्तु इन दोनों शब्दोंका अर्थ सर्वशास्त्रोंके तथा व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार जल और थल में पैदा हुए हुए ऐसा ही होता है जैसे "पंकय" पंकनाम कीचड तिस में जो उत्पन्न हुआ होवे सो पंकय (पंकज) अर्थात् कमल,और "तनय" तन नाम शरीर तिससे उत्पन्न हुआ होवे सो तनय अर्थात् पुत्र ऐसे अर्थ होते हैं; ऐसे तनुज, आत्मज, अंडय, पोयय, जराउय इत्यादि बहुत शब्द भाषा में और शास्त्रों में आते हैं तथा 'ज' शब्द का अर्थ भी उत्पन्न होता यही है, तो भी अज्ञानी ढूंढीये अपना कुमत स्थापन करने वास्ते मन घड़त अर्थ करते हैं परन्तु वे सर्व मिथ्या है ॥

[६] जेठमल कहता है कि "भगवंत के समवसरण में यदि सचित्त फूल होवे तो सेठ, शाहुकार, राजा, सेनापति प्रमुखको पांच अभिगम कहे हैं तिन में सचित बाहिर रखना और आचित्त अंदर लेजाना कहा है सो कैसे मिलेगा ?" तिस का उत्तर—सचित्त वस्त बाहिर रखनी कहा है सो अपने उपभोगी की समझनी, परन्तु पूजा की सामग्री नही समझनी, जो सचित बाहिर छोड़ जाना और अचित्त अंदर लेजाना ऐसे एकांत होवे तो राजा के छत्र, चामर, खड्ग, उपानह और मुकट वगैरह अचित्त हैं परन्तु अंदर लेजाने में क्यों नहीं आते है तथा अपने उपभोग की अर्थात् खाने पीने की कोई भी वस्तु अचित होवे तो सो क्या प्रभुके समव सरण में लेजाने में आवेगी?नहीं, इस वास्ते यह समझना कि अपने उपभोग की अर्थात् खाने पीने आदि की वस्तु सचित्त होवे अथवा अचित्त होवे बाहिर रखनी चाहिये,और पूजा की सामग्री अचित तथा सचित

होवे सो अंदरही लेजाने की हैं ॥

(७) जेठमल लिखता है कि "जो फूल सचित होवे तो साधु को तिस का संघट्टा और उस से जीव विराधना होवे सो कैसे बने" तिस का उत्तर-जैसे एक योजन मात्र समवसरण की भूमि में अपरिमित सुरासुरादिकों का-जो संमर्द उस के हुए हुए भी परस्पर किसी को कोई बाधा नहीं होती है; तैसे ही जानु प्रमाण विखेर हुए मंदार, मचकुंद कमल, बकुल, मालती, मोगरा वगैरह कुसुमसमूह तिन के ऊपर संचार करने वाले रहने वाले, बैठने वाले, उठने वाले, ऐसे मुनिसमूह और जनसमूह के हुए हुए भी तिन कुसुमों को कोई बाधा नहीं होता है, अधिक क्या कहना, सुधारस जिनके अंग ऊपर पड़ा हुआ है, तिनकी तरह अश्रेन अचिंतनीय निरुपम तीर्थंकरके प्रभाव से प्रकाशमान जो प्रसार तिसके योगसे उलटा उल्लास होता है अर्थात्-वे उलटे प्रफुल्लित होते हैं ॥

(८) जेठमल लिखता है कि 'कोणिक प्रमुख राजे भगवंत को वंदना करने को गये तहां मार्ग में छटकाव कराये, फूल विछवाये, नगर सिणगारे-सुशोभित करे इत्यादि आरंभ किये सो अपने छंदे अर्थात् अपनी मरजी से किये हैं परन्तु तिस में भगवंत की आज्ञा नहीं है" तिसका उत्तर-कोणिक प्रमुखने जो भगवंतकी भक्ति निमित्त पूर्वोक्त प्रकार नगर सिणगारे तिस में बहुमान भगवंत का ही हुवा है,क्योंकि तिनकी कुल धूम धाम भगवंत को वंदना करने के वास्ते ही थी और इस रीतिसे प्रभुका समैया आगमन महोत्सव करके तिनों ने बहुत पुण्य उपार्जन किया है, इस वास्ते इस कार्य में भगवंत की आज्ञा ही है ऐसे सिद्ध होता है ॥

(९) जेठमल ढूंढक कहता है कि "कोणिकने नगर में छटकाव कराया परन्तु समवसरण में क्यों नहीं कराया ?" उत्तर-कोणिक ने जो किया है सो कुल मनुष्य कृत है और समवसरण में तो देवताओं ने महा सुगंधी जल छिड़का हुआ है सुगंधी फूलोंकी वृष्टि करी हुई है,तो तिस देवकृत के आगे कोणिक का करना किस गिनती में ? इस वास्ते तिस ने समवसरण में छटकाव नहीं कराया है, तो क्या बाधा है ॥

(१०) जलय थलय शब्द के आगे (इव शब्द का अनुसंधान करने वास्ते जेठमल ने दो युक्तियां लिखी है परन्तु वो व्यर्थ है क्योंकि यदि इस तरह (इव) शब्द जहां तहां जोड़ दें तो अर्थका अनर्थ हो जाये, और सूत्रकार का कहा भावार्थ फिर जावे इस वास्ते ऐसी नवीन मनः कल्पना करनी और शुद्ध अर्थ अर्थ का खंडन करना सो मूर्ख शिरोमणिका काम है ॥

(११) जेठमल लिखता है कि " हरिकेशी मुनिको दान दिया तहां पांच दिव्य प्रकटे तिन में देवताओंने गंधोदक की वृष्टि करी ऐसे कहा है तो गंधोदक वैक्रिया विना कैसे बने ?" उत्तर-क्षीरसमुद्रादि समुद्रों में तथा ह्रदों और कुंडों में बहुत जगह गंधोदक अर्थात् सुगंधी जल है तहांसे लाके देवताओंने वरसाया है इस वास्ते वो जल वैक्रिय नहीं समझना, इस जगह प्रसंग से लिखना पड़ता है कि तुम ढूंढिये पानी को और फूल को वैक्रिय अर्थात् अचित्त मानते हो तो सुर्याभ के आभियोगिक देवताने पवन करके एक योजन प्रमाण भूमि शुद्धकरी सो पवन अचित्त होगी कि सचित्त ? जो सचित्त कहोगे तो तिसके असंख्यात जीव हत होगये और जो अचित्त कहोगे तो भी अचित्त पवन के स्पर्श से सचित्त पवन के असंख्यात जीव हत हो जाते हैं, तथा ऐसे उत्कट पवन से सुर्याभ के आभियोगिक देवता ने कांटे, रोड़े, घांस, फूंस विना की साफ जमीन कर डाली, तिस में भी असंख्यात वनस्पति काय के तथा कीड़े कीड़ीयां प्रमुख त्रसकाय के जीव तैसे ही बहुत सूक्ष्मजीव हत होगये और प्रभुने तो तिन सेवक देवताओं को जिन भक्ति जान के निषेध नहीं किया, भगवंत केवल ज्ञानी ऐसे जानते थे, कि सुर्याभके आभियोगिक देवते इस मूजिब करने वाले हैं और तिस में असंख्यात जीवों की हानि है, परन्तु तिन को ना नहीं कही इसवास्ते यह समझना कि जिसकार्य के करने से महाफल की प्राप्ति होवे तैसे शुभ कार्य में भगवंतकी आज्ञा है, इसवास्ते ऐसे ऐसे कुतर्क करने सूत्र पाठ नहीं मानने और अर्थ फिरा देने सो महा मिथ्या दृष्टियों का काम है ।

(१२) जेठमल लिखता है कि "सुर्याभ आप वंदना करने को आया तब भगवंतने नाटक करने की आज्ञा नहीं दी क्योंकि वो सावद्य करणी है और सावद्य करणी में भगवंत की आज्ञा नहीं होती है तिसका उत्तर-भगवंतने नाटक की बाबत सुर्याभ के पूछने पर मौन धारण किया सो आज्ञाही है "नानुषिद्ध मनुमत मिति न्यायात्" अर्थात् जिस का निषेध नहीं तिस की आज्ञा ही समझनी * ॥

लौकिक में भी कोई पुरुष किसी धनी गृहस्थ को जीमने का आमंत्रण करने को जावे और आमंत्रण करे तब वो धनी ना न कहे अर्थात् मौन रहे तो सो आमंत्रण मंजूर किया गिना जाता है, तैसे ही प्रभुने नाटक करने का निषेध

* श्री आचारांग सूत्रमें भगवंत श्री महावीर स्वामीने पंचमुष्ठि लोंच किया तव रत्नमयथाल में लोचके बालो को लेकर इंद्रने कहाकि "अणु जाणेसिभंते" अर्थात् हे भगवन आप की आज्ञा होवे ऐसे क्षीर समुद्र में स्थापन करे ।

नहीं किया मौनरहे, तो सो भी आज्ञा ही है तथा नाटक करना सो प्रभु की सेवा भक्ति है, यतः श्रीरायपसेणी सूत्रे-

अहण्णं भंते देवाणु प्पियाणं भत्तिपुव्वयं गोयमाइणं समणाणं निग्गंथाणं बत्तिसइबद्धं नट्ट विहिं उवदंसेमि ॥

अर्थ-सुर्याभ नें कहा कि हे भगवन् ! मैं आपकी भक्ति पूर्वक गौतमादिक श्रमण निर्ग्रंथोंको वत्तीस प्रकारका नाटक दिखाऊं ? इस मूजब श्रीराय पसेणी सूत्र के मूल पाठ में कहा है इसवास्ते मालूम होता है कि सुर्याभको भक्ति प्रधान हैं और भक्तिका फल श्रीउत्तरा ध्ययन सूत्र के २९ में अध्ययन में यावत् मोक्षपद प्राप्ति कहा है, तथा नाटक को जिनराज की भक्ति जब चौथे गुणठाणे वाले सुर्याभ ने मानी है तो जेठमल की कल्पना से क्या होसक्ता है ? क्योंकि चौथे गुणठाणे से लेके चउद में गुणठाणे वाले तककी एक ही श्रद्धा है जब सर्व सम्यक्त्व धारियो की नाटक में भक्ति की श्रद्धा है तब तो सिद्ध होता है कि नाटक में भक्ति नहीं मानने वाले ढूंढक जैनमत से बाहिर हैं तथा इस ठिकाने सूत्र पाठ में प्रभुकी भक्ति पूर्वक ऐसे कहा हुआ है तो भी जेठमल तिस पाठको लोपदिया है इस से जेठमल का कपट जाहिर होता है।

[१३] जेठमल लिखता है कि " नाटक करने में प्रभुने ना न कही तिसका कारण यह है कि सुर्याभ के साथ बहुत से देवता हैं, तिनके निज निज स्थान में नाटक जुदे जुदे होते हैं इस वास्ते सुर्याभ के नाटक को यदि भगवंत निषेध करें तो सर्व ठिकाने जुदे जुदे नाटक होवे और तिस से हिंसा बध जावे" तिस का उत्तर-जेठमल की यह कल्पना बिल कुल झूठी है, जब सुर्याभ प्रभुके पास आया तब क्या देवलोक में शून्यकार था ? और समवसरण में बार में देवलोक तक के देवता और इंद्र थे क्या उन्हों ने सुर्याभ जैसा नाटक नहीं देखा था ? जो वो देखने वास्ते वैठे रहे, इस वास्ते यहां इतना ही समझ ने का है कि इन्द्रा दिक देवते वैठते हैं सो फकत भगवंत की भक्ति समझ के ही वैठते हैं, तथा सुर्याभ देवलोक में नाट्यारभं बंद करके आया है ऐसे भी नहीं कहा है इस वास्ते जेठमल का पूर्वोक्त लिखना व्यर्थ है, और इस पर प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि जब ढूंढिय रिख-साधु-व्याख्यान वांचते हैं तब विना समझे 'हांजीहां" "तहत्त वचन" करने वाले ढूंढिये तिनके आगे आबैठते है, जबतक वो व्याख्यान

बांचते रहेंगे तबतक तो वे सारे बैठे रहेंगे परन्तु जब वो व्याख्यान बंदकरेंगे तब स्त्रियें जाके चुल्हेमें आग पावेंगी, रसोईपकाने लगेंगी. पानी भरने लगजावेंगी, और आदमी जाके अनेक प्रकार के छलकपट करेंगे, झूठबोलेंगे हरी सब्जी लेने को चले जावेंगे, षट्काय का आरंभ करेंगे, इत्यादि अनेक प्रकार के पाप कर्म करेंगे, तो वो सर्व पाप व्याख्यान बंद करने वाले रिखों (साधुओं) के शिर ठहरा या अन्यके? जेठमलजी के कथन मूजिब तो व्याख्यान बंद करने वाले रिखियों के ही शिर ठहरता है।

(१४) जेठमल लिखता है कि "आनंद कामदेव प्रमुख श्रावकों ने भगवंत के आगे नाटक क्यों नहीं किया?" उत्तर—तिनमें सुर्याभ जैसी नाटक करने की अद्भुत शक्ति नहीं थी ॥

(१५) जेठमल लिखता है कि "रावणने अष्टापद पर्वत ऊपर जिन प्रतिमा के सन्मुख नाटक करके तीर्थंकर गोत्र बांधा कहतेहो परन्तु श्रीज्ञातासूत्र में वीस स्थानक आराधने से ही जीव तीर्थंकर गोत्र बांधता है ऐसे कहा है तिस में नाटक करने से तीर्थंकर गोत्र बांधनेका तो नहीं कथन है" उत्तर—इसलेखसे मालूम होता है कि जेठे निन्हव को जैन धर्म की शैलि की और सूत्रार्थ की बिलकुल खबर नहीं थी, क्योंकि वीस स्थानक में प्रथम अरिहंत पद है और रावणने नाटक किया सो अरिहंत की प्रतिमा के आगे ही किया है, इसवास्ते रावणने अरिहंत पद आराध के तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया है ॥

(१६) जेठमल लिखता है कि "सुर्याभ के विमान में बारह बोल के देवता उत्पन्न होते हैं ऐसे सुर्याभने प्रभुको किये ६ प्रश्नों से ठहरता है इसवास्ते जिन ने सुर्याभ विमान में देवते हुए तिन सर्वने जिन प्रतिमा की पूजाकरी है" उत्तर—जेठमल का लेख स्वमति कल्पना का है, क्योंकि वो करणी सम्यग्दृष्टि देवता की है मिथ्यात्वीकी नहीं श्रीरायपसेणी सूत्र में सुर्याभ के सामानिक देवता ने सुर्याभ को पूर्व और पश्चात् हितकारी वस्तु कही है वहां कहा है यतः—

अन्ने सिंचबहुणं वेमाणियाणं देवाणय देवीयण अच्चणिज्जाओ ॥

अर्थात् अन्य दूसरे बहुत देवता और देवियोंके पूजा करने लायक है. इस से सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि की यह करणी है; यदि ऐसे न होवे तो "सव्वेसिंवेमाणियाण" ऐसे पाठ होता इसवास्ते विचारके देखो ॥

(१७) जेठमल कहता है कि "अनंते विजय देवता हुए तिन में सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों ही प्रकारके थे और तिन सर्व ने सिद्धायतन में जिन

पूजाकरी है, परन्तु प्रतिमा पूजने से भव्य सर्व जीव सम्यग्दृष्टि एहु नहीं और सिद्ध भी नहीं पाये।'

उत्तर-अपना मतसत्य ठहराने वालेने सूत्र में किसी भी मिथ्यादृष्टि देवताने सिद्धायतन में जिन प्रतिमाकी पूजा करी ऐसा अधिकार होवे तो सो लिखके अपना पक्ष दृढ़ करना चाहिये। जेठमल ने ऐसा कोई भी सूत्रपाठ नहीं लिखा है, किन्तु मनः कल्पित बातें लिख के पोथी भरी है, इसवास्ते तिसका लिखना बिलकुल असत्य है, क्योंकि किसी भी सूत्र में इस मतलबका सूत्रपाठ नहीं है।

और जेठमल ने लिखा है कि "प्रतिमा पूजने से कोई अभव्य सम्यग्दृष्टि न हुआ इसवास्ते जिन प्रतिमा पूजने से फायदा नहीं है" उत्तर-अभव्य के जीव शुद्ध श्रद्धायुक्त अंतःकरण विना अनंतीवार गौतमस्वामी सदृश चारित्र पालते हैं और नवमें ग्रैवेयक तक जाते हैं परन्तु सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं ऐसे सूत्र कारोंका कथन है इस वास्ते जेठमलके लिखे मूजिब तो चारित्र पाल ने से भी किसी ढूंढक को कुछ भी फायदा नहीं होगा॥

(१८) पृष्ठ (१०२) में जेठमलने सिद्धायतन में प्रतिमा की पूजा सर्व देवते करते हैं ऐसे सिद्ध करने के वास्ते कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं सो सर्व तिस के प्रथम के लेखके साथ मिलती हैं तो भी भोले लोगोंको फंसाने वास्ते वारंवार एककी एक ही बात लिख के निकम्मे पत्रे काले करे हैं॥

(१९) जेठमल लिखता है कि "सर्व जीव अनंतीवार विजय पोलीए पणे उपजे हैं तिन्होंने प्रतिमा की पूजाकरी तथापि अनंतेभव क्यों करनेपड़े? क्योंकि सम्यक्त्ववान् को अनंते भव होवे नहीं ऐसा सूत्र का प्रमाण है" उत्तर-सम्यक्त्ववान् को अनंते भव होवे नहीं ऐसे जेठमल मूढ़मति लिखता है सो बिलकुल जैन शैलिसे विपरीत और असत्य है, और "ऐसा सूत्रका प्रमाण है" ऐसे जो लिखा है सो भी जैसे मच्छीमारके पास मछलियां फंसाने वास्ते जाल होता है तैसे भोले लोगों को कुमार्गमे डालने का यह जाल है क्योंकि सूत्रों में तो चार ज्ञानी, चौद पूर्वी, यथाख्यात चारित्री; एकादशम गुणठाणे वाले को भी अनंते भव होवे ऐसे लिखा है तो-सम्यग् दृष्टिको होवे इस में क्या आश्चर्य है? तथा सम्यक्त्व प्राप्ति के पीछे उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल परावर्त्त संसार रहता है और सो अनंताकाल होने से तिस में अनंते भव हो सकते हैं *॥

(२०) जेठमल लिखता है कि "एक वक्त राज्याभिषेक के समय प्रतिमा पूजते है परन्तु पीछे भव पर्यंत प्रतिमा नहीं पूजते है" उत्तर-सुर्याभने पूर्व और

---

* श्रीजीवाभिगम सूत्र में लिखा है यतः-

पीछे हितकारी क्या है ? ऐसे पूछा तथा पूर्व और पीछे करने योग्य क्या है ? ऐसे भी पूछा, जिस के जवाब में तिस के सामानिक देवताने जिन प्रतिमाकी पूजा पूर्व और पीछे हितकारी और करने योग्य कही जो पाठ श्रीरायपसेणी सूत्र में प्रसिद्ध है + इस वास्ते सुर्याभ देवताने जिन प्रतिमा की पूजा नित्य करणी तथा सदा हितकारी जान के हमेशां करि ऐसे सिद्ध होता है ॥

सम्मदिट्ठिस्स अंतरं सातियस्स अपज्जवसियस्स गात्थि अंतरं सातियस्स सपज्जवसियस्स जहराणेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गल परियट्टं देसूणं ॥

+ श्री राय पसेणी सूत्रका पाठ यह है:-

"तएणं तस्स सूरियाभस्स पंचविहाए पज्जत्तिए पज्जि-त्तिभावे गयस्स समाणस्स इमेयारूवे अप्भत्थिए चिंतिए पात्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पाज्जित्था किंमे पुव्विं करणिज्जं किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं सेयं किं मे पच्छा सेयं किं मे पुव्विं पच्छावि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिय परिसोववरणगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेया-रूव मप्भत्थियं जाव समुप्पणणं समभि जाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवेतेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंतिश्त्ता एवं वयासी एवंखलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धाययणे अट्ठसयंजिणपडिमाणं जिणु-स्सेह पमाणमेत्ताणं सारिणखित्त चिट्ठंति सभाएणं सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामए गोलवट्ट समुग्गएबहूओ जिण

(२१) जेठा लिखता है कि "सुर्याभने धर्म्म शास्त्र वांचे ऐसे सूत्रों में कहा है सो कुल धर्म्म के शास्त्र समझने क्योंकि जो धर्म शास्त्र होवे तो मिथ्यात्वी और अभव्य क्यों वांचे ? कैसे सद्दहे ? और जिनवचन सच्चे कैसे जाने ?" उत्तर सुर्याभने वांचे सो पुस्तक धर्मशास्त्र के ही हैं ऐसे सूत्रकार के कथन से निर्णय होता है 'कुल" शब्द जेठेने अपने घरका पाया है सूत्र में नहीं है और लौकिक में भी कुलाचार के पुस्तकों को धर्मशास्त्र नहीं कहते हैं. धर्म्मशास्त्र वांचने का अधिकार सम्यग्दृष्टि का ही है, क्योंकि सब देवता वांचते हैं ऐसा किसी जगह नहीं कहा है तो अभव्य और मिथ्या दृष्टिको वांचना और तिन के ऊपर श्रद्धान करना कहां रहा ? कदापि जेठा मनः कल्पना से कहे कि वो वांचते है परन्तु श्रद्धान नहीं करते हैं ऐसे तो ढूंढिये भी जैनशास्त्र वांचते है परन्तु जिनाज्ञा मूजिब तिनका श्रद्धान नहीं करते है, उलटे वांचके पीछे अपना कुमत स्थापन करने वास्ते भोले लोगों के आगे विपरीत प्ररूपणा करके तिनको ठगते हैं परन्तु इस से जैनशास्त्र कुल धर्म के शास्त्र नहीं कहावेंगे ।

(२२) जेठमल कहता है कि 'सम्यग्दृष्टि देवता सिद्धांत वांचके अनंत संसारी क्यों होवे ? क्योंकि तुमतो श्रावक सूत्र वांचे तो अनंत संसारी होवे ऐसे कहते हो" उत्तर-श्रावक को सिद्धांत नहीं वांचने सो मनुष्य आश्री नहीं÷ जो ढूंढिये सम्यग्दृष्टि देवता और मनुष्य को श्रावक के भेद में एक सरिखे मानते है तो देवताकी करि जिन पूजा क्यों नहीं मानते हैं ? ।

सकहाओ सारिणखित्ताओ चिट्ठंति ताओणं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिंच बहूणं वेमाणियाणं देवाणय देवीणय अच्चणिज्जा-ओ जाव वंदणिज्जाओ णमसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सम्माण णिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देव यंचेइय पज्जुवासणिज्जाओ तं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं एयणं देवाणुप्पियाण पच्छा करणिज्जे एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं एयणं देवा णुप्पियाणं पच्छा सेयं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पच्छा वि-हियाए सुहाए खमाए णिस्ससाए अणुगामित्ताए भविस्सइ" ॥

÷ श्रावक को जो सूत्र वांचनेका निषेध है सो आचांग, सूयगडांग, ठाणांग,

(२३) जेठमल लिखता है कि सुर्याभ ने धर्म व्यवसाय ग्रहण किये पीछे बत्तीस वस्तु पूजी हैं इस वास्ते जिन प्रतिमा पूजन संबंधी धर्म्म व्यवसाय कहे है ऐसे नहीं समझना" उत्तर–सुर्याभने जो धर्म व्यवसाय ग्रहण किये हैं सो जिन प्रतिमा पूजने निमित्त के ही है, जो कि तिसने प्रथम जिन प्रतिमा तथा जिन दाढ़ा पूजे पीछे अन्य वस्तु पूजी है परन्तु तिससे कुछ वाधक नहीं हैं, क्योंकि मनुष्य लोक में भी जिन प्रतिमा की पूजा किया पीछे इसी व्यवसाय से अन्य स्थानाधिष्टायक देव देवी की पुजा होती है।

(२४) मूढ़ मति जेठमल ने सिद्धायतन में जो प्रतिमा है सो अरिहंत की नहीं ऐसे सिद्ध करने को आठ कुयुक्तियां लिखी है। तिन के उत्तरः–

(१) श्री जीवाभिगम में 'रिठ्ठमया मंसू" यानि रिष्टरत्नमय दाढ़ी मूछ कही हैं और श्रीरायपसेणी में नहीं कही तो इस से प्रतिमा में क्या झगड़ा ठहरा? यह भूल तो जेठमल ने सूत्रकार की लिखी है! परन्तु जेठमल में इतनी विचार शक्ति नहीं थी कि जिस से विचार करलेता कि सूत्र की रचना विचित्र प्रकार की है किसी में कोई विशेषण होता है, और किसी में नहीं होता है।

(२) सिद्धायतन की जिन प्रतिमा को "कणयमया चुच्चुआ" कंचनमय स्तन कहे है इस मे जेठमल लिखता है कि 'पुरुषको स्तन नहीं होते है, श्री उवाईसूत्र में भगवंत के शरीरका वर्णन किया है वहां स्तन युगल का वर्णन नहीं किया है" उत्तर–सूत्र में किसी जगह कोई बात विस्तार से होती है परंतु इस से कोई झगड़ा नहीं पड़ता है, जेठमल ने लिखा है कि "तीर्थंकर चक्रवर्त्ती बलदेव, वासुदेव तथा उत्तम पुरुष वगैरह को स्तन नहीं होते हैं" जेठमलका यह लिखना बिलकुल मिथ्या है, क्योंकि पुरुष मात्र के हृदय के भागमें स्तनका दिखाव होता है, और उससे पुरुष का अंग शोभता है जो ऐसे न होवे तो साफ तखते सरीखा हृदय बहुतही बुरा दीखे, इसवास्ते जेठमलकी यह कुयुक्ति बनावटी है; और इससे यह तो समझा जाता है कि जेठेकी छाती साफ तखते

समवायांग, भगवती प्रमुख सिद्धांत वांचने का है; परन्तु सर्वथा धर्मशास्त्र के वांचने का निषेध नहीं है श्री व्यवहार सूत्र में लिखा है कि इतने वर्षकी दीक्षा पर्याय होवे तो आचारांग पढ़े इतने की होवे तो सूयगडांग पढ़े, इत्यादि कथन से सिद्ध होता है कि आचारांगादि सूत्रों के पढ़ने का गृहस्थी को निषेध है, अन्य प्रकरणादि धर्म शास्त्र के पढ़ने का निषेध नहीं इसवास्ते देवता के पढ़े धर्म शास्त्रों में शंका करनी व्यर्थ है॥

सरीखा हृदय बहुतही बुरा दीखे, इसवास्ते जेठमल की यह कुयुक्ति बनावटी है; और इससे यह तो समझा जाता है कि जेठे की छाती साफ तखते सरीखी होगी *।

(३) "तीर्थंकर के पास (रिसिपरिसाए, जई परिसाए) अर्थात् ऋषिकी पर्षदा और यतिकी पर्षदा होती है ऐसे सूत्रों में कहा है परन्तु नाग भूत और यक्षकी पर्षदा नहीं कही है और सिद्धायतन में रहे जिन बिंबके पासतो नाग भूत तथा यक्षका परिवार कहा है इसवास्ते सो अरिहंतकी प्रतिमा नहीं" ऐसे मंदमति जेठमल कहता है तिसका उत्तर-फकत द्वेषबुद्धिसे और मिथ्यात्व के उदय से जेठे निन्हवने जराभी पाप होनेका भय नहीं जाना है, क्योंकि सूत्र में तो प्रभुके पास बारां पर्षदा कही हैं चार प्रकार के देवता और देवी यह आठ, साधु, साध्वी, मनुष्य और मनुष्यणी चार यह कुल बारां पर्षदा कहाती है तो सिद्धायतन में छत्रधारी, चामरधारी प्रमुख यक्ष तथा नागदेवता वगैरहकी मूर्ति हैं इस में क्या अनुचित है ? क्योंकि जब साक्षात् प्रभु विचरतेथे तब भी यक्ष देवता प्रभुको चामार करते थे।

फेर वो लिखता है कि "अशाश्वती प्रतिमा के पास काउसगीए की प्रतिमा होती है और शाश्वती के पास नहीं होती है तो दोनों में कौनसी सच्ची और कौनसी झूठी ?" उत्तर-हमको तो दोनों ही प्रकार की प्रतिमा सच्ची और वंदनीक पूजनीक हैं, परन्तु जो ढूंढिये काउसग्गीए सहित प्रतिमा तो अरिहंत की होवे सही ऐसे कहते हैं तो मंजूर क्यों नहीं करते है ? परन्तु जबतक मिथ्यात्वरूप जरकान (पीलीया रोग) हृदयरूप नेत्र में है तबतक शुद्धमार्गकी पिछान इनको नहीं होने वाली है ॥

(४) सुर्याभने जिन प्रतिमा की मोर पीछी से पडिलेहणा करी इस में जेठमल ने "साधुको पांच प्रकार के रजोहरण रखने शास्त्र में कहे है तिन में मोर पीछी का रजोहरण नहीं कहा है" ऐसे लिखा है, परन्तु तिसका इसके साथ कोई भी संबंध नहीं है। क्योंकि मोरपीछी प्रभुका कोई उपगरण नहीं है

---

* प्रथम की और दूसरी युक्ति को ठीक ठीक देखने से मालूम होता है कि जेठमल ने भोले लोकोंको फसाने के वास्ते फकत एक जाल रचा है, क्योंकि प्रथम युक्ति में रायपसेणी सूत्रका प्रमाण देके जीवाभिगम सूत्र के पाठ को असत्य करना चाहा परन्तु जब स्तन का वर्णन आया तो रायपसेणी सूत्र को भूला बैठा ! क्योंकि रायपसेणी सूत्र मे भी कनकमय स्तन लिखे है-तथाहि-"तवणिज्ज मयाचुच्चुआ"-

सोतो जिन प्रतिमा के ऊपरसे वारीक जीवोकी रक्षा के निमित्त तथा रज प्रमुख प्रमार्जने के वास्ते भक्ति कारक श्रावको को रखने की है ॥

(५) सुर्याभने प्रतिमाको वस्त्र पहिराये इस बाबत जेठमल लिखता है कि "भगवंत तो अचेल हैं इसवास्ते तिनको वस्त्र होने नहीं चाहियें" यह लिखना बिलकुल मिथ्या है क्योंकि सूत्र में वावीस तीर्थंकरो को यावत् निर्वाण प्राप्त होए तहां तक सचेल कहा है और वस्त्र पहिरानेका खुलासा द्रौपदी के अधिकार में लिखा गया है।

(६) प्रभुको गेहने न होवे इस बाबत "आभरण पहिराये सो जुदे और चढ़ाये सो जुदे" ऐसे जेठमल कहता है, परन्तु सो असत्य है; क्योंकि सूत्र में "आभरणारोहणं" ऐसा एक ही पाठ है, और आभरण पहिराने तो प्रभुकी भक्ति निमित्त ही है ॥

(७) स्त्री के संघट्ट बाबत का प्रत्युत्तर द्रौपदी के अधिकार में लिख आए है।

(८) 'सिद्धायतन में जिन प्रतिमा के आगे धूप धुखाया और साक्षात् भगवंत के आगे न धुखाया" ऐसे जेठमल लिखता है परन्तु सो झूठ है क्योंकि प्रभुके सन्मुख भी सुर्याभ की आज्ञा से तिस के आभियोगिक देवताओं ने अनेक सुगंधी द्रव्यों करी संयुक्त धूप धुखाया है ऐसे श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है।

(२५) जेठमल कहता है कि "सर्व भोग में स्त्री प्रधान है, इसवास्ते स्त्री क्यों प्रभुको नहीं चढ़ाते हो ?" मंदमति जेठमल यह लिखना महा अविवेक का है क्योंकि जिन प्रतिमा की भक्ति जैसे उचित होवे तैसे होती है, अनुचित नहीं होती है; परन्तु सर्व भोगमें स्त्री प्रधान है ऐसा जो ढूंढिये मानते है तो तिनके बेअकल श्रावक अशन, पान खादिम स्वादिम प्रमुख पदार्थों से अपने गुरुओं की भक्ति करते हैं परन्तु तिन में से कितनक ढूंढियों ने अपनी कन्या अपने रिख-साधुओं के आगे धरी हैं और विहराई है तो दिखाना चाहिये ! जेठ-मल के-लिखे मूजिब तो ऐसे जरूर होना चाहिये ! तथा मूर्ख शिरोमणि जेठके हृदय से स्त्री की लालसा मिटी नहीं थी इसी वास्ते उसने सर्व भोग में स्त्री को प्रधान माना है इस बातका सबूत ढूंढक पट्टावलि में लिखागया है ॥

(२६) जेठमल लिखता है कि "चैत्य देवता के परिग्रह में गिना है तो परिग्रहको पूजे क्या लाभहोवे ?" उत्तर-सूत्रकारने साधुके शरीर को भी परिग्रह में गिना है तो गणधर महाराज को तथा मुनियों को वंदना नमस्कार करने से तथा तिनकी सेवा भक्ति करने से जेठमल के कहने मूजिबतो कुछ भी

लाभ न होना चाहिये और सूत्र में तो बड़ाभारी लाभ बताया है. इसवास्ते तिसका लिखना मिथ्या है. क्योंकि जिसको अपेक्षा का ज्ञान न होवे तिसको जैनशास्त्र समझने बहुत मुशकिल हैं,और इसीवास्ते चैत्यको देवता के परिग्रह में गिना है तिसकी अपेक्षा जेठमल के समझने में नहीं आई है इसतरह अपेक्षा समझे विना सूत्रपाठके विपरीत अर्थ करके भोले लोगों को फंसाते हैं इसी वास्ते तिनको शास्त्रकार निन्हव कहते है ॥

(२७) नमुथ्थुणं की बाबत जेठमलने जो कुयुक्ति लिखी है और तीन भेद दिखाये हैं सो विलकुल खोटे हैं क्योंकि इस प्रकारके तीन भेद किसी जगह नहीं कहे हैं तथा किसी भी मिथ्यादृष्टिने किसी भी अन्य देवके आगे नमुथ्थुणं पढ़ा ऐसंभी सूत्रमें नहीं कहा है. क्योंकि नमुथ्थुणं में कहेगुण सिवाय तीर्थंकर महाराज के अन्य किसी में नहीं हैं, इसवास्ते नमुथ्थुणं कहना सो सम्यग्दृष्टि की ही करणी है ऐसे मालूम होता है ॥

(२८) जेठमल कहता है कि "किसी देवताने साक्षात् केवली भगवंतको नमुथ्थुणं नहीं कहा है सो असत्य है, सुर्याभ देवताने वीर प्रभुको नमुथ्थुणं कहा है ऐसे श्रीरायपसेणी सूत्र में प्रकट पाठ है ।

(२९) जेठमल जीत आचार ठहराके देवता की करणी निकाल देता है परन्तु अरेढूंढिये ! क्या देवता की करणी से पुण्य पाप का बंध नहीं होता है ? जो कहोगे होता है तो सुर्याभने पूर्वोक्त रीति से श्रीवीर प्रभुकी भक्ति करी उस से तिसको पुण्यका बंध हुआ या पाप का ? जो कहोगे कि पुण्य या पाप किसी का बंध नहीं होता है तो जीव समयमात्र यावत् सातकर्म बांधे विना नहीं रहे ऐसे सूत्र में कहा है सो कैसे मिलाओगे ! परन्तु समझने का तो इतनाही है. कि सुर्याभ तथा अन्य देवते जो पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर भगवत की भक्ति करते हैं सो महापुण्य राशि संपादन करते हैं क्योंकि तीर्थंकर भगवंत की इस कार्य में आज्ञा है ॥

(३०) जेठमल 'पुव्विं पच्छा" का अर्थ इस लोक संबंधी ठहराता है और "पेच्चा" शब्दका अर्थ परलोक ठहराता है सो जेठमल की मूढ़ता है; क्योंकि 'पुव्विं पच्छा' का अर्थ 'पूर्व जन्म' और 'अगला जन्म' ऐसा होता है; 'पेच्चा' और 'पच्छा'पर्यायी शब्द है.इन दोनोंका एकही अर्थ है जेठ ने खोटा अर्थ लिखा है इस से निश्चय होता है कि जेठमलको शब्दार्थ की समझ ही नहीं थी श्री आचारांग सूत्र में कहा है.कि 'जस्स नथ्थि पुव्विं पच्छा मज्झे तस्स कओसिया अर्थात् जिस को पूर्व भव और पश्चात् अर्थात् अगले भव में कुछ नहीं है तिस

को मध्य में भी कहांसे होवे ? तात्पर्य जिसको पूर्व तथा पश्चात् है तिसको मध्य में भी अवश्य है, इसवास्ते सुर्याभ की करी जिनपूजा तिसको त्रिकाल हितकारिणी है, ऐसे श्रीरायपसेणी सूत्र के पाठका अर्थ होता है।

और श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में मृगा पुत्र के संबंध में कहा है कि:-

अम्मत्ताय मए भोगा भुत्ता विसफलोवमा ॥
पच्छा कडुअविवागा अणुबंध दुहावहा ॥ १ ॥

अर्थ-हे माता पिता ? मैंने विष फल की उपमा वाले भोग भोगे हैं जो भोग कैसे हैं ? 'पच्छा' अर्थात् अगले जन्म में कडुवा है फल जिनका और परंपरासे दुःख के देनेवाले ऐसे हैं। इस सूत्र पाठ में भी 'पच्छा' शब्द का अर्थ परभव ही होता है। किं बहुना ॥

(३१) जेठमल सुर्याभ के पाठ में बताये जिन पूजा के फल की यावत "निस्सेसाए" अर्थात् मोक्ष के वास्ते ऐसा शब्द है तिस शब्द का अर्थ फिराने वास्ते भगवती सूत्र में से जलते घरसे धन निकालने का तथा वरमी फोड़के द्रव्य निकालनेका अधिकारा दिखाता है और कहता है कि "इस संबंध में भी" (निस्सेसाए) ऐसा पद है इसवास्ते जो इसपदका अर्थ 'मोक्षार्थं' ऐसा होवे तो धन निकाल ने से मोक्ष कैसे होवे ? तिसका उत्तर-धन से सुपात्र में दान देवे, जिन मंदिर, जिन प्रतिमा बनवावे, सातों क्षेत्रों में, तीर्थयात्रा में, दया में तथा दान में धन खरचे तो उससे यावत् मोक्षप्राप्त होवे इसवास्ते सूत्र में जहां जहां "निस्से साए" शब्द है तहां तहां तिस शब्दका अर्थ मोक्ष के वास्ते ऐसा ही होता है और सो शब्द जिन प्रतिमा के पूजने के फल में भी है तो फकत एक मूढ़मति जेठमल के कहने से महाबुद्धिमान् पूर्वाचार्य कृत शास्त्रार्थ कदापि फिर नहीं सकता है ॥ *

---

* जो ढूंढिये "निस्सेसाए" शब्द का अर्थ मोक्ष के वास्ते ऐसा नहीं मानते हैं तो श्रीरायपसेणी सूत्र में अरिहंत भगवंत को वंदना नमस्कार करनेका फल सुर्याभने चिंतन किया वहां भी "निस्सेसाए" शब्द है जो पाठ इसी प्रश्नोत्तर की आदि में लिखा हुआ है और अन्य शास्त्रों में भी है तो ढूंढियों के माने मूजिब तो अरिहंत भगवंतको वंदना नमस्कार का फल भी मोक्ष न होगा ! क्योंकि वहां भी "निस्संसाए" फल लिखा है। इस वास्ते सिद्ध होता है कि जिन प्रतिमा के साथ ही ढूंढियों का द्वेष है और इसी से अर्थ का अनर्थ करते हैं, परन्तु यह इनका उद्यम अपने हाथों से अपना मुंहकाला करने सरीखा है।

(३२) जेठमल निन्हवने ओघनिर्युक्ति की टीका का पाठ लिखा है सो भी असत्य है क्योंकि ऐसा पाठ ओघनिर्युक्ति में तथा तिसकी टीका में किसी जगह भी नहीं है। यह लिखना जेठमलका ऐसा है कि जैसे कोई स्वेच्छासे लिख देवे कि मुंड बंधो का पंथ किसी चमार का चलाया हुआ है क्योंकि इनका कितना आचार व्यवहार चमारों से भी बुरा है ऐसा कथन प्राचीन ढूंढक निर्युक्ति में है" ॥

(३३) इस प्रश्नोत्तर में आदि से अंत तक जेठमल ने सुर्याभ जैसे सम्यग्दृष्टि देवता की, और तिस की शुभ क्रिया की निंदा करी है परन्तु श्रीठाणांग सूत्र के पांचवें ठाणे में कहा है कि पांच प्रकार से जीव दुर्लभ बोधि होवे अर्थात् पांच काम करने से जीवो को जन्मांतर में धर्म की प्राप्ति दुर्लभ होवे यतः-

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लहबो हियत्ताए कम्मं पकरेंति तंजहा। अरिहंताणं अवरणं वयमाणे १ अरिहंतपणत्तस्स धम्मस्स अवरणं वयमाणे२आयरिय उयज्भायाणं अवरणं वयमाणे३ चाउवणस्स संघस्स अवरणं वयमाणे ४ वि विक्कत वबं-भचेराणं देवाणं अवरणं वयमाणे ५ ॥

ऊपर के सूत्रपाठ के पांचवें बोल में सम्यग्दृष्टि देवता के अवर्णवाद बोल बोलने से दुर्लभ बोधि होवे ऐसे कहा है इसवास्ते अरे ढूढियों ! याद रखना कि सम्यग्दृष्टि देवता के अवर्णवाद बोलने से महा नीचगति के पात्र होवोगे और जन्मांतर में धर्म की प्राप्ति दुर्लभ होगी ॥ इति ॥

---

(२१) देवता जिनेश्वर की दाढ़ां पूजते हैं।

एकवीसवें प्रश्नोत्तर में सुर्याभ देवता तथा विजय पोलिया प्रमुखों ने जिनदाढ़ां पूजी हैं तिसका निषेध करने वास्ते जेठमल ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं, परन्तु तिन में से बहुत कुयुक्तियों के प्रत्युत्तर बीसवें प्रश्नोत्तर में लिखे गये है, बाकी शेष कुयुक्तियों के उत्तर लिखते है। श्रीभगवती सूत्र के दशवें शतक के पांचवें उद्देशे में कहा है कि:-

पभूणं भंते चमरे असुरिंदे असुर कुमारराया चमर चंचाए

रायहाणिए सभाए सुहम्माए चमरांसि सिंहासणांसि तुडियणं सद्धिं दिव्वाइं भोग भोगाइं भुंज माणे विहरित्तए ? णोइणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइणो पभू जाव विहारि त्तए ? गोयमा ! चमरस्सणं असुरिंदस्स असुर कुमाररन्नो चमर चंचाए रायहाणिए सभाए सुहम्माए माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्ट समुग्गए सुबहुइओ जिणसकहा ओसन्नि क्खित्ताओ चिठ्ठंति जाओणं चमरस्स असुरिंदस्स असुर कुमार रन्नो अन्नेसिंच बहुणं असुर कुमाराणं देवाणं देवीणय अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ नमंसणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ भवंति से तेणट्ठेणं अज्जो एवं वुच्चइणो पभूजाव विहरित्तए । पभूणं भंते चमरे असुरिंदे असुरराया चमर चंचाए रायहाणिए सभाए सुहम्माए चमरांसि सिंहासणांसि चउसट्ठीए सामाणिय साहस्सिहिं तायत्तिसाए जाव अन्नेहिं असुर कुमारेहिं देवेहिं देवीहिय सद्धिं संपरिवुडे महया नट्ट जाव भुंजमाणे विहरित्तए ? हंता केवल परियारिठ्ठिए नो चेवणं मेहुणवत्तियाए ॥

अर्थ-गौतम स्वामी ने महावीरस्वामी को प्रश्न किया "हे भगवन् ! चमर असुर देवका इन्द्र असुर कुमार का राजा, चमर चंचा नामा राज्य धानी में, सुधर्मानामा सभा में, चमर नामा सिंहासन के ऊपर रहा हुआ तुड़िय अर्थात् इन्द्राणीका समूह तिस के साथ देवता संबधी भोगों को भोगता हुआ विचरने को समर्थ है ?" भगवंत कहते हैं-' यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् भोग न भोगे फेर गौतम स्वामी पूछते हैं 'हेभगवन् ! भोग भोगता हुआ विचरने को समर्थ नहीं ऐसा किस कारण से कहते हो ?" प्रभु कहते हैं " हे गौतम ! चमर

असुरेंद्र असुरकुमार राजा की चमर चंचा राजधानी में सुधर्मा नामा सभा में माणवक नामा चैत्यस्तंभ में वज्रमय बहुत गोल डब्बे हैं तिन में बहुती जिनेश्वर की दाढ़ा थापी हुई हैं जो दाढ़ा चमर असुरेंद्र असुरकुमार राजा के तथा अन्य बहुते असुर कुमार देवताओं के और देवीयों के अर्चने योग्य, वंदना करने योग्य, नमस्कार करने योग्य पूजन योग्य सत्कार करने योग्य, सन्मान करने योग्य कल्याण कारी मंगलकारी, देव संबंधी चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा की तरह सेवा करने योग्य है, हे आर्य ! तिस कारण से ऐसे कहते हैं कि देवीयों के साथ भोग भोगने को समर्थ नहीं है" फेर गौतमस्वामी पूछते हैं कि 'चमर असुरेंद्र असुर कुमार का राजा, चमर चंचा राजधानी में सुधर्मा सभा में चमर सिंहासनोपरि बैठाहुआ चौसठ हजार सामानिक देवताओं के साथ तथा तेतीस त्रायस्त्रिंशक के साथ यावत् अन्य भी असुर कुमार जातिके देवताओं के तथा देवीयों के साथ परवारा हुआ बड़े भारी नाटक प्रमुखको देखता हुआ विचरने को समर्थ है ?" भगवंत कहते हैं " हां केवल स्त्री शब्द नाटक प्रमुख में श्रवणादिक भी न सेवे" ॥

पूर्वोक्त पाठ में जैसे चमरेंद्र के वास्ते कथन करा तैसे सौधर्मेंद्र तक अर्थात् भुवन पति, व्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक तथा तिन के लोकपाल संबंधी कथन के आलावे (पाठ) हैं सो तद्यीं होवे उसने देख लेने ।
पूर्वोक्त सूत्र पाठ से जेठमलकी कितनीक कुयुक्तियों के प्रत्युत्तर आजाते हैं *॥

जेठमल लिखता है कि "भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि प्रमुख सर्व देवते जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा सिद्धायतन में हैं वे तथा जिन दाढ़ा पूजते हैं इसवास्ते तिनका मोक्ष फल नहीं" इस का प्रत्युत्तर सुरयाभ के प्रश्नोत्तर में लिख दिया है, परन्तु ढूंढिये जो करणी सर्व करते हैं, तिसका मोक्षफल नहीं समझते हैं तो संयम श्रावक व्रत सामायिक और प्रतिक्रमणादि भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि सर्व ही करते हैं; इसवास्ते मूढ़ मति ढूंढियों को साधुपणा श्रावक व्रत, सामायिकादि भी नहीं करनी चाहिये ! परन्तु बेअकल ढूंढिये यह नहीं समझते हैं कि जैसा जिसका भाव है तैसा तिसको फल है ॥

जेठमल लिखता है कि "जीत आचार जानके ही देवते दाढ़ा प्रमुख लेते हैं धर्म जान के नहीं लेते हैं" उत्तर—श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती सूत्र में जहां जिनदाढ़ा लेनेका अधिकार चलाया है तहां कहा है कि चार इन्द्र चार दाढ़ा लेवे, पीछे

---

* श्रीरायपसेणी, जीवाभिगम, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रों में भी तीर्थंकरों की दाढ़ा पूजनी लिखी हैं, और तिस पूजाका फल यावत मोक्ष लिखा है ॥

कितनेक देवते अंगोपांग के अस्थ प्रमुख लेते हैं, तिन में कितनेक जिन भक्ति जान के लेते हैं, और कितेनक धर्म जान के लेते हैं" इस वास्ते जेठमलका लिखना मिथ्या है, श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती का पाठ यह है:-

केई जिण भत्तिए केई जीयमेयंतिकट्टु केई धम्मोत्तिकट्टु गिण्हंति ॥

जेठमल लिखता है, कि "दाढ़ा लेनेका अधिकार तो चार इंद्रोंका है और दाढ़ा की पूजा तो बहुत देवते करते है ऐसं कहा है इसवास्ते शाश्वते पुद्गल दाढ़ा के आकार परिणमते है" तिसका उत्तर-एक पल्योपम काल में असंख्यात तीर्थंकरों का निर्वाण होता है इसवास्ते सर्व सुधर्मा सभाओं में जिन दाढ़ा होसक्ती हैं, और महा विदेह के तीर्थंकरों की दाढ़ा सर्व इंद्र और विमान,भुवन नगराधिपत्यादिक लेते हैं, परन्तु भरतखण्ड की तरें चार ही इंद्र लव यह मर्यादा नहीं है तथा श्रीजंबूद्वीपपन्नत्ति सूत्र की वृत्ति में श्री शांतिचंद्रो पाध्यायजी ने 'जिनसक्काहा" शब्द करके "जिनास्थीनि" अर्थात् जिनेश्वर के अस्थि कहे हैं, तथा तिसही सूत्र में चारइन्द्रो के सिवाय अन्य बहुत देवता जिनेश्वर के दांत, हाड़ प्रमुख अस्थि लेते हैं ऐसा अधिकार है. इसवास्ते जेठमलकी करी कुयुक्तियां खोटी है और जेठमल दाढ़ाको शाश्वते पुद्गल ठहराता है परन्तु सूत्रों में तो खुलासा जिनेश्वर की दाढ़ा कही हैं, शाश्वती दाढ़ा तो किसी जगह भी नहीं कही हैं इसवास्ते जेठमलका लिखना मिथ्या है ।

जेठमल लिखता है कि 'जो धर्म जानके लेते होवें तो अन्य इन्द्र लेवें और अच्युतेंद्र क्यों न लेवे ?" ॥

उत्तर-वीर भगवान् दीक्षा पार्यायमें विचरते थे उस अवसरमें तिनको अनेक प्रकार के उपसर्ग हुए तब भगवंत की भक्ति जान के धर्म निमित्त सौधर्मेंद्रने वारंवार आनके उपसर्ग निवारण किये तैसे अच्युतेंद्र ने क्यों नहीं किये? क्या वो जिनेश्वर की भक्ति में धर्म नहीं समझते थे, समझते तो थे तथापि पूर्वोक्त कार्य सौधर्मेंद्रने ही किया है तैसेही भरतादि क्षेत्रके तीर्थंकरों की दाढ़ा चार इन्द्र लेते है, और महा विदेह के तीर्थंकरों की सर्व लेते हैं इसवास्ते, इस में कुछ भी बाधक नहीं है, जेठमल लिखता है, कि 'दाढ़ा सदा काल नहीं रहसकी है इसवास्ते शाश्वते पुद्गल समझने" इसतरह असत्य लेख लिखने में तिस को कुछ भी विचार नहीं हुआ है सो तिसकी मूढता की निशानी है, क्योंकि दाढ़ा सदाकाल रहती हैं ऐसे हम नहीं कहते हैं, परन्तु वारंवार तीर्थं

करों के निर्वाण समय दाढ़ा तथा अन्य अस्थि देवता लेते हैं इसवास्ते तिनकी दाढ़ा की पूजा में बिलकुल विरह नहीं पड़ता है ॥

जेठमल कहता है कि "जमालि तथा मेघ कुमार की माताने तिन के केश मोहनी कर्म के उदय से लिये हैं, तैसे दाढ़ा लेने में मोहनी कर्मका उदय है"

प्रभुकी दाढ़ा देवता लेते हैं सो धर्म बुद्धि से लेते हैं तिसमें तिनको कोई मोहनी कर्म का उदय नहीं है जमालि प्रमुख के केश लेने वाली तो तिनकी माता थीं तिस में तिनको तो मोह भी होसक्ता है परन्तु इंद्रादि देवते दाढ़ा प्रमुख लेते हैं वे कोई भगवंत के सगे संबंधी नहीं थे जोकि जमालि प्रमुखकी माताकी तरह मोहनी कर्म के उदय से दाढ़ा लेवे, वे तो प्रभुके सेवक हैं और धर्म बुद्धि से ही प्रभुकी दाढ़ा प्रमुख लेते हैं ऐसे स्पष्ट मालूम होता है।

जेठमल लिखता है कि 'देवता जो दाढ़ा प्रमुख धर्म बुद्धि से लेते होंवे तो श्रावक रक्षाभी क्यों नहीं लेवे!" उत्तर-

जिस वक्त तीर्थंकरका निर्वाण होता है उसवक्त निर्वाण महोत्सव करने वाले अगणित देवता आते हैं और अग्निदाह किये पीछे वे दाढ़ा,प्रमुख समग्र लेजाते हैं शेष कुछ भी नहीं रहता है तो इतने सारे देवताओंके बीच मनुष्य किस गिनती में है जो तिनके बीच रक्षा जाके प्रमुख कुछ भी ले सकें? ॥

जेठमल कहता है कि 'कुलधर्म जान के दाढ़ा पूजते है," सो भी असत्य है क्योंकि सूत्रों में किसी जगह भी कुल धर्म नहीं कहा है,जेठाइसको लौकिक जीतव्यवहार की करणी ठहराता है, परन्तु यह करणी तो लोकोत्तर मार्ग की है "जिनदाढ़ा की आशातना टालने वास्ते इंद्रादिक सुधर्मा सभा में भोग नहीं भोगते है तथा मैथुन संज्ञा से स्त्री के शब्द का भी सेवन नहीं करते हैं" ऐसे पूर्वोक्त सूत्र पाठ में कहा है तथापि विना अकल के बेवकूफ आदमी की तरह जेठमल ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी है सो मिथ्या है, इस प्रसंग में जेठे ने कृष्णकी सभा की बात लिखी है कि "कृष्णकी भी सुधर्मा सभा है तो तिस में क्या भोग नहीं भोगते होंगे?" उत्तर-सूत्रों में ऐसे नहीं कहा है कि कृष्ण की सभा में विषय सेवन नहीं होता है इस प्रकार लिखने से जेठे का यह अभिप्राय मालूम होता है कि ऐसी ऐसी कुयुक्तियां लिखके दाढ़ा की महत्वता घटा दे परन्तु पूर्वोक्त पाठ में सिद्धांतकारने खुलासा कहा है कि दाढ़ा की आशातना टालने के निमित्तही इंद्रादिक देवते सुधर्मा सभा में भोग नहीं भोगते है तामलि तापस ईशानेंद्र होके पहले प्रथम जिन प्रतिमा की पूजा करता हुआ सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ है इस बाबत में जेठा कुमति तिसकी करी पूजा को मिथ्यादृष्टि

पणे में ठहराता है सो मिथ्या है क्योंकि तिसने इन्द्रपणे पैदा होके जिन प्रतिमा की पूजा करके तत्कालही भगवंत महावीर स्वामी के समीप जाके प्रश्न किया और भगवंतने आराधक कहा.पूर्व भव में तो वो तापस था इसवास्ते इस भवमें उत्पन्न होके तत्काल करी जिन प्रतिमा की पूजा के कारण से ही आराधक कहा है ऐसे समझना * ॥

अभव्य कुलक में कहा है कि अभव्यका जीव इन्द्र न होवे इस बाबत जेठमल कहता है कि "इन्द्र से नवग्रैवेयक वाले अधिक ऋद्धि वाले है,अहमिंद्र हैं और वहां तक तो अभव्य जाता है तो इन्द्र न होवे तिसका क्या कारण?" उत्तर-यथा कोई शाहुकार बहुत धनाढ्य अर्थात् गाम के राजा से भी अधिक धनवान् होवे राजा से नहीं मिलता है तथैव अभव्यका जीव इन्द्र न होवे और ग्रैवेयक देवता होवे तिस में कोई बाधक नहीं,ऐसा स्पष्ट समझा जाता है जैसे देवता चयके एकेंद्रिय होता है परन्तु विकलेंद्रिय नहीं होता है(जोकि विकलेंद्रिय एकेंद्रिय से अधिक पुण्य वाले है) तथा एकेंद्रियसे निकलके एकावतारी होके मोक्ष जाते हैं परन्तु विकलेंद्रिय कि जिसकी पुण्याई एकेंद्रियसे अधिक गिनी जाती है तिस में से निकलके कोई भी जीव एकावतारी नहीं होता है, इसवास्ते जैसी जिसकी स्थिति बंधी हुई है तैसी तिसकी गति आगति होती है ॥

'अभव्यकुलक में इन्द्रका सामानिक देवता अभव्य न होवे ऐसा कहा है सो संगम अभव्य का जीव इन्द्रका सामानिक क्यों हुआ?" ऐसे जेठमल लिखता है तिसका उत्तर-जैन शास्त्र की रचना विचित्र प्रकार की है श्रीभगवती सूत्रके प्रथम शतकके दूसरे उद्देशेमें विराधित संयमी उत्कृष्ट सुधर्म देवलोक में जावे ऐसे कहा है और ज्ञाता सूत्रके सोलवें अध्ययन में विराधित संयमी सुकुमालिका ईशान् देवलोक में गई ऐसे कहा है. तथा श्रीउववाई सूत्र में तापस उत्कृष्ट ज्योतिषि तक जाते हैं ऐसे कहा है और भगवती सूत्र में तामलि तापस इशानेंद्र हुआ ऐसे कहा है, इत्यादिक बहुत चर्चा है परन्तु ग्रंथ वध जाने के कारण यहां नहीं लिखी है. जब सूत्रोंमें इस तरह है तो ग्रंथों में होवे इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, सुर्याभने प्रभुको ६ बोल पूछे इससे बारह बोल वाले सुर्याभ विमान में जाते हैं ऐसे जेठमलने ठहराया है परन्तु सो झूठ है, क्योंकि छद्मस्थ जीव अज्ञानता अथवा शंका से चाहो जैसा प्रश्न करे तो तिस में कोई आश्चर्य नहीं है, तथा "देवता संबंधी बारह बोल की पृच्छा सूत्र में है परन्तु मनुष्य संबंधी नहीं है इसवास्ते बारह बोलके देवता होते हैं" ऐसे

---

* "यह जिनपूजा थी,आराधक ईशान इन्द्रकहायाजी"ऐसा पूर्व महात्माओं का वचन भी है ॥

जेठने सिद्ध किया है तो मनुष्य संबंधी बारह बोलकी पृच्छा न होने से जेठे के लिखे मूजिब क्या मनुष्य बारह बोल के नहीं होते हैं ? परन्तु जेठमलने फकत जिन प्रतिमा के उत्थापन करने वास्ते तथा मंदमति जीवों को अपने फंदमें फसाने के के निमित्तही ऐसी मिथ्या कुयुक्तियां करी है ॥

और देवताकी करणी को जीत आचार ठहराके जेठमल तिस करणी को गिनती में से निकाल देना है अर्थात् तिसका कुछ भी फल नहीं ऐसे ठहराता है, परन्तु इसमें इतनी भी समझ नहीं, कि इद्र प्रमुख सम्यग्दृष्टि देवताओं का आचार व्यवहार कैसा है ? वो प्रभुके पांचों कल्याणकों में महोत्सव करते हैं, जिन प्रतिमा और जिन दाढ़ा की पूजा करते है, अठवें नंदीश्वरद्वीप में अठाई महोत्सव करते हैं मुनि महाराजा को वंदना करने वास्ते आते हैं, इत्यादि सम्यगदृष्टिकी समग्र करणी करते हैं परन्तु किसी जगह अन्य हरिहरादिक देवों को तथा मिथ्यात्वियों को नमस्कार करने वास्ते गये, पूजने वास्ते गये, तिनके गुरुओं को वंदना करी, तिनका महोत्सव किया इत्यादि कुछ भी नहीं कहा है, इसवास्ते तिनकी करी सर्व करणी सम्यग्दृष्टि की है, और महापुण्य प्राप्ति का कारण है, और जीत आचार से पुण्यबंध नहीं होता है ऐसे कहां कहा है ? ।

जेठमल केवलकल्याणक का महोत्सव जीत आचार में नहीं लिखता है, इसमे मालूम होता है कि तिसमें तो जेठमल पुण्य बंध समझाता है, परन्तु श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती सूत्र में तो पांचों ही कल्याणकों के महोत्सव करने वास्ते धर्म और जिन भक्ति जान के आते हैं ऐसे कहा है, इसवास्ते जेठेने जो अपने मन पसंद के लेख लिखे हैं सो सर्व मिथ्या है, श्रीजंबूद्वीप सूत्र के तीसरे अधिकार में कहा है किः—

अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं पूयणवत्तियं सक्कार सम्माण दंसण को उहल्ल अप्पे सक्कस्स वयणुयत्तमाणा अप्पे अणणमणु यत्तमाणा अप्पेजीयमेतं एवमादि ॥

अर्थ—कितेनक देवता वंदना करने वास्ते, कितनेक पूजा वास्ते, सत्कार सन्मान वास्ते, दर्शन वास्ते, कतुहल वास्ते, कितनेक शक्रेंद्रके कहने से, कोई कोई परस्पर एक दूसरे के कहने से और कितनेक हमारा यह उचित काम है ऐसा जानके आते हैं ॥

जेठमल लिखता है कि "श्रीअष्टापद के ऊपर ऋषभदेव स्वामी का निर्वाण हुआ तब इंद्रने एक स्तूभ कराया है" सो मिथ्या है क्योंकि श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ती सूत्र में अरिहंतका, गणधर का और शेष अणगार का ऐसे तीन स्तूभ इंद्रने कराये ऐसे कहा है ॥ यतः—

तएणं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया सव्व रयणामए महालए तओ चेइयथूभे करेहएगं भगवओ तित्थयरस्स चियगाए एगं गणहर चियगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चियगाए।

अर्थ—तद पीछे शक्र देवेंद्र देवता का राजा बहुते भुवनपति यावत् वैमानिक देवताओं प्रति यथायोग्य ऐसे कहता हुआ कि जलदी हे देवानुप्रयो! सर्व रत्नमये अत्यंतविस्तीर्ण ऐसे तीन चैत्यस्तूभ करो, एक भगवंत तीर्थंकर की चिता स्थान ऊपर, एक गणधर की चिता ऊपर, और एक अवशेष साधुओं की चिता ऊपर ॥

जेठमल "श्रावकने चैत्य नहीं कराये" ऐसे लिखता है, परन्तु श्रावकों के चैत्य कराये का अधिकार सूत्रों में बहुत ठिकाने है, जो पूर्व लिख आए हैं और आगे लिखेंगे ॥

जेठमल लिखता है कि "साक्षात् भगवंत को किसीने नमुथ्थुणं नहीं कहा है" उत्तर—सुर्याभ के साक्षात् भगवंत को नमुथ्थुणं कहने का खुलासा पाठ श्रीरायपसेणी सूत्र में है इसवास्ते जेठमलका यह लिखना भी केवल मिथ्या है।

श्रीभगवती सूत्र में देवता को 'नोधम्मिआ' कहा है ऐसे जेठमल लिखता है, उत्तर—उस ठिकाने देवता को चारित्र की अपेक्षा नोधम्मिआ कहा है जैसे इसी भगवती सूत्र के लब्धि उद्देशे में सम्यग्दृष्टि को चारित्र की अपेक्षा बाल कहा है, तैसे उस स्थल में देवता को चारित्र की अपेक्षा नोधम्मिआ कहा है; परन्तु इस से श्रुत और सम्यक्त्व की अपेक्षा देवता को नोधम्मिआ नहीं समझना, क्योंकि सम्यक्त्व की अपेक्षा तो देवताको संवरी कहा है, श्रीठाणांग सूत्र में सम्यक्त्व को संवर धर्म रूप कहा है और जिन प्रतिमा पूजन करना सो सम्यक्त्व की करणी है, ढूंढियो! जो जेठमल के लिखे मूजिब देवता को

नोभमिभआ गिनके तिनकी करणी अधर्म में कहोगे तो कोई देवता तीर्थंकरको साधु को और श्रावक को उपसर्ग और कोई तिनकी सेवा करे, उन दोनों को एक सरीखाफल होवे या जुदा जुदा ? जुदा जुदा ही होवे, तथा कोई शिष्य काल करके देवता हुआ होवे वो अपने गुरुको चारित्र से पतित हुआ देखके तिसको उपदेश देके शुद्ध रस्ते में ले आवे तो उस देवता को धर्मी कहोगे या अधर्मी ?

इस ऊपर से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ढूंढियों के गुरु काल करके उनके मत मूजिब देवता तो नहीं होने चाहियें, क्योंकि देवता में सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी ऐसी दो जातियां हैं; तिन मे जो सम्यक्त्वी होवे तो सुर्याभ प्रमुख की तरें जिन प्रतिमा और जिन दाढ़ा पूजे और मिथ्यात्वी कहते तो उन की जवान चले नहीं, मनुष्य भी न होवे, क्योंकि ढूंढिये उनको चारित्री मानते हैं और चारित्री काल करके मनुष्य होवे नहीं, सिद्धि भी पंचम काल में प्राप्त होवे नहीं, तो अब ऊपर कहीं, तीन गतियों के सिवाय फकत नरक और तिर्यंच ये दो गति रहीं इनमेंसे उनको कौनसी गति भला पसंद पड़ती होगी ?

श्रीठाणांग सूत्र के दश में ठाणे में दश प्रकार के धर्म कहे हैं, जेठमल लिखता है कि इन दश प्रकार के धर्म में से देवताका कौनसा धर्म है ? तिसका उत्तर-सम्यग्दृष्टि देवता को श्रुतधर्म भगवंत की आज्ञा मूजिब है ॥

और सुर्याभने धर्म व्यवसाये लेके प्रथम जिनदाढ़ा तथा जिन प्रतिमा पूजी है, जोकि तद पिछे अन्य चीजों की पूजा करी है परन्तु वहां प्रमाण नहीं किया है, नमुथ्थुणं नहीं कहा है, इसवास्ते तिस ने जिन प्रतिमा तथा जिनदाढ़ा की पूजा करी है सो सम्यग्दृष्टि पणे की समझनी ॥

श्रीठाणांग सूत्रके पांचवें ठाणेमें सम्यग्दृष्टि देवता के गुणग्राम करे तो सुलभ बोधि होवे ऐसे कहा है, यतः–

पंचहिं ठाणेहिं जीवो सुलहबो हित्ताए कम्मं पकरेंति तंजहा अरिहंताणं वण्णं वयमाणे जावविविक्कतववंभ चेराणं देवाणं वण्णं वयमाणे ॥

अब विचार करना चाहिये कि जिन के गुण ग्राम करने से जीव सुलभ बोधि होता है, तिनकी करी पूजादि धर्म करणी का मोक्ष फल क्यों न होवे ? जरूर ही होवे ॥

॥ इति ॥

(२२) चित्रामकी मूर्त्ति देखनी न चाहिये इसबाबत

श्री दशवैकालिक सूत्र के आठवें अध्ययन में कहा है कि भींत (दीवाल) के ऊपर स्त्रीकी मूर्त्ति लिखी हुई होवे सो साधु नहीं देखें क्योंकि तिसके देखने से विकार उत्पन्न होता है-यतः-

चित्तभित्तिंण णिज्जाए नारिं वासु अलंकियं भक्खरं पिव दट्ठुणं दिट्ठिंपडि समाहरे ॥ १ ॥

अर्थ-चित्रामकी भींत नहीं देखनी तिस पर स्त्री आदि होवें सो विकार पैदा करने का हेतु है इसवास्ते जैसे सूर्य सन्मुख देखके दृष्टि पीछे मोड़ लेते हैं तैसे ही चित्राम देखके दृष्टि मोड़ लेनी, जिस तरह चित्रामकी मूर्त्ति देखने से विकार उत्पन्न होता है इसी तरह जिन प्रतिमा के दर्शन करने से वैराग्य उत्पन्न होता है क्योंकि जिन बिंब निर्विकार का हेतु है,इस ऊपर जेठमल ढूंढक श्रीप्रश्नव्याकरण का पाठ लिखके तिसके अर्थ में लिखता है कि "जिन मूर्ति भी देखनी नहीं कही है" परन्तु यह तिसका लिखना मिथ्या है, क्योंकि श्रीप्रश्नव्याकरण में जिन प्रतिमा देखने का निषेध नहीं है, किन्तु जिस मूर्ति के देखने से विकार उत्पन्न होवे तिसके देखने का निषेध है पूर्वोक्त सूत्रार्थ में जेठमल चैत्य शब्दका अर्थ जिन प्रतिमा कहता है और प्रथम उसने लिखा है, "चैत्य शब्दका अर्थ जिन प्रतिमा नहीं होता है परन्तु साधु अथवा ज्ञान अर्थ होता है" अरे ढूंढियो ! विचार करो कि चैत्य शब्द का अर्थ जो साधु कहोगे तो तुम्हारे कहने मूजिब साधु के सन्मुख नहीं देखना, और ज्ञान कहोगे तो ज्ञान अर्थात् पुस्तक अथवा ज्ञानी के सन्मुख नहीं देखना ऐसे सिद्ध होवेगा ! और पूर्वोक्त पाठ में घर, तोरण, स्त्री प्रमुख के देखने की ना कही है तो ढूंढियो गोचरी करने को जाते हो वहां घर तोरण, स्त्री प्रमुख सर्व होते हैं तिनको न देखने वास्ते जैसे मुंहको पट्टी बांधते हो तैसे आखों को पट्टी क्यों नहीं बांधते हो ? जेठमल ने प्रत्येक बुद्धि प्रमुखकी हकीकत लिखी है तिस का प्रत्युत्तर १३ वें प्रश्नोत्तर में लिखा गया है. वहां से देखलेना ॥

जेठमल लिखता है कि "जिन प्रतिमा को देखके कोई प्रतिबोध नहीं पाया उत्तर-श्री ऋषभदेव की प्रतिमाको देखके आर्द्र कुमार प्रतिबोध हुआ * और

---

* यदुक्तं श्रीसूत्रकृतांगे द्वितीयश्रुतस्कंधे षष्ठाध्ययने ।

श्रीदशवैकालिक सूत्र के कर्त्ता श्रीशय्यंभवसूरि शांतिनाथजी की प्रतिमाको देखके प्रतिबोध हुए। यतः—

सिज्जंभवं गणहरंजिण पडिमादंसणे णपडिबुद्धं

जेकर पूर्णमति ढूंढिये ऐसे कहें कि 'यह पाठ तो निर्युक्ति का है और'

पीतीय दोगह दूओ पुच्छणमभयस्स पत्थवेसोउ ॥)
तेणावि सम्मादिट्ठित्ति होज्जपडिमारहं मिगया ।
दट्ठुं सबुद्धो रक्खिओय ॥

व्याख्या—अन्यदार्द्रकापित्रा जनहस्तेन राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितं आर्द्रककुमारेण श्रेणिकसुतायाभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं जनो राजगृहेगत्वा श्रेणिकराज्ञःप्रभृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा आर्द्रक प्राहितानि प्राभृतानि चाभयकुमाराय दत्तवान् कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि अभयेनाचिंतितं नूनमसौ भव्यः स्यादासन्नसिद्धि को यो मया सार्द्धं प्रीति मिच्छतीति ततोऽभयन प्रथम जिनप्रतिमा बहुप्राभृत युताऽऽर्द्रककुमाराय प्रहिता इदं प्राभृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य सोप्यार्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्मरण मुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनःअभयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति पित्राज्ञातं माक्वचिदसौ यास्यादिति पंचशत सुभटैर्नित्यं रक्ष्यते इत्यादि ॥

भावार्थ-एक दिन आर्द्रकुमारके पिताने दूत के हाथ राजगृह नगरी में श्रे-

निर्युक्ति हम नहीं मानते हैं" तिनको कहना चाहिये कि श्रीसमवायांगसूत्र, श्रीविवाह प्रज्ञप्ती(भगवती)सूत्र श्रीनंदिसूत्र तथा श्रीअनुयोगद्वार सूत्र के मूल पाठ में निर्युक्ति माननी कही है और तुम नहीं मानते हो तिसका क्या कारण ? जेकर जैनमत के शास्त्रों को नहीं मानते हो तो फेर नीच लोकों के पंथको मानो क्योंकि तुमारा कितनाक आचार व्यवहार उनके साथ मिलता है ॥ इति॥

---

(२३) जिनमंदिर कराने से तथा जिन प्रतिमाभराने से बारवें देवलोक जावे इस बाबत ।

श्रीमहानिशीथ सूत्र में कहा है कि जिन मंदिर बनवाने से सम्यग्दृष्टि श्रावक यावत् बारवें देवलोक तक जावे–यतः

णिक राजाको प्राभृत (नजर-तोफा) भेजा, आर्द्रकुमार ने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के तांई स्नेह करने वास्ते उसी दूत के हाथ प्राभृत भेजा, दूत ने राजगृह में जाकर श्रेणिक राजाको प्राभृत दिये, राजा ने भी दूतका यथायोग्य सन्मान किया. और आर्द्र कुमार के भेजे प्राभृत अभय कुमार को दिये तथा स्नेह पैदा करने के वचन कहे. तब अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय यह भव्य है निकट मोक्षगामी है,जो मेरे साथ प्रीती इच्छता है। तब अभयकुमार ने बहुत प्राभृत सहित प्रथम जिन श्रीऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा आर्द्रकुमार के तांई भेजी और दूतको कहा कि यह प्राभृत आर्द्रकुमार को एकांत में दिखाना,दूतने भी आर्द्रकपुर में जाके यथोक्त कथन करके प्राभृत दे दिया। प्रतिमाको देखते हुए आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ. धर्म में मन प्रतिबोध हुआ, अभयकुमार को याद करता हुआ वैराग्य से काम भोगों में आसक्त नहीं होता हुआ आर्द्रकुमार रहता है. पिताने जाना कधी यह कहीं चला न जावे इस वास्ते पांच सौ सुभटों करके पिता हमेशां उसकी रक्षा करता है इत्यादि॥

यह कथन श्रीसूयगडांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के छट्टे अध्ययन में है ! ढूंढिये इस ठिकाने कहते हैं कि अभयकुमार को प्रतिमा नहीं भेजी है, मुहपत्ती भेजी है तो हम पूछते हैं कि यह पाठ किस पुराण में है ? क्योंकि जैनमत के किसी भी शास्त्र में ऐसा कथन नहीं है। जैनमत के शास्त्रों में तो पूर्वोक्त श्री ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा भेजने का ही अधिकार है॥

काउंपि जिणायणेहिं मंडिअं सव्वमेयणीवट्टं दाणाइच उक्केणं सढ्ढो गच्छेज्ज अच्चुअंजाव ॥

इसको असत्य ठहराने वास्ते जेठमल ने लिखा है "जिन मंदिर जिन प्रतिमा करावें सो मंदबुद्धिया दक्षिण दिशाका नारकी होवे" उत्तर-यह लिखना महामिथ्या है। क्योंकि ऐसा पाठ जैनमत के किसी भी शास्त्र में नहीं है तथा जेठमलने उत्सूत्र लिखते हुए जरा भी विचार नहीं करा है जेकर जेठमल ढूंढक वर्त्तमान समय में होता तो पंडितों की सभा में चर्चा करके उसका मुंहकाला कराके उस के मुख में जरूर शक्कर देते! क्योंकि झूठ लिखने वाले को यही दंड होना चाहिये ॥

जेठमल लिखता है कि "श्रेणिक राजा को महावीर स्वामी ने कहा कि कालकसूरिया भैंसे न मारे, कपिलादासी दान देवे, पुनीया श्रावक की सामायिक मूल लेवे अथवा तू नवकारसी मात्र पच्चक्खाण करे तो तू नरक में न जावे, यह चार बातें कहीं परन्तु जिन पूजा करे तो नरक में न जावे ऐसे नहीं कहा" उत्तर-ढूंढिये जितने शास्त्र मानते हैं तिनमें यह कथन बिलकुल नहीं है तो भी इस बातका सम्पूर्ण खुलासा दशमें प्रश्नोत्तर में हमने लिख दिया है ॥

जेठमल ने श्रीप्रश्नव्याकरण का पाठ लिखा है जिस से तो जितने ढूंढिये ढूंढनियां, और उन के सेवक हैं वे सर्व नरक में जावेंगे ऐसे सिद्ध होता है। क्योंकि श्रीप्रश्नव्याकरण के पूर्वोक्त पाठ में लिखा है कि जो घर हाट हवेली, चौंतरा प्रमुख बनावे सो मंद बुद्धिया और मरके नरक में जावे। सो ढूंढिये ऐसे बहुत काम करते हैं। तथा ढूंढक साधु साध्वी, धर्म के वास्ते विहार करते हैं रस्ते में नदी उतर ते हुए त्रस स्थावर की [illegible] करते हैं, पडिलेहण में वायुकाय हणते हैं नाक के तथा गुदा के पवनसे वायु काय मारते हैं सदा मुंह बांधने से असंख्याते सन्मूर्छिम जीव मारते हैं मेघ बरसते में संचित पानी में लघु नीति तथा बड़ी नीति परठवते हैं जिस से असंख्याते अपकायको मारते हैं,* इत्यादि सैंकड़ों प्रकार से हिंसा करते हैं इस वास्ते सो मंदबुद्धि यही हैं, और जेठ के लिखे मूजिब मरके नरक में ही जाने वाले हैं इस अपेक्षा तो क्या जाने जेठे का यह लिखना सत्य भी हो जावे? क्योंकि ढुंढकमत दुर्गति का

---

* कितनेक जूं लीखा प्रमुख को कपड़े की टाकी में डाल के संथारा पच्चक्खाते हैं अर्थात मारते हैं, तथा कितनेक खूंरुकोईटों से पीसते हैं, चूरणाये मारते हैं।

कारण तो प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है ॥

और जेठमल ने 'दक्षिण दिशा का नारकी होवे" ऐसे लिखा है परन्तु पाठ में दक्षिण दिशा का नाम भी नहीं है तो उसने यह कहां से लिखा मालूम होता है कि कदापि अपने ही उत्सूत्र भाषण रूप दोष से अपनी वैसी गति होनेका संभव उसको मालूम हुआ होगा और इसीवास्ते ऐसा लिखा होगा ! और शुद्ध मार्ग गवेषक आत्मार्थी जीवों को तो इस स्थान में इतना ही समझना का है कि श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र का पूर्वोक्त पाठ मिथ्यादृष्टि अनार्यों की अपेक्षा है, क्योंकि इस पाठ के साथही इस कार्य के अधिकारी माछी, धीवर, कोली, भील, तस्कर, प्रमुखही कहे हैं, और विचार करोकि जो ऐसे न होवें तो कोई भी जीव नरकविना अन्य गति में न जावे क्योंकि प्राय: गृहस्थी सर्व जीवों को घर दुकान वगैरह करना पड़ता है, श्री उपासकदशांग सूत्र में आनंद प्रमुख श्रावकों के घर, हाट, खेत, गड्डे, जहाज गोकुल, भट्ठियां प्रमुख आरंभ का अधिकार वर्णन किया है, तथापि वो काल करके देवलोक में गये हैं, इसवास्ते अरे मूर्ख ढूंढियो ? जिन मंदिर कराने से नरक में जावे ऐसे कहते हो सो तुमारी दुष्टबुद्धि का प्रभाव है और इसवास्ते सूत्रकारका गंभीर आशय तुम बेगुरे नहीं समझ सके हो ॥

जेठमल ने लिखा है कि "जैन धर्मी आरंभ में धर्म मानते हैं" उत्तर-जैन धर्मी आरंभ को धर्म नहीं मानते हैं, परन्तु जिनाज्ञा तथा जिन भक्ति में धर्म और उस से महापुण्य प्राप्ति यावत् मोक्ष फल श्रीरायपसेणी सूत्र के कथनानुसार मानते हैं ॥

जेठमल जिन मंदिर और जिन प्रतिमा करानें बाबत इस प्रश्नोत्तर में लिखता है परन्तु तिसका प्रत्युत्तर प्रथम दो तीन वार लिख चुके हैं ॥

जेठमल ने "देवकुल" शब्द का अर्थ सिद्धायतन करा है, परन्तु देवकुल शब्द अन्य तीर्थि देवके मंदिर में बोला जाता है, जिनमंदिर के बदले देवकुल शब्द लौकिक में नहीं बोला जाता है. और सूत्रकार ने किसी स्थल में भी नहीं कहा है, सूत्रकार ने तो सूत्रों में जिनमंदिर के बदले सिद्धायतन, जिनघर, अथवा चैत्य कहा है, तोभी जेठेने खोटी खोटी कुयुक्तियां लिख के स्वमति कल्पनासे जो मनमें आया सो लिख मारा है सो उस के मिथ्यात्व के उदयका प्रभाव है, सिद्धायतन शब्द सिद्ध प्रतिमा के घर आश्री है. और जिन घर शब्द अरिहंत के मंदिर आश्री द्रौपदी के आलावे में कहा है, इस वास्ते इन दोनों शब्दों में कुछ भी प्रतिकूल भाव नहीं है, भावार्थ में तो दोनों एकही अर्थ को प्रकाशते हैं ॥

॥ इति ॥

(२४) साधु जिन प्रतिमा की वेयावच्चकरे ।

श्रीप्रश्न व्याकरण सूत्र के तीसरे संवर द्वार में साधु पंदरां बोल की वयावच्च करे ऐसा कथन है तिन में पंदरवां बोल जिन प्रतिमा का है तथापि जेठे निन्हवने चउदां बोल ठहराके पंदरवें बोल का अर्थ विपरीत किया है इस वास्ते सो सूत्रपाठ अर्थ सहित लिखते हैं ॥ यतः-

अह केरिसए पुणा आराहए वयमिणं जेसे उवही भत्त पाणे संगहदाण कुसले अच्चंत वाल,१, दुब्बल,२, गिला ण,३, वुड्ढ,४, खवगे, ५, पवत्त, ६, आयरिय.७, उवज्झाए, ८, सेहे,९, साहम्मिए,१०, तवस्सी,११, कुल, १२, गण,१३, संघ,१४, चेइयट्ठे, १५, निज्जरट्ठी वेयावच्चे अणिस्सियं दसविहं वहुविहं पकरेइ ॥

अर्थ-शिष्य पूछता है "हे भगवन्! कैसा साधु तीसरा व्रत आराधे?" गुरु कहते हैं ' जो साधु वस्त्र तथा भातपाणी यथोक्त विधि से लेना और यथोक्त विधिसे आचार्यादिकको देना तिन में कुशल होवे सो साधु तीसरा व्रत आराधे। अत्यंत बाल (१) शक्ति हीन (२), रोगी (३) वृद्ध (४) मास क्षपणादि करने वाला (५) प्रवर्त्तक (६) आचार्य (७) उपाध्याय (८) नवा दिक्षित शिष्य (९) साधर्मिक (१०) तपस्वी (११) कुलचांद्रादिक (१२) गण कुलका समुदाय कौटिकादिक (१३) संघ कुलगणका समुदाय चतुर्विध संघ (१४) और चैत्य जिन प्रतिमा इनका जो अर्थ तिन में निर्जराका अर्थी साधु कर्म क्षय वांछता हुआ यश मानादिककी अपेक्षा विना दश प्रकार से तथा बहु विधसे वेयावच्च करे सो साधु तीसरा व्रत आराधे। इस बाबत जेठमल भातपाणी तथा उपधि देनी तिसको ही वेयावच्च कहता है सो मिथ्या है। क्योंकि बाल,दुर्बल वृद्ध. तपस्वी प्रमुख में तो भातपाणी का वेयावच्च संभव हो सक्ता है परन्तु कुल, गण, और साधु, साध्वी, श्राविकारूप चतुर्विध संघ. तथा चैत्य जो अरिहंत की प्रतिमा इनको भातपाणी देनेसे ही वेयावच्च नहीं; किंतु वेयावच्च के अन्य बहु प्रकार हैं जैसे कुल, गण, संघ तथा अरिहंत की प्रतिमा इनका कोई अवर्णवाद बोले,

इनकी हीलना तथा विराधना करे तिस को उपदेशादिक देके कुल गण प्रमुख की विराधना टाले और इनके (कुल गण प्रमुख के) प्रत्यनीक का अनेक प्रकार से निवारण करे सो भी वेयावच्च में ही शामिल है तैसे अन्य भी वेयावच्च के बहुत प्रकार है * ॥

श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में हरिकेशी मुनिके अध्यन में लिखा है कि "जक्खाहु वेयावडियं करोति" मतलब श्रीहरिकेशी मुनि की वेयावच्च करने वाले यक्ष देवताने मुनिको उपसर्ग करने वाले ब्राह्मणों के पुत्रों को जब मारा और ब्राह्मण हरिकेशी मुनि के समीप आकर क्षमा मांगने लगा तब श्रीहरिकेशी मुनिने कहा कि "मैंने कुछ नहीं किया है परन्तु यक्षमेरी वेयावच्च करता है उस से तुमारे पुत्र मारे गये हैं।" देखो कि यक्ष ने हरिकेशी मुनिकी वेयावच्च किस रीतिसे करी है ? ढूंढियों ! जो अन्नपाणी से ही वेयावच्च होती है ऐसे कहोगे तो देवपिंड तो सर्वथा साधुको अकल्पनिक है और इस ठिकाने तो प्रत्यक्ष रीति से हरिकेशी मुनिके प्रत्यनीक ब्राह्मणके पुत्रों को यक्षने मारा तिस बाबत हरिकेशीमुनिने कहा कि मेरी वेयावच्च करने वाले यक्षने किया है तो यक्षने तो ब्राह्मणके पुत्रों की हिंसा करी और मुनिने तो वेयावच्च कही; और मुनिका वचन असत्य होवे नहीं। तथा शास्त्रकार भी असत्य न लिखे। इसवास्ते अन्नपाणी उपाधि प्रमुख देना ही वेयावच्च ऐसे एकांत कहते हो सो मिथ्या है। पुर्वोक्त पाठ में खुलासा पंद्रां बोल हैं और पंद्रां बोलों के साथ जोड़ने का अर्थ शब्द पंदरवें बोल के अंत में है, तथापि जेठमलने चौदह बोल ठहराए हैं और "चेइयट्ठे" अर्थात् ज्ञान के अर्थे वेयावच्च करे ऐसे लिखा है सो दोनों ही मिथ्या हैं क्योंकि ज्ञान का नाम चैत्य किसी भी शास्त्रों में या किसी भी कोष में नहीं है। तथा सूत्रों में जहां जहां ज्ञानका आधिकार है वहां वहां सर्वत्र "नाण" शब्द लिखा है परन्तु "चेइय" शब्द नहीं लिखा है इसवास्ते जेठमल का किया अर्थ खोटा है, और धर्मशी नामा ढूंढकने प्रश्नव्याकरण के टब्बे में इसी चैत्य शब्द का साधु लिखा है इस से मालूम होता है कि इन मूढ़मति ढूंढकों का आपस में भी मेल नहीं है परन्तु इस में कुछ आश्चर्य नहीं. मिथ्यादृष्टियों का यही लक्षण है। और "चेइयट्ठे" तथा "निज्जरट्ठी" इन दोनों शब्दों का एक सरीखा अर्थात् ज्ञानके अर्थे और निर्जरा के अर्थे ऐसा अर्थ जेठेने लिखा है, परन्तु सूत्राक्षर देखनेसे मालूम होगा कि पाठ के अक्षर और लगमात्र अलग अलग और तहर

---

* मूलसूत्र कारने भी "दसविहं बहुविहं पकरेइ" दश प्रकार से तथा बहु विधसे वेयावच्च करे, ऐसे फरमा है। इसवास्ते वेयावच्च कुछ अन्नपाणी वस्त्र पात्रादिके देने का ही नाम नहीं है प्रत्यनीक का निवारणा भी वेयावच्च ही है।

के हैं, एकके अंतमें "अट्ठे" अर्थात् अर्थ है सो चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में निपात है, तिसका अत्यंत बालके अर्थे, दुर्बल के अर्थे ग्लानके अर्थे, यावत् जिन प्रतिमा के अर्थे ऐसा अर्थ होता है; दूसरे पदके अंत में "अट्ठी" अर्थात् 'अर्थी' है सो प्रथमा विभक्ति है तिसका अर्थ "निर्जराका अर्थी जो साधु सो वेयावच्च करे ऐसा होता है परन्तु जेठे ने सत्य अर्थ छोड़के दोनो शब्दों का एक सरीखा अर्थ लिखा है इसलिये मालूम होता है कि जेठको व्याकरण का ज्ञान बिल्कुल नहीं था तथा जैसा सूत्रपाठ है वैसा उसको नहीं दीखा है, इस से यह भी मालूम होता है कि उस के नेत्रोंमें भी कुछक आवरण था ॥

श्रीठाणांगसूत्र में दश प्रकारकी वेयावच्च ही है, जिसका समावेश पूर्वोक्त पंदरह बोलो में हो गया है, इसवास्ते तिन दश भेदोंकी बाबत जेठकी लिखी कुयुक्ति खोटी है ॥

प्रश्नके अंत में जेठ निन्हवने लिखा है कि 'उपाधि और अन्न पाणी से ही वेयावच्च करनी" यह समझ जेठे ढूंढककी अकल विना की है, क्योंकि जो इन तीन भेद से ही वेयावच्च करनी होवे तो चतुर्विध संघकी वेयावच्च करनेका भी पूर्वोक्त पाठ में कहा है, और संघमें तो श्रावक श्राविका भी शामिल हैं तो तिनकी वेयावच्च साधु किस तरह करे ? जो आहार तथा उपधिसे करे ऐसे ढूंढक कहते हैं तो क्या आप भिक्षा लाकर श्रावक श्राविकाको देवेंगे ? नहीं क्योंकि ऐसे करना तिनका आचार नहीं है । तथा श्रावक श्राविकातो देने वाले हैं, लेना उनका आचार ही नहीं है, इस वास्ते अरे ढूंढको ! जवाब दो कि तीसरे व्रतको आराधने के उत्साह साधु ने चतुर्विध संघकी वेयावच्च किस रीति से करनी ? आखीर लिखने का यह है कि वेयावच्च के अनेक प्रकार है जिसकी जैसी संभवहो तैसातिसकी वेयावच्च जाननी । इसलिये साधु जिन प्रतिमा की वेयावच्च करे सो बात सम्पूर्ण रीतिसे सिद्ध होती है। ढूंढिये इस मूजिब नहीं मानते है इससे तिनको निविड मिथ्यात्वका उदय मालूम होता है ॥ ॥ इति ॥

(२५) श्रीनंदिसूत्र में सर्व सूत्रोंकी नोंध है ॥

बारह अंगके नाम ।

(१) आचारांग, (२) सुयगडांग, (३) ठाणांग, (४) समवायांग, (५) भगवती, (६) ज्ञाता, (७) उपासकदशांग, (८) अंतगड, (९) अनुत्तरोव,

वाइ, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाक, (१२) दृष्टिवाद ॥

(१) आवश्यकसूत्र ।

[२९] उत्कालिक सूत्र के नाम ।

[१] दशवैकालिक, [२] कप्पियाकप्पिय, [३] चुल्लकल्प, [४] महाकल्प, [५]उववाइ, [६] रायपसेणी, [७] जीवाभिगम. [८] पन्नवणा. [९] महापन्नवणा [१०] पमायप्पमाय, [११] नंदि, [१२] अनुयोगद्वार, [१३] देवेंद्रस्तव. [१४] तन्दुलवेयालिये,[१५] चंद्रविजय [१६] सूर्यप्रज्ञप्ति. [१७] पोरुषी मंडल,[१८] मंडल प्रवेश, [१९] विद्याचारण विनिश्चय [२०] गणिविद्या,[२१] ध्यानविभक्ति.[२२] मरणविभक्ति, [२३] आयविसोही, [२४] वीतरागश्रुत. [२५] संलेखनाश्रुत [२६] विहार कल्प, [७] चरणविधि, [२८] अउरपच्चक्खाण, [९] महापच्चक्खाण ॥

एवमाइ शब्द से श्रीचउसरणसूत्र तथा श्रीभक्तपरिज्ञा सूत्र प्रमुख चउदां हजार में से कितनेक उत्कालिकसूत्र समझने ॥

(३१) कालिक सूत्रके नाम ।

(१ उत्तराध्ययन, (२) दशाश्रुतस्कंध. (३) कल्पसूत्र, (४) व्यवहारसूत्र (५) निशीथ (६) महानिशीथ, (७) ऋषिभाषित. (८) जंबूद्वीपपन्नत्ति (९) द्वीपसागरपन्नत्ति. (१०) चंदपन्नत्ति. (११) खुड्डियाविमाणपविभत्ति, (१२) महल्लिया विमाणपविभत्ति, (१३) अंगचूलिया. (१४) वग्गचूलिया, (१५) विवाहचूलिया, (१६) अरुणोवाइ (१७)वरुणोववाइ.(१८)गरुडोववाइ,(१९) धरणोववाइ,(२०) वेस्समणोववाइ, (२१) वेलंधरोववाइ (२२) देविंदोववाइ. (२३) उत्थानश्रुत, (२४) समुत्थानश्रुत, (२५) नागपरियावलिया. (२६) निर्यावलिया, (२७) कप्पिया, (२८) कप्पवडंसिया, (२९) पुप्फिया. (३०) पुप्फचूलिया, (३१) वन्हीदशा ॥

एवमाइ शब्दसे ज्योतिष्करंडसूत्र प्रमुख चौदहहजार में से कितनेक कालिकसूत्र समझने ।

कुल ७३ के नाम लिख के एवमाइ शब्दसे आदि लेके १४००० प्रकीर्णकसूत्र कहे हैं, तिनमें से जो व्यवच्छेद होगये हैं सो तो भरत खंड में नहीं हैं। और शेष जो हैं सो सर्व आगम नाम से कहे जाते हैं। तिनमें से कितनेक पाटण, खंबायत (Cambay) जैसलमेर प्रमुख नगरों के प्राचीन भंडारों में ताड़पत्रों ऊपर लिखे हुए विद्यमान हैं ॥

जेठमल लिखता है कि "बत्तीस उपरांत सूत्र व्यवच्छेद हो गए और हाल में जो है सो नये बनाये हैं" उत्तर-जेठमलका यह लिखना झूठ है। यदि यह नये बनाये गये होंगे तो बत्तीस सूत्र भी नये बनाये सिद्ध होंगे, क्योंकि बत्तीस सूत्र वोही रहे और दूसरे नये बनाये गये इस में कोई प्रमाण नहीं है, और जेठेने इस बाबत कोई भी प्रमाण नहीं दिया है इसवास्ते उसका लिखना मिथ्या है।

बत्तीस उपरांत (४५ सूत्रांतर्गत (१३) सूत्रोंमें से आठ सूत्रोंके नाम पूर्वोक्त नंदि सूत्रके पाठमें है तथापि जेठा तिनको आचार्यके बनाये कहता है सो मिथ्या है।

तथा श्रीमहानिशीथसूत्र आठ आचार्योंने मिलके रचा कहता है, सो भी मिथ्या है, क्योंकि आचार्योंने एकत्र होकर यह सूत्र लिखा है परन्तु नया रचा नहीं है। ४५ बिचले पांचसूत्रों के नाम पूर्वोक्त पाठ में नहीं हैं, परन्तु सो आदि शब्द से जानने के है इसवास्ते इस में कुछ भी बाधक नहीं है॥

और कितनेक सूत्र जिन में से कितनेक ढूंढिये नहीं मानते हैं और कितने क मानते हैं तिन में भी आचार्यों के नाम है, सो "सूत्रकर्त्ताके नाम हैं" ऐसे जेठमल ठहराता है, परन्तु सो मिथ्या है, क्योंकि वो नाम बनाने वालेका नहीं है; जेकर किसी में नाम होगा तो वो वीरभद्रवत् श्रीमहावीरस्वामी के शिष्य का होगा जैसे लघु निशीथ में विशाखगणिका नाम है और श्रीपन्नवणासूत्र में श्यामाचार्यका नाम है॥

जेठमल लिखता है कि "नंदिसूत्र चौथे आरेका बना हुआ है" सो मिथ्या है, क्योंकि श्रीनंदिसूत्र तो श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमा- श्रमण का बनाया हुआ है और तिस के मूल पाठ में वज्रस्वामी, स्थूलभद्र चाणाक्यादिक पांचवें आरे में हुए पुरुषोंके नाम है॥

श्रीआवश्यक तथा नंदिसूत्र में कहा है कि द्वादशांगी गणधर महाराजने रची सो रचना अति कठन मालूम होने से भव्य जीवों के बोध प्राप्तिके निमित्त श्रीआर्यरक्षितसूरि तथा स्कंदिलाचार्य ने हाल प्रवर्त्तन हैं, इसमूजिब सुगम रचना युक्त गुंथन किया इसवास्ते कुल सूत्र द्वादशांगी के आधार से आचार्यों ने गुंथन किये है ऐसे समझना॥

मूढमति ढूंढिये मिथ्यात्व के उदय से बत्तीस सूत्र ही मानकर अन्य सूत्र गणधर कृत नहीं है ऐसे ठहराके तिनका निषेध करते है, परन्तु इसमूजिब निषेध करने का तिनका असली सबब यह है कि अन्य सूत्रों में जिन प्रतिमा संबंधी ऐसे ऐसे खुलासा पाठ है कि जिससे ढूंढक मतका जड़मूल से निकंद

न होजाता है जिस की सिद्धि में दृष्टांत तरीके श्रीमहाकल्पसूत्रका पाठ लिखते हैं-यतः-

से भयवं तहारूवं समणंवा माहणंवा चेइय घरे गच्छेज्जा ? हंता गोयमा ! दिणे दिणे गच्छेज्जा । से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा ? गोयमा ? पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जातओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा से भयवं समणो वासगस्स पोसहसालाए पोसहिए पोसह बंभयारी किं जिणहरं गच्छेज्जा ? हंता गोयमा ? गच्छेज्जा । से भयवं केणट्ठेणं गच्छेज्जा ? गोयमा ? णाण दंसण चरणट्ठेयाए गच्छेज्जा । जे केइ पोसहसालाए पोसह बंभयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ पायच्छित्तं हवेज्जा गोयमा । जहा साहू तहा भाणियव्वं छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा ।

अर्थ- 'अथ हे भगवन् ! तथारूप श्रमण अथवा माहण तपस्वी चैत्यघर यानि जिनमंदिर जावे?" भगवंत कहते हैं 'हे गौतम? रोज रोज अर्थात् हमेशां जावे" गौतम स्वामी पूछते हैं "हे भगवन् ? जिस दिन न जावे तो उस दिन क्या प्रायश्चित्त होवे ? " भगवंत कहते हैं 'हे गौतम प्रमादके वशसे तथा रूप साधु अथवा तपस्वी जो जिनगृह न जावे तो छठ अर्थात् बेला दो उपवास, अथवा दुवालस अर्थात् पांच उपवास (व्रत का प्रायश्चित्त होवे" गौतमस्वामी पूछते हैं 'हे भगवन् ! श्रमणोपासक श्रावक पोषधशाला में पोषध में रहा हुआ पोषध ब्रह्मचारी क्या जिनमंदिर में जावे ? " भगवंत कहते हैं 'हां हे गौतम ! जावे" गौतमस्वामी पूछते हैं "हे भगवन् किसवास्ते जावे ?" भगवंत कहते हैं 'हे गौतम ज्ञानदर्शन चारित्रार्थे जावे ?' गौतमस्वामी पूछते हैं "जोकोई पोषधशाला में रहा हुआ पोषध ब्रह्मचारी श्रावक जिनमंदिर में न जावे तो क्या प्रायश्चित्त होवे ? " भगवंत कहते हैं "हे गौतम ! जैसे साधुको प्रायश्चित्त तैसे श्रावकको प्राश्चित्त जानना, छठ्ठ अथवा दुवालसका प्रायश्चित्त होवे" पूर्वोक्त पाठ श्री-

महाकल्पसूत्र में हैं,* और महा कल्पसूत्रका नाम पूर्वोक्त नंदिसूत्र के पाठ में है। जेठे निन्हवने यह पाठ जीतकल्पसुत्रका है ऐसे लिखा है परन्तु जेठेका यह लिखनामिथ्या है. क्योंकि जीतकल्पसुत्र में ऐसा पाठ नहीं है ॥

जेठमल लिखता है कि "श्रावक प्रमाद के वशसे भगवंतको और साधुको

---

*तथा तुंगीया, सावत्थी, आलंभिका प्रमुख नगरियों के जो शंखजी, शतकजी पुष्कलीजी, आनंद और कामदेवादिक जैनी श्रावक थे वे सर्व प्रतिदिन तीन वक्त श्री जिनप्रतिमा की पूजा करते थे। तथा जो जिनपूजा करें सो सम्यक्त्वी और जो न करे सो मिथ्यात्वी जानना इत्यादि कथन भी इसी सूत्र में है–तथाच तत्पाठः–

"तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव तुंगीया नयरीए बहवे समणोवासगा परिवसंति संखे सयए सियप्पवाले रिसीदत्ते दमगे पुक्खली निबद्धे सुप्पइठ्ठे भाणुदत्ते सोमिले नरवम्मे आणंद कामदेवाइणो अन्नत्थगामे परिवसंति अड्ढा दित्ता विच्छिन्न विपुल वाहणा जाव लद्धट्ठा गाहियठ्ठा चाउद्दसठ्ठ मुदिठ्ठ पुण्णमासिणी सुपडिपुण्णं पोसह पालेमाणा निग्गंथाण निग्गंथिणाय फासु एसणिज्जेणं असणादि ४ पडिलाभे माणा चेइयालएसु तिसंझं चंदणपुप्फधूववत्थाइहिं अच्चणं कुणमाणा जाव जिणहरे विहरंति से तेणठ्ठेणं गोयमा जो जिण पडिमं पूएइ सो नरो सम्मदिठ्ठि जाणियव्वो जो जिणपडिमं न पूएइ सो मिच्छादिठ्ठि जाणियव्वो मिच्छ-दिठ्ठिस्सनाणं न हवइ चरणं न हवइ मुक्खं न हवइ सम्मदिठ्ठिस्सनाणं चरणं मुक्खं च हवइ से तेणठ्ठेणं गोयमा सम्म दिठ्ठि सढ्ढेहिं जिणपडिमाणं सुगंध पुप्फचंदण विलेवणेहिं पूया कायव्वा" ॥ इति

वंदना न कर सके तो तिसका पश्चात्ताप करे परन्तु श्रावको प्रायश्चित न होवे "उत्तर-पोसहवाले श्रावककी क्रिया प्रायः साधु सदृश है इसवास्ते जैसे साधु को प्रायश्चित्त होवे तैसे श्रावकको भी होवे ॥

जेठमल लिखता है कि "बृहत्कल्प, व्यवहार, निशीथ, तथा आचारांग में प्रायश्चित्त के अधिकार में मंदिर न जानेका प्रायश्चित्त नहीं कहा है" उत्तर-कोई अधिकार एकसूत्रमें होता है, और कोई अधिकार अन्य सूत्र में होता है, सर्व अधिकार एकही सुत्र में नहीं होते हैं। जैसे निशीथ, महानिशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार; जीतकल्प प्रमुख सूत्रों मे प्रायश्चित्तका अधिकार है,तैसे श्रीमहा कल्पसूत्र में भी प्रायश्चित्त का अधिकार है। सर्व सूत्रों में जुदा जुदा अधिकार है, इसवास्ते मंदिर न जानेके प्रायश्चित्त का अधिकार श्रीमहाकल्पसूत्र में है, और अन्य में नहीं है इतनेमात्र से जेठे की करी कुयुक्ति कुछ सच्ची नहीं हो सक्ती है। श्रीहरिभद्रसुरि जोकि जिनशासन को दीपानेवाले महाधुरंधर पंडित १४४४ ग्रंथ के कर्त्ता थे तिनकी जेठमलने व्यर्थ निंद्याकरी है सो जेठमलकी मूर्खताकी निशानी है ॥

अभव्यकुलक में अभव्यजीव जिस जिस ठिकाने पैदा नहीं होसका है सो दिखाया है इसबाबत जेठमल लिखता है कि "भव्य अभव्य सर्व जीव कुल ठिकाने पैदा होचुके ऐसे सूत्र में कहा है इस वास्ते अभव्यकुलक सूत्रोंसे विरुद्ध है" जेठे ढूंढकका यह लिखना महामिथ्यादृष्टि पणेका सूचक है यद्यपि शास्त्रों में ऐसा कथन है कि-

न सा जाइ न सा जोणी नतं ठाणं नतं कुलं।
न जाया न मुया जत्थ सव्वे जीवा अणं तसो ॥ १

परन्तु यह सामान्य वचन है। विचार करो कि मरुदेवी माताने कितने दंडक भोगे हैं ? सो तो निगोद में से निकलके प्रत्येक में आकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष में चली गई है, और शास्त्रकार तो सर्व जीव सर्व ठिकाणे सर्व जातिपणे अनंतीवार उत्पन्न हुए कहते हैं। जेकर जेठमल ढूंढक इस पाठको एकांत मानता है तो कोई भी जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान तक सर्व जाति सर्व कुल भोगे विना मोक्ष में नहीं जाना चाहिये और सूत्रों में तो ऐसे बहुत जीवों का अधिकार है जो कि अनुत्तरविमान में गये विना सिद्धपद को प्राप्त हुए है मतलब यह कि ढूंढक सरीखे अज्ञानी जीव विना गुरुगम के सूत्रकारकी शैलि को कैसे जानें ? सूत्रकी शैलि और अपेक्षा समझनी सो तो गुरुगम में ही रही

हुई है, इसवास्ते अभव्यकुलक सूत्रके साथ मुकाबला करने में कुछभी विरोध नहीं है और इसीवास्ते यह मान्य करने योग्य है* जो जो ग्रंथ अद्यापि पर्यन्त पूर्व शास्त्रानुसार बने हुए हैं सो सत्य हैं, क्योंकि जैनमत के प्रमाणिक आचार्योंने कोई भी ग्रन्थ पूर्व ग्रन्थों की छाया विना नहीं बनाया है, इसवास्ते जिन को पूर्वाचार्योंके वचन में शंका होवे उन्होंने वर्तमान् समय के जैनमुनियों को पूछ लेना वोह तिसका यथामति निराकरण करदेवेंगे, क्योंकि जो पंडित और गुरुगमके जानकार है वोह ही सूत्र की शैलिको और अपेक्षा को ठीक ठीक समझते है ॥

जेठमल लिखता है कि "जो किसी वक्त भी उपयोग न चूका होवे तिसके किये शास्त्र प्रमाण है" जेठेके इस कथन मूजिब तो गणधर महाराजा के वचन भी सत्य नहीं ठहरे ! क्योंकि जब श्रीगौतमस्वामी आनंद श्रावक के आगे उपयोग चूके तो सुधर्मा स्वामी क्यों नहीं चूके होवेंगे ?

तथा जेठमल के लिखेमूजिब जब देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणके लिखे शास्त्रोंकी प्रतीति नहीं करनी चाहिये ऐसे सिद्ध होता है तो फिर जेठे निन्हव सरीखे मूर्ख निरक्षर मुहबंधके कहे की प्रतीति कैसे करनी चाहिये ! इसवास्ते जेठ-

---

* यदि ढूंढिये अभव्यकुलकका अनादर करके "नसाजाइ" इत्यादि पाठ को ही मंजूर करते हैं तो उन के प्रति हम पूछते है कि आप बताइए कि-पांच अनुत्तर विमान में देवता तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव,बलदेव, नारद, केवलज्ञानी और गणधर के हाथ से दीक्षा तीर्थंकर का वार्षिक दान, लोकान्तिक देवता, इत्यादि अवस्थाओ की प्राप्ति अभव्य के जीवको होती है ? क्योंकि तुम तो भव्य अभव्य सब को सर्व स्थान जाति कुल योनि में उत्पन्न हुए मानते हो तो तुमारे माने मूजिव तो पूर्वोक्त सर्व अवस्था अभव्यजीव की होनी चाहिये परन्तु होती कभी भी नहीं हैं, और यही वर्णन अभव्य कुलक में है, तथा अभव्यकुलक की वर्णन करी कई बातें ढूंढिये लोग मानते भी है तो भी अभव्यकुलक का अनादर करते है जिसका असली मतलब यह है कि अभव्यकुलक में लिखा है कि तीर्थंकरकी प्रतिमा की पूजादि सामग्री में जो पृथिवी पाणी धूप चंदन पुष्पादि काम आते हैं उन में भी अभव्य के जीव उत्पन्न नहीं होसक्ते है अर्थात् जिस चीज़में अभव्य का जीव होगा वो चीज़ जिनप्रतिमा के निमित्त या जिन प्रतिमा को पूजा के निमित्त काम में न आवेगी सो यही पाठ इनको दुःखदाई होरहा है उल्लू को सूर्य्यवत् ॥

मल का लिखना बेअकल, निर्विवेकी, तो मंजूर करलेवेंगे, परन्तु बुद्धिमान् विवेकी और सुज्ञ पुरुषतो कदापि मंजूर नही करेंगे ॥

जेठमल लिखता है कि "पूर्वधर धर्म घोषमुनि अवधिज्ञानी सुमंगल साधु चारज्ञानी केशीकुमार तथा गौतमस्वामी प्रमुख श्रुत केवली भी भूले है" उत्तर-जिन्होंने तीर्थंकर की आज्ञा से काम करा जेठा उनकी भी जब भूल बताता है तो तीर्थंकर केवली भी भूल गये होंगे ऐसा सिद्ध होगा ? क्योंकि मृगालोढिये को देखने वास्ते गौतमस्वामिने भगवंतसे आज्ञा मांगी और भगवंतने आज्ञा दी उस मूजिब करने में जेठमल गौतमस्वामी की भूल हुई कहता है; तो सारे जगत् में मूढ अ.र मिथ्यादृष्टि जेठाही एक सत्यवादी बनगया मालूम होता है; परन्तु तिसका लेख देखने सेही सो महादुर्भवी बहुलसंसारि और असत्यवादी था ऐसे सिद्ध होता है, क्योंकि अपने कुमत को स्थापन करने वास्ते उसने तीर्थंकर तथा गणधर महाराजाको भी भूलगए लिखा है.इसवास्ते ऐसे मिथ्यादृष्टि का एक भी वचन सत्य मानना सो नरकगति का कारण है ॥

श्रीदशवैकालिक सूत्रकी गाथा लिख के तिसका जो भावार्थ जेठमलने लिखा है सो मिथ्या है, क्योंकि उस गाथा में तो ऐसे कहा है कि जेकर दृष्टिवाद का पाठी भी कोई पाठ भूलजावे तो अन्य साधु तिसकी हांसी न करे, यह उपदेशक वचन है, परन्तु इससे उस गाथा का यह भावार्थ नहीं समझना कि दृष्टिवाद का पाठी चूकजाता है, जेठमल को इसका सत्यार्थ भासन नहीं हुआ है विना पाठके टीका है इस बाबत जेठमलने जो कुयुक्ति लिखी है सो खोटी है. क्योंकि टीका में सूत्रपाठ की सूचनाका ही अधिकार है अरिहंतने प्रथम अर्थ प्ररूप्या उस ऊपर से गणधरने सूत्र रचे, तिन में गुप्तपणे रहे आशयको जाननेवाले पूर्वाचार्य जो महाबुद्धिमान् थ उन्होंने उस में से कितनाक आशय भव्यजीवोंके उपकारके वास्ते पंचांगी करके प्रकट कर दिखला-या है; परन्तु कुंभकार जवाहर की कीमत क्या जाने, जवाहर की कीमत तो जौहरि ही जाने, मूलपाठ के अक्षरार्थ से पाठकी सूचना का अर्थ अनंत गुणा है और टीका कारोंने जो अर्थ करा है सो निर्युक्ति चूर्णि, भाष्य और गुरुमहाराजा के बतलाए अर्थानुसार लिखा है और प्राचीन टीका के अनुसारही है इसवास्ते सर्व सत्य है और चूर्णि भाष्य तथा निर्युक्ति चौदहपूर्वी और दशपूर्वीयोंकी करी हुई हैं इसवास्ते सर्व मानने योग्य है इसबाबत प्रथम प्रश्नोत्तर में दृष्टांत पूर्वक सविस्तर लिखा गया है ।

जेठमल निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, ग्रंथ तथा प्रकरणादिक सूत्र विरुद्ध ठहरता है सो उस की मूढताकी निशानी है इस बाबत उसने ८५ पिच्चासी प्रश्न

लिखे है तिनके उत्तर क्रमसे लिखते हैं ॥

(१) "श्रीठाणांग सूत्र में सनतकुमार चक्री अंतक्रिया करके मोक्ष गया ऐसे लिखा है, और तिसकी टीका में तीसरे देवलोकगया ऐसे लिखा है" उत्तर-श्रीठाणांग सूत्रमें सनतकुमार मोक्षगया नहीं कहा है परन्तु उस में उसका दृष्टांत दीया है कि जीव भारी कर्मके उदयसे परिसह वेदना भोग के दीर्घायु पालके सिद्ध होवे जसे सनतकुमार यहां कर्म परिसह वेदना और आयुके दृष्टांत में सनतकुमार का ग्रहण किया है क्योंकि दृष्टांत एक देशी भी होता है, इसवास्ते सनतकुमार तीसरे देवलोक गया. टीका कारका कहना सत्य है ॥

(२) 'भगवती सूत्र में पांचसौ धनुष्यसे अधिक अवगाहना वाला सिद्ध न होवे ऐसा कहा है और आवश्यक निर्युक्ति में मरुदेवी ५२५ सवापांच सौ धनुष्य की अवगाहना वाली सिद्ध हुई ऐसे कहा है उत्तर-यह जेठका लिखना मिथ्या है, क्योंकि आवश्यक निर्युक्ति में मरुदेवीकी सवापांच सौ धनुष्यकी अवगाहना नहीं कही है ॥

(३) 'समवायांग सूत्र में ऋषभदेव का तथा बाहुबलिका एक सरीखा आयुष्य कहा है और आवश्यक निर्युक्ति में अष्टापद पर्वत ऊपर श्रीऋषभदेवके साथ एकही समय में बाहुबलि भी सिद्ध हुआ ऐसे कहा है" उत्तर-बाहुबलिका आयुष्य ६ लाख पूर्व टूटगया इस आयुका टूटना सो अच्छेरा है। पंचवस्तु शास्त्र में लिखा है कि दश अच्छेरे तो उपलक्षण मात्र हैं परन्तु अच्छेरे बहुत है *

---

* यदि ढूंढिये बाहुबलिका श्रीऋषभदेवके साथ एक ही समय में सिद्ध होना नहीं मानते है तो उन को चाहिये कि अपने माने बत्तीस सूत्रों में से दिखा देवें कि श्रीबाहुबलिने अमुकसमय दीक्षा ली और अमुक वक्त केवल ज्ञान हुआ और अमुक वक्त सिद्धहुआ तथा श्रीठाणांग सूत्र के दशवें ठाणे मे दश अच्छेरे लिखे हैं उनका स्वरूप, तथा किस किस तीर्थंकर के तीर्थ में कौनसा२ अच्छेरा हुआ इसका वर्णन, विना निर्युक्ति, भाष्य चूर्णि, टीका और प्रकरणादि ग्रन्थों के अपने माने बतीस शास्त्रों के मूल पाठ में दिखाना चाहिये, जबतक इनका पूरा२स्वरूप नहीं दिखाओगे वहां तक तुमारी कोई भी कुयुक्ति काम न आवेगी दश अच्छेरों का पाठ यह है ॥

"दस अच्छेरगा पण्णत्ता तंजहा ॥ उवसग्ग"गब्भहरणं" तीत्थी तीत्थं"अभाविया"परिसी"। कण्हस्स अवरकंका"उत्तर

(४) "ज्ञाता सूत्र में मल्लिनाथस्वामी के दीक्षा और केवलकल्याणक पोष सुदि ११ के कहे और आवश्यक निर्युक्ति में मृगसर सुदि ११ के कहे हैं" उत्तर यह मतांतर है ॥

(५) " बृहत्कल्प सूत्र में साधु काल करे तो तिसको वांसकी झोली करके साधु वनमें परठ आवे ऐसे कहा है, और आवश्यक निर्युक्ति में साधु पंचक में काल करे तो पांच पूतले डाभके करके साधु के साथ जालने ऐसे कहा है" उत्तर-यह सर्व झूठ है, क्योंकि आवश्यक निर्युक्ति में ऐसा पाठ बिलकुल नहीं है, बृहत्कल्प सूत्र में पूर्वोक्त विधि कही है तो भी ढूंढिये अपने साधुओंको विमान बनाकर लकाड़ियों के साथ जलाते हैं सो किस शास्त्रानुसार ? और हमारे श्रावक जो इस मूजिब करते हैं सो तो पूर्वाचार्य कृत ग्रन्थों के अनुसार करते हैं ॥

(६) "भगवती सूत्र में एक पुरुषको उत्कृष्टे पृथक्त्व लाख पुत्र होवे ऐसे है और ग्रन्थों में भरत के सवाक्रोड़, पुत्र कहे हैं" उत्तर-भगवती सूत्र का पाठ एक स्त्री की अपेक्षा है भरत के बहुत स्त्रियां थीं इसवास्ते तिसके सवाक्रोड़ पुत्र थे यह बात सत्य है ॥

(७) "भगवती सूत्र में भगवंत का अपराधि और भगवंत के दो शिष्योंको जलानेवाला ऐसा जो गोशाला तिस को भगवंतने कुछ नहीं करा ऐसे कहा है, और संघाचार की टीका में पुलाक लब्धिवाला चक्रवर्त्ती की सेनाको चूर कर देवे ऐसे कहा है" उत्तर-पुलाक लब्धिवाला चक्रवर्त्ती की सेना को चूर्ण कर देवे ऐसी उस में शक्ति है सो सत्य है + भगवंतने गोशाले को कुछ नहीं करा ऐसे जेठमल कहता है, परन्तु भगवंत तो केवलज्ञानी थे, तो जैसे भाविभाव देखें वैसे वर्ते ॥

सी चंद सूराणं" ॥ १ ॥

हरिवंसकुलुप्पत्ति"चमरुप्पाओय"अट्ठसय सिद्धा"। अस्संजएसु पुया"दसावि अणंतेण कालेणं" ॥ २ ॥ "

+ पुलकलब्धि बाबत प्रश्न लिखने से यह भी मालूम होता है कि ढूंढिये २८ लब्धियों को भी नहीं मानते होवेंगे अगर मानते है तो दिखाना चाहिये कि २८ लब्धियों का क्या२ स्वरूप है और उन में क्या२ शक्तिया है ॥

(८) "सूत्र में नारकी तथा देवता को असंघयणी कहा है और प्रकरणों में संघयण मानते हैं"उत्तर-देवता में जो संघयण कहा है सो शक्तिरूप हैहाडरूप नहीं; और जो असंघयणी कहा है सो हाडकी अपेक्षा है तथा श्री उववाई सूत्र में देवता को संघयण कहा है, परन्तु जेठमल के हृदय की आंख में कसर होने से दीखा नहीं होगा ॥

(९) "पन्नवणा सूत्र में स्थावर को एक मिथ्यात्व गुणठाणा कहा है और कर्म ग्रन्थ में दो गुणठाणे कहे हैं"उत्तर-ग्रन्थ में दूसरा गुणठाणा कहा है सो कदाचित् होता है और पन्नवणामें एकही गुणठाणा कहाहै सो बहुलताकी अपेक्षाहै ॥

(१०) "श्रीदशवैकालिक सूत्र में साधु के लिये रात्रिभोजन का निषेधहै और बृहत्कल्प की टीका में साधुको रात्रि भोजन करना कहा है" उत्तर-बृहत्कल्प के मूलपाठ में भी यही बात है,परन्तु तिसकी अपेक्षा गुरुगम में रही हुई है ॥

(११) "श्रीठाणांग सूत्र में शील रखने वास्ते साधु आपघात करके मरजावे ऐसे कहा है और श्रीबृहत्कल्पकी चूर्णिमें साधुको कुशील सेवना कहाहै"उत्तर जैनमत के किसी भी शास्त्र में कुशील सेवना नहीं कहा है, परन्तु जेठे ढूंढकने झूठ लिखा इससे मा ूम होता है कि वो अपनी वाती बात लिखगया होगा ॥

(१२) "श्रीभगवती सूत्र में छट्ठे आरे लगते वैताढ्यपर्वत वर्जके सर्व पर्वत व्यवच्छेद होंगे ऐसे कहा है और ग्रन्थों में शत्रुंजय पर्वत शाश्वता कहा है"इस का उत्तर-सात में प्रश्नोत्तर में लिख आए हैं।

(१३) "श्रीभगवती सूत्र में कृत्रिम वस्तु की स्थिति संख्याते कालकी कही है और ग्रन्थों में शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा असंख्याते कालकी है, ऐसे कहा है" इसका उत्तर तीसरे प्रश्नोत्तर में दिया गया है ॥

(१४) "श्रीज्ञाता सूत्र में श्रीशत्रुंजयपर्वत ऊपर पांच पांडवोंने संथारा करा ऐसे कहा और ग्रन्थों में वीस क्रोड़ मुनियों के साथ पांडव सिद्ध हुए ऐसे कहा" उत्तर-श्रीज्ञातासूत्र में फकत पांडवों की विवक्षा है, अन्य मुनियों की नहीं इस वास्ते वहां परिवार नहीं कहा है ॥

(१५) "भगवती सूत्र में महावीर स्वामी की ७०० केवली की संपदा कही और ग्रन्थों में पंदरां सौ तापस केवली वधा दिये" इस का उत्तर-दसवें प्रश्नोत्तर में लिख दिया है॥

(१६) "श्रीठाणांग सूत्र में मानुषोत्तर पर्वत ऊपर चारकूट इन्द्रके आवास

के कहे और जैनधर्मी सिद्धायतन कूट हैं ऐसे कहते हैं. परन्तु वो तो सूत्र में कहे नहीं हैं" उत्तर–ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में चार बोलकी वक्तव्यता है इस वास्ते वहां चारही कूट कहे हैं. परन्तु सिद्धायतन कूट श्रीद्वीपसागर पन्नत्ति में कहा है, इसबाबत पंद्रवें प्रश्नोत्तर में विशेष खुलासा किया गया है ॥

(१७) "सूत्र में साधु साध्वी को मोल का आहार न कल्पे ऐसे कहा और प्रकरणों में सात क्षेत्र धन निकलवाते हो तिस में साधु साध्वी के निमित्त भी धन निकलवाते हो" उत्तर–जैनमत के किसी भी शास्त्र में उत्सर्ग कहीं नहीं लिखा है कि साधु के निमित्त मोल का लिया आहारादिक श्रावक देवे और साधुलेवे, इसबाबत जेठमल ने बिलकुल मिथ्या लिखा है, तथा इसबाबत अठारवें प्रश्नोत्तर में खुलाशा लिखा गया है ॥

(१८) "सूत्र में रुचकद्वीप पंद्रमां कहा और प्रकरण में तेरमां कहा" उत्तर-श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में रुचकद्वीप ग्यारवां और जीवाभिगम सूत्र में पंद्रवां लिखा है। सो कैसे ?

(१९) "सूत्र में ५६ अंतरद्वीप जल से अंतरिक्ष कहे हैं और प्रकरण में चार दाढा ऊपर है ऐसे कहा है" उत्तर–चार दाढ़ा ऊपर जेठे का लिखना झूठ है क्योंकि आठ दाढ़ा ऊपर हैं ऐसे प्रकरण में कहा है, और सो सत्य है क्योंकि सूत्र में दाढ़ा ऊपर नहीं हैं ऐसे नहीं कहा है ॥

(२०) "श्रीपन्नवणा सूत्र में छद्मस्थ आहारक की दो समयकी स्थिति कही और प्रकरण में तीन समय आहारक कहा है" उत्तर–श्रीभगवती सूत्र में भी तीन समय की आहारककी स्थिति कही है ॥

और श्रीभगवती सूत्र में चार समयकी विग्रहगति कही और प्रकरण में पांच समयकी उत्कृष्टी विग्रहगति कही तिसका उत्तर–बहुलतासे चार समय की विग्रहगति होती है इसवास्ते सूत्र में ऐसे कहा है परन्तु किसी वक्त पांच समय की भी होती है इसवास्ते प्रकरण में उत्कृष्टी पांच समय की कही है ॥

(२१) "श्रीसमवायांग सूत्र में आचारांग का महापरिज्ञा अध्ययन नवमां कहा और प्रकरण में सातमां कहा" उत्तर–श्रीसमवायांग सूत्र में विजय मुहूर्त बारवां कहा है और जंबूद्वीप पन्नत्ति में सतरवां कहा है सो कैसे।

(२२) श्रीसमवायांग सूत्र के ५४ वें समवाय में ५४ उत्तम पुरुष कहे हैं, और प्रकरण में त्रेसठ ६३ कहे" उत्तर–समवायांगसूत्र में ही मल्लिनाथजी के ५७ सौ

मनपर्यवज्ञानी कहे और ज्ञाता सूत्र में आठ सौ कहे यह तो सूत्रों में परस्पर विरोध हुआ सो कैसे ॥

(२३) "श्रीपन्नवणा सूत्र में सन्मूर्छिम मनुष्य को सर्व पर्याप्ति से अपर्याप्ती कहा है और प्रकरण में तीन साढ़े तीन पर्याप्तियां कही हैं" उत्तर-श्रीपन्नवणासूत्र के पाठका अर्थ जेठमल को आया नहीं इसवास्ते उस को विरोध मालूम हुआ है परन्तु यथार्थ अर्थ विचारने से इस बात में बिलकुल विरोध नहीं आता है ॥

(२४) "श्रीभगवती सूत्र में जीव के सर्व प्रदेश में कर्म प्रदेश अनंते कहे हैं और प्रकरण में आठ रुचक प्रदेश उघाड़े कहे हैं" उत्तर-श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि कंपमान प्रदेश कर्म बांधते है और और अकंप मान प्रदेश कर्म नहीं बांधते हैं,इसवास्ते आठ रुचक प्रदेश अकंपमान हैं और इसकारण वो उघाड़े है।

(२५) श्रीउत्तराध्ययन में आतप उद्योत प्रमुख विस्रासा पुद्गल हाथ में न आवें ऐसे कहा है और प्रकरण में गौतमस्वामी सूर्य किरणों को अवलंब के अष्टापद पर चढ़े ऐसे कहा है" इसका उत्तर--दशमें प्रश्नोत्तर में सविस्तर लिखा गया है ॥

(२६) "श्रीठाणांग सूत्र में बत्तीस असज्झाइ कही और प्रकरण में असुतथा चैत्र के महीने में ओली के दिन भी असज्झाइ के कहे हैं" उत्तर-श्रीठाणांग सूत्र में ऐसे नहीं कहा है कि बत्तीस ही असज्झाइ हैं और अन्य नहीं इसवास्ते प्रकरण में कही बात भी सत्य है ॥

(२७) "श्रीअनुयोगद्वार में उत्सेध आंगुलसे प्रमाणांगुल हजार गुणी कही है उस मूजिब चारहजार गाउका प्रमाण योजन होता है और प्रकरण में सोलह सौ (१६००) गाउका योजन कहा है" उत्तर-श्रीअनुयोगद्वार में प्रमाणांगुलकी सूची हजारगुणी कही है और अंगुल तो चारसौ गुणी है परन्तु गुरुगम विना मूढ़मतियोंको इस बातकी समझ कहां से होवे ?

(२८) "श्रीभगवती सूत्र में महावीरस्वामी ने छद्मस्थपणे में अन्त की रात्रि में दशस्वप्न देखे ऐसे कहा और श्रीआवश्यक सूत्र में प्रथम चौमासे देखे ऐसे कहा है" उत्तर-श्रीभगवतीसूत्र में जो कहा है तिसका भावार्थ यह है कि छद्मस्थपणे में अंत रात्रि में अर्थात् जिस दिन की रात्रि में देखे उस रात्रिके अंतिम भाग में देखे ऐसे समझना इसवास्ते श्रीआवश्यक सूत्र में प्रथम चौमासे देखे ऐसे कहा है सो सत्य है तो भी इस में मतांतर है ॥

(२९-३०-३१) "श्रीउत्तराध्ययन में कहा है कि संयम लेने में समयमात्र प्रमाद नहीं करना और गणिविजयपयन्ने में कहा है, कि तीन नक्षत्र में दीक्षा नहीं लेनी, चार नक्षत्र में लोच नहीं करना पांच नक्षत्र में गुरुकी पूजा करनी" उत्तर-श्रीउतराध्ययन सूत्र में जो बात कही है सो सामान्य और अपेक्षा पूर्वक है परन्तु अपेक्षा से अनजान जेठे की समझ में यह बात नहीं आई है। तथा गणिविजय पयन्नेकी बात भी सत्य है। गणिविजयपयन्नेकी बात उत्थापने में जेठेका हेतु जिन प्रतिमा के उत्थापन करने का है क्योंकि आप ही जेठेने गणि विजयपन्ने की जो गाथा लिखी है उस में-

"धणिट्ठाहि सयभिसा साइ सवणोय पुणव्वसु एएसु गुरुसुस्सुसा चेइयाणं च पुयणं" ॥

अर्थ-"धनिष्ठा, शतभिषा, स्वाति, श्रवण और पुनर्वसु इन पांच नक्षत्रों में गुरुमहाराज की सुश्रूषा अर्थात् सेवा भक्ति करनी और इनही नक्षत्रों में जिन प्रतिमा का पूजन करना" ऐसे कथन है, इससे यह नहीं समझना कि पूर्वोक्त नक्षत्रों से अन्य नक्षत्रों में गुरु भक्ति और देवपूजा नहीं करनी, परन्तु पूर्वोक्त पांच नक्षत्रों में विशेष करके करनी जिससे बहुत फलकी प्राप्ति होवे जैसे श्री ठाणांगसूत्र के दशवें ठाणे में कहा है कि दश नक्षत्रों में ज्ञान पढ़े तो वृद्धिहोवे*

"दस णक्खत्ता णाणस्स वुड्ढीकरा पणत्ता"

यहां भी ऐसेही समझना। इसवास्ते जेठमल की करी कुयुक्ति खोटी है। जिन वचन स्याद्वाद है एकांत नहीं जो एकांतमाने उनको शास्त्रकारने मिथ्यात्वी कहा है ॥

(३२-३३) "श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ति में पांचवे आरे ६ संघयण और ६ संस्थान कहे और श्रीतंदुल वियालिय पयन्ने में सांप्रतकाले सेवार्त्त संघयण कहे और हुंडक संस्थान कहा है" उत्तर-श्रीजंबूद्वीप पन्नत्ति में पांचवें आरे मुक्ति कही है, तथापि सांप्रतकाले जैसे किसी को केवलज्ञान नहीं होता है, तैसे पांचवें आरेके प्रारंभ में ६ संघयण और ६ संस्थान थे परन्तु हाल एक छेवट्ठा संघयण और हुंडक संस्थान है। जेकर ६ ही संघयण और ६ ही संस्थान हाल हैं ऐसे कहोगे तो जंबूद्वीपपन्नत्ति में कहे मूजिब हाल मुक्तिभी प्राप्त होनी चाहिये, जेकर इस में

---

* श्री समवायांग सूत्र में भी यही कथन है ॥

अपेक्षा मानोगे तो अन्यबातों में अपेक्षा नहीं मानते हो और मिथ्या प्ररूपणा करते हो तिसका क्या कारण है ॥

(३४) "श्रीभगवतीसूत्र में आराधना के अधिकार में उत्कृष्ट पंद्रह भव कहे और चंद्रविजयपयन्ने में तीन भव कहे" उत्तर--चन्द्रविजयपयन्ने में जो आराधना लिखी है तिस के तो तीन ही भव हैं और जो पंद्रह भव हैं सो अन्य आराधना के हैं ॥

(३५) "सूत्र में जीव चक्रवर्त्तीपणा उत्कृष्टा दो वक्त पाता है, ऐसे कहा और श्रीमहापच्चक्खाण पयन्ने में अनंतीवार चक्रवर्त्ती होवे ऐसे कहा" उत्तर--श्रीमहापच्चक्खाण पयन्ने में तो ऐसे कहा है कि जीव ने इन्द्रपणा पाया, चक्रवर्त्तीपणा पाया, और उत्तम भोग अनंतवार पाये तो भी जीव तृप्त नहीं हुआ, परंतु तिस पाठ में चक्रवर्तीपणा अनंतवार पाया ऐसे नहीं कहा है; इससे मालूम होता है कि जेठमल को शास्त्रार्थका बोध हीनहीं था ॥

(३६) 'श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि केवली को हसना, रमना, सोना, नाचना इत्यादि मोहनी कर्मका उदय न होवे और प्रकरण में कपिल केवली ने चोरोंके आगे नाटक किया ऐसे कहा" उत्तर--कपिल केवली ने ध्रुपद छंद प्रमुख कहके चोर प्रतिबोधे और तालसंयुक्त छंद कहे तिसका नाम नाटक है, परन्तु कपिलकेवली नाचे नहीं हैं ॥

(३७) "श्रीदशवैकालिक सूत्र में साधुको वेश्या के पाड़े (महल्ले) जाना निषेध किया और प्रकरण में स्थूलभद्रने वेश्या के घर में चौमासा करा ऐसे कहा" उत्तर--स्थूलभद्र आगमवव्यहारी गुरुकी आज्ञा लेकर वेश्या के घर में चौमासा रहे थे, और दशवैकालिकसूत्र तो सूत्र व्यवहारियों के वास्ते है, इस वास्ते पूर्वोक्तबात में कोई भी विरोध नहीं है * ॥

(३८) "श्रीआचारांगसूत्र में महावीरस्वामी "संहरिज्जमाणेजाणइ" ऐसे कहा और श्रीकल्पसूत्र में 'न जाणइ' ऐसे कहा" उत्तर जेठामूढ़मति कल्पसूत्र का विरोध बताता है परन्तु श्रीकल्पसूत्र तो श्रीदशाश्रुतस्कंधका आठमां अध्य-

---

* इससे यहभी मालूम होता है कि ढूंढिये स्थूलभद्र का अधिकार मानते नहीं होवेंगे ! बेशक इन के माने बत्तीस शास्त्रों में श्रीस्थूलभद्र का वर्णनही नहीं है तो फिर यह भोले लोगों को स्थूलभद्र का वर्णन शील के ऊपर सुनार कर क्यों धोखे में] डालते हैं ? तथा झूठा बकवाद कर के अपना गला क्यों सुकाते हैं ॥

यन है * इसवास्ते जेकर दशाश्रुतस्कंधको ढूंढिये मानते हैं तो कल्पसूत्रभी उनको मानना चाहिये, तथापि कल्पसूत्र में कहे वचन की सत्यता मालूम हो कि कल्प सूत्र में प्रभु न जाने ऐसे कहा है सो हरिणगमेषी देवता की चतुराई मालूम करने वास्ते और प्रभुको किसी प्रकार की बाधा पीड़ा नहीं हुई इसवास्ते कहा है; जैसे किसी आदमी के पगमें कांटालगाहोवे उस को कोई निपुण पुरुष चतुराई से निकाल देवे तब जिसको कांटा निकाला जो कि मुझ को खबरभी न हुई। ऐसे टीका कारोंने खुलासा किया है तो भी बेअकल ढूंढिये नहीं समझते हैं सो उनकी भूल है॥

(३९) "सूत्र में मांसका आहार त्यागना कहा है और भगवती की टीका में मांस अर्थ करते हो" उत्तर-श्रीभगती सूत्र की टीका मे जो अर्थ करा है सो मांसका नहीं है,परन्तु कदापि जेठा अभक्ष्य वस्तु खाता होवे और इसवास्ते ऐसे लिखा होवे तो बन सकता है, क्योंकि जैनमत के तो किसी भी शास्त्र में मांस खाने की आज्ञा नहीं है॥

(४०) "श्रीआचारांगसूत्र में 'मंसखलंवा और मच्छखलंवा" इसशब्दका 'मांस' अर्थ करते हो" उत्तर-जैनमत के साधु किसी भी जगह मांस भक्षण करनेका अर्थ नहीं करते हैं, तथापि जेठेने इसमूजिब लिखा है सो उसने अपनी मति कल्पना से लिखा है ऐसे मालूम होता है × ॥

(४१) "सूत्र में जैसे मांसका निषेध है तैसे मदिराका भी निषेध है और श्रीज्ञातासूत्र में शेलकराज ऋषिने मद्यपान किया ऐसे कहते हो" उत्तर-जैनमत के मुनि पूर्वोक्त अर्थ करते हैं सो सत्य ही है क्योंकि शेलकराजर्षिके जिस वक्त मद्यपान करनेका अधिकार सूत्र पाठ में है तो तिस अर्थ में कुछ भी बाधा नहीं है क्योंकि सूत्रकार ने भी उसवक्त शेलकराजर्षिको पासथ्था, उसन्ना और संसक्त कहा हैं,इसवास्ते सच्चे अर्थको कहना सो मिथ्यात्वीका लक्षण है।

(४२) "श्रीभगवती सूत्र में कहा कि मनुष्यका जन्म एकसाथ एकयोनिसे

---

* श्रीठाणांगसूत्र के दशवें ठाणे में दशाश्रुतस्कंधके दश अध्ययन कहे है तिन में पज्जोसवणाकप्पे अर्थात् कल्पसूत्र का नाम लिखा है तथापि ढूंढिये नही मानेत है जिस का कारण यही है कि कल्पसूत्र में पूजा वगैरहका वर्णन आता है॥

× ढूंढियो! तुम टीका को मानते नही हो तो श्रीभगवती तथा आचारांगसूत्र के इन पाठोंका अर्थ कैसे करते हो! क्योंकि तुमतो मूल अक्षरमानको ही मानते हो॥

उत्कृष्टा पृथक्त्व जीवका होवे और प्रकरण में सगर चक्रवर्त्ती के साठहजार पुत्र एकसाथ जन्मे कहे हैं" उत्तर-श्रीभगवती सूत्र में जो कथन है सो स्वभाविक है सगरचक्रवर्त्ती के पुत्र जो एकसाथ जन्में हैं सो देवकारण जन्मे है ॥

(४३) "सूत्र में कहा है कि शाश्वती पृथिवीका दल उतरे नहीं और प्रकरण में कहा कि सगरचक्रवर्त्तीके पुत्रोंने शाश्वतादल तोडा" उत्तर-सगरचक्रवर्त्ती के पुत्र श्रीअष्टापद पर्वतोपरयात्रा निमित्ते गये थे, उन्होंने तीर्थरक्षा निमित्त चारों तर्फ खाई खोदने वास्ते विचार करा, इससे तिनके पिता सगरचक्रवर्त्ती के दिये दंडरत्न से खाई खोदी और शाश्वता दल तोड़ा; परन्तु दंडरत्न के अधिष्टयायक एक हजार देवते है। और देवशक्ति अगाध है इसवास्ते प्रकरण में कही वात सत्य है ॥

(४४) 'सूत्र में तीर्थंकरकी तेतीस आशातना टालनी कही और प्रकरण में जिन प्रतिमा की चौरासी आशातना कही है" उत्तर-तीर्थंकरकी तेतीस आशातना जैनमत के किसीभी शास्त्र में नहीं कही हैं. जैन शास्त्रों में तो तीर्थंकरकी चौरासी आशातना कही है। और उसी मूजिव जिन प्रतिमा की चौरासी आशातना है ॥

(४५) "उपवास (व्रत) में पानी विना अन्य द्रव्यके खादेका निषेध है और प्रककरण में अणाहार वस्तु खानी कही है।" उत्तर-जेठमल आहार अणाहार के स्वरूप का जानकार मालूम नहीं होता है क्योंकि व्रत में तो आहारका त्याग है, अणाहार का नहीं तथा क्या क्या वस्तु अणाहार है. किस रीति से और किस कारण से वर्तनी चाहिये, इसकी भी जेठमल को खवर नहीं थी ऐसे मालूम होता है ढूंढिये व्रत में पानी विना अन्य द्रव्य के खाने की मनाई समझते हैं तो कितनेक ढूंढिये साधु तपस्या नाम धरायके अधरिडका तथा गाहड़ी मठे सरीखी छास(लस्सी)प्रमुख अशनाहारका भक्षण करते हैं सो किसशास्त्रानुसार।

(४६) "सिद्धांत में भगवंत को "सयंसंबुद्धाणं' कहा और कल्पसूत्र में पाठशाला में पढ़ने वास्ते भेजे ऐसे कहा है" उत्तर-भगवंत तो "सयंसंबुद्धाणं" अर्थात् स्वयंबुद्ध ही हैं, वो किसी के पास पढ़े नहीं हैं,परन्तु प्रभुके माता पिता ने मोह करके पाठशाला में भेजे तो वहां भी उलटे पाठशाला के उस्ताद के संशय मिटाके उसको पढ़ा आए है ऐसे शास्त्रों में खुलासा कथन है तथापि जेठमलने ऐसे खोटे विरोध लिखके अपनी मूर्खता जाहिर करी है ॥

(४७) "सूत्र में हाडकी असझाई कही है और प्रकरण में हाड के स्थापनाचार्य स्थापने कहे" उत्तर-असझाई पंचेंद्रीके हाड़की है अन्य की नहीं, जैसे

शंख हाड है तो भी वार्जित्रों में मुख्य गिना जाता है, और सूत्र में बहुत जगह यह बात है, तथा जेकर ढूंढिये सर्व हाड़की असझाइ गिनते हैं तो उनकी श्राविका हाथ में चूड़ा पहिरके ढूंढिये साधुओंके पास कथा वार्त्ता सुननेको आती हैं, सो वो चूड़ा भी हाथी दांत हाथी के हाड़का ही होता है इसवास्ते ढूंढक साधुको चाहिये कि अपने ढूंढक श्रावकाको की औरतोंको हाथ में से चूड़ा उतारे बादही अपने पास आने देवें * ?

(४८) "श्रीपन्नवणाजी में आठ सौ योजनकी पोलमें वाणव्यंतर रहते हैं ऐसे कहा और प्रकरण जी में अस्सी (८०) योजनकी पोल अन्य कहीं" उत्तर-श्रीपन्नवणासूत्र में समुच्चय व्यंतरका स्थान कहा है और ग्रन्थों में विशेश खुलासा करा है ॥

(४९) "जैनमार्गी जीव नरक में जाने के नाम से भी डरता है, ऐसे सूत्र में कहा है, और प्रकरण में कोणिक राजाने सातवी नरक में जाने वास्ते महापाप के कार्य किये ऐसे कहा" उत्तर-जैनमार्गी जीव नरक में जानेके नामसे भी डरता है सो बात सामान्य है एकांत नहीं और कोणिक के प्रश्न करने से भगवंत ने तिसको छट्ठी नरक में जावेगा ऐसे कहा तब छट्ठी नरक में तो चक्रवर्त्ती का स्त्रीरत्न जाता है ऐसे समझके छट्ठी से सातवी में जाना अपने मनमें अच्छा मान के तिस ने बहुत आरंभ के कार्य करे हैं। तथा ढूंढिये भी जैनमार्गी नाम धराके अरिहंत के कहे वचनों को उत्थापते हैं, जिन प्रतिमाको निंदते हैं, सूत्रविराधते हैं, भगवंतने तो एक वचन के भी उत्थापक को अनंत संसारि कहा है, यह बात ढुंढिये जानते हैं तथापि पूर्वोक्त कार्य करते हैं और नरक में जाने से नहीं डरते हैं,निगोद में जाने से भी नहीं डरते हैं,क्योंकि शास्त्रानुसार

---

* यह हास्यरस संयुक्त लेख गुजरात काठीयावाड़ मारवाड़ादि देशों के ढूंढियों आश्री है, क्योंकि उस देश में रंडी विधवा के सिवाय कोई भी औरत कबीभी हाथ चूड़े से खाली नहीं रखती है, कितना ही सोग होवे परन्तु सोहाग का चूड़ा तो जरूर ही हाथ में रहता है, औरतों के हाथ से चूड़ा तो पति के परलोक में सिधारे बादही उतरता है ? तो ढूंढिये साधुको सोहागन औरतों को अपने व्याख्यानादि में कबीभी नहीं आने देना चाहिये ! और पंजाबदेशकी औरतों के भी नाक कान वगैरह कितने ही गहने हाड़ के होते हैं, ढूंढिये श्रावक श्राविकायों के कोट कमीज फतुइयां वगैर को बटन भी प्रायः हाड़के ही लगे हुए होते हैं,इसवास्ते उनको भी पास नहीं बैठने देना चाहिये ! वाहरे भाई ढूंढियो !! सत्य है। विनागुरुगम के यथार्थ बोध कहां से होवे !

देखने से मालूम होता है कि इनकी प्राय:नरक निगोदके सिवाय अन्यगति नहीं है।

(५०) "कूर्मापुत्र केवलज्ञान पाने पीछे ६ महीने घरमें रहे कहा है" उत्तर-जो गृहस्थावास में किसी जीव को केवलज्ञान होवे तो उसको देवता साधुका भेष देते हैं और उसके पिछे वो विचरते तथा उपदेश देते हैं परन्तु कुर्मापुत्रको ६ महीने तक देवताने साधुका भेष नहीं दिया और केवल ज्ञानी जैसे ज्ञान में देखे तैसे करे परन्तु इस बातसे जेठमल के पेट में क्यों शूल हुआ ? सो कुछ समझ में नहीं आता है॥

(५१) "सूत्र में सर्वदान में साधु को दान देना उत्तम कहा है और प्रकरण में विजयसेठ तथा विजयासेठानीको जीमावने से ८४००० साधुको दान दिये जितना फल कहा" उत्तर-विजयसेठ और विजयासेठानी गृहस्थावास में थे,उनकी युवा अवस्था थी, तत्कालका विवाह हुआ हुआ था, और काम भोग तो उन्होंने दृष्टि से भी देखे नहीं थे ऐसे दंपतीने मन वचन काया त्रिकरण शुद्धिसे एक शय्या में शयन करके फेरभी अखंड धारा से शील (ब्रह्मचर्य) व्रत पालन किया है इसवास्ते शीलकी महिमा निमित्त पूर्वोक्त प्रकार कथन करा है। और उनकी तरह शील पालना सो अति दुष्कर कृत्य है॥

(५२) "भरतेश्वरने ऋषभदेव और ९९ भाइयों के मिलाकर सौ स्थूभ कराये ऐसे प्रकरण में कहा है और सूत्र में यह बात नहीं है" उत्तर-भरतेश्वर के स्थूल कराने का अधिकार श्री आवश्यक सूत्र में है यत:-

थूभसय भाउयाणं चउव्विसं चेव जिणघरे कासी।
सव्वजिणाणं पड़िमा वणणपमाणेहिं नियएहिं॥ ८६॥

और इसी मूजिब श्रीशत्रुंजयमहात्म्य में भी कथन है *॥

(५३) 'पांडवोंने श्रीशत्रुंजय ऊपर संथारा करा ऐसे सूत्र में कहा है परन्तु पांडवोंने उद्धार कराया यह बात सूत्र में नहीं है" उत्तर-सूत्र में पांडवोंने संथारा करा यह अधिकार है और उद्धार कराया यह नहीं है इससे यह समझना

---

*जेकर ढूंढिये कहें कि यह निर्युक्ति आदिका पाठ है,हम नहीं मंजूर करते हैं तो उन देवाना प्रियोंको हम यह पूछते हैं कि तुमारे माने सूत्रों में तो भरतेश्वर का सपूर्ण वर्णन ही नहीं है तो तुम कैसे कह सकते हो कि भरतेश्वरके स्थूभ कराये का अधिकार सूत्र में नहीं है॥

कि इतनी बात सूत्रकारने कमती वर्णन करी है परन्तु उन्होंने उद्धार नहीं कराया ऐसे सूत्रकारने नहीं कहा है इसवास्ते उन्होंने उद्धार कराया यह वर्णन श्रीशत्रुंजय महात्म्यादि ग्रन्थों में कथन करा है सो सत्य ही है ॥

(५४)' पंचमी छोड़ के चौथको संवत्सरी करते हो" उत्तर–हम जो चौथ की संवत्सरी करते हैं सो पूर्वाचार्योंकी तथा युगप्रधान की परंपरा से करते है श्रीनिशीथचूर्णि में चौथकी संवत्सरी करनी कही है। और पंचमीकी संवत्सरी करने का कथन सूत्र में किसी जगह भी नहीं है; सूत्र में तो आषाढ चौमासेके आरंभ से एक महीना और वीस दिन संवत्सरी करनी, और एकमहीना वीस दिन के अंदर संवत्सरी पडिक्कमनी, कल्पती है परन्तु उपरांत नहीं कल्पती है अंदर पड़िक्कमने वाले तो आराधक हैं उपरांत पडिक्कमने वाले विराधक है. ऐसे कहा है तो विचार करो कि जैन पंचांग व्यवच्छेद हुए है जिससे पंचमी के सायंकाल को संवत्सरी प्रतिक्रमण करने समय पंचमी है कि छठ होगई है तिसकी यथास्थिती खबर नहीं पड़ती है. और जो छठमें प्रतिक्रमण करीये तो पूर्वोक्त जिनाज्ञाका लोप होता है इसवास्ते उस कार्य में बाधक का संभव है। परन्तु चौथकी सायं को प्रतिक्रमण के समय पंचमी हो जावे तो किसी प्रकारका भी बाधक नहीं है। इसवास्त पूर्वाचार्योंने पूर्वोक्त चौथकी संवत्सरी करने की शुद्ध रीति प्रवर्त्तन करी है सो सत्य ही है। परन्तु ढूंढिये जो चोथके दिन सन्ध्याको पंचमी लगती होवे तो उसी दिन अर्थात् चोथको संवत्संरी करते है सो न तो किसी सूत्र के पाठ से करते हैं और न युगप्रधान की आज्ञा से करते है किन्तु केवल स्वमतिकल्पना से करते हैं ॥

(५५) "सूत्र में चौवीस ही तीर्थंकर वंदनीक कहे हैं और विवेक विलास में कहा है कि घर देहरे में २१ इक्कीस तर्थिंकर की प्रतिमा स्थापना" उत्तर–जैनधर्मी को तो चौवीस ही तीर्थंकर एक सरीखे हैं, और चौवीस ही तीर्थंकरो को वंदन पूजन करने से यावत् मोक्षफलकी प्राप्ति होती है। परन्तु घर देहरे में २१ तीर्थंकरकी प्रतिमा स्थापनी ऐसे जो विवेकविलास ग्रन्थ में कहा है सो अपेक्षा वचन है जैसे सर्व शास्त्र कए सरीखे हैं तो भी कितनेक प्रथम पहर में ही पढ़े जाते हैं, दूसरे पहर में नहीं। तैसे यह भी समझना। तथा घरदेहरा और बड़ा मन्दिर कैसा करना, कितने प्रमाणके ऊंचे जिनबिंब स्थापन करने, कैसे वर्ण के स्थापने किस रीती से प्रतिष्ठा करनी, किस किस तीर्थंकरकी प्रतिमा स्थापन करनी इत्यादि जो अधिकार है सो जो जिनाज्ञा में वर्त्तते हैं तथा जिन प्रतिमा के गुणग्राहक हैं उनके समझने का है, परन्तु ढूंढको सरीखे मिथ्यादृष्टि जिनाज्ञा से पराङ्मुख और श्रीजिन प्रतिमा के निंदकोंके समझने का नहीं है।

(५६) "श्रीआचारांग सूत्र के मूलपाठ में पांच महाव्रतकी २५ भावना कही

हैं, और टीका में पांच भावना सम्यक्त्वकी अधिक कही" उत्तर-श्रीआचारांग सूत्र के मूलपाठ में चारित्रकी २५ भावना कही है और निर्युक्ति में पांच भावना सम्यक्त्वकी अधिक कही है. सो सत्य है; और निर्युक्ति माननी नंदिसूत्र के मूल पाठ मेंकहा है और सम्यक्त्व सर्व व्रतोंका मूल है। जैसे मूल विना वृक्ष नहीं रह सकता है तैसे सम्यक्त्व विना व्रत नहीं रह सकते हैं। ढूंढिये व्रत की पच्चीस भावना मान्य करते है और सम्यक्त्वकी पांच भावना मान्य नहीं करते हैं इससे निर्णय होता है कि उनको सम्यक्त्वकी प्राप्ति ही नहीं है ॥

(५७) 'कर्मग्रन्थ में नव में गुणठाणे तक मोहनी कर्मका जो उदय लिखा है सो सूत्र के साथ नहीं मिलता है" उत्तर—कर्म ग्रन्थ में कही बात सत्य है। जेठमलने यह बात सूत्र के साथ नहीं मिलती है ऐसे लिखा है. परन्तु वत्तीस सूत्रों में किसी भी ठिकाने चौदह गुणठाणे ऊपर किसीभी कर्म प्रकृतिका बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता प्रमुख गुणठाणे का नाम लेकर कहा ही नहीं है. इसवास्ते जेठमल का लिखना मिथ्या है ॥

(५८) "श्रीआचारांग की चूर्णि में-कणेरकी कांबी (छटी) फिराइ ऐसे लिखा है" उत्तर-जेठमल का यह लिखना मिथ्या है। क्योंकि आचारांग की चूर्णि में ऐसा लेख नहीं है ॥

(५९ से ७९ पर्यंत) इक्कीस बोल जेठमल ने निशीथ चूर्णिका नाम लेकर लिखे हैं वो सर्व मिथ्या है, क्योंकि जेठमल के लिखे मूजिब निशीथ चूर्णि में नहीं हैं ॥

(८०) श्रीआवश्यक सूत्र के भाष्य में श्रीमहावीर स्वामी के २७ भव कहे तिन में मनुष्य से कालकरके चक्रवर्ती हुए ऐसे कहा है" उत्तर-मनुष्य काल करके चक्रवर्ती न होवे ऐसा शास्त्र का कथन है तथापि प्रभु हुए इससे ऐसे समझना कि जिनवाणी अनेकांत है, इसवास्ते जिनमार्ग मे एकांत खींचना सो मिथ्यादृष्टिका काम है। और ढूंढियों के माने वत्तीस सूत्रों में तो वीरभगवंत के २७ भवों का वर्णन ही नहीं है तो फेर जेठमल को इसबात के लिखने का क्या प्रयोजन था ?

(८१) सिद्धांत में अरिष्ठनेमि के आठरां गणधर कहे और भाष्य में ग्यारह कहे सो मतांतर है ॥

(८२) सूत्र में पार्श्वनाथ के (२८) गणधर कहे और निर्युक्ति में (१०) कहे ऐसे जेठमलने लिखा है, परन्तु किसीभी सूत्र या निर्युक्ति प्रमुख में श्रीपार्श्वनाथ के (२८ गणधर नहीं कहे है, इसवास्ते जेठमलने कोरी गप्प ठोकी है ॥

(८३. "गृहस्थपणे में रहे तीर्थंकरको साधु वंदना करे सो सूत्र विरुद्ध है" उत्तर-जबतक तीर्थंकर गृहस्थपणे में होवे तबतक साधुको उनके साथ मिलाप होताही नहीं है ऐसी अनादि स्थिति है। परन्तु साधु द्रव्य तीर्थंकरको वंदना करे यह तो सत्य है। जैसे श्रीऋषभ देवके साधु चउविसथ्था (लोगस्स) कहते हुए श्रीमहावीर पर्यंतको द्रव्यनिक्षेपे वंदना करते थे। तथा हालमें भी लोगस्स कहते थे। तथा हाल में भी लोगस्स कहते हुए उसी तरह द्रव्य जिनको वंदना होती है॥ *

(८४-८५) "श्रीसंथारापयन्ना में तथा चन्द्रविजयपयन्ना में एवंती सुकुमाल का नाम है और एवंती सुकुमाल तो पांच में आरे में हुआ है इसवास्ते वो पयन्ने चौथे आरेके नहीं" उत्तर-श्रीठाणांग सूत्र तथा नंदिसूत्र में भी पांच में आरेके जीवोंका कथन है तो यह सूत्रभी चौथे आरेके बने नहीं मानने चाहिये।

ऊपर मूजिब जेठमल ढूंढकके लिखे ८६ प्रश्नोंके उत्तर हमने शास्त्रानुसार यथास्थित लिखे हैं, और इससे सर्व सूत्र, पचांगी ग्रंथ, प्रकरण प्रमुख मान्य करने योग्य हैं ऐसे सिद्ध होता है। क्योंकि समदृष्टि करके देखने से इनमें पर स्पर कुछ भी विरोध मालूम नहीं होता है, परन्तु जेकर जेठमल प्रमुख ढूंढिये शास्त्रों में परस्पर अपेक्षा पूर्वक विरोध होने से मानने लायक नहीं गिनते हैं तो तिनके माने बत्तीस सूत्र जो कि गणधर महाराजाने आप गूंथे हैं ऐसे वो कहते हैं, उन में भी परस्पर कितनाक विरोध है। जिस में से कितनेक प्रश्नों के तौरपर लिखते हैं॥

(१) श्रीसमवायांग सूत्र में श्रीमल्लिनाथ जी के (५९०००) अवधि ज्ञानी कहे हैं, और श्रीज्ञाता सूत्र में (२०००) कहे हैं यह किस तरह॥

(२) श्रीज्ञाता सूत्र के पांच में अध्ययन में कृष्णकी (३२०००) स्त्रियां कही हैं, और अंतगडदशांगके प्रथमाध्ययन में (१६०००) कही हैं यह कैसे॥

(३) श्रीरायपसेणी में श्रीकेशीकुमारको चार ज्ञान कहे हैं, और श्रीउत्तरा ध्ययन सूत्र में अवधिज्ञानी कहा सो कैसे॥

(४) श्रीभगवती सूत्र में श्रावक होवे सो त्रिविध त्रिविध कर्मा दानका पच्चक्खाण करे ऐसे कहा, और श्रीउपासकदशांगसूत्र में आनंद श्रावकने

---

* पगामसज्झाय (साधुप्रतिक्रमण) मे भी द्रव्यजिनको वंदना होती है।

"नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ महावीर पज्जवसाणाण" इतिवचनात्॥

हल चलाने खुले रक्खे यह क्या ॥

(५) तथा कुम्हार श्रावकने आवे चढ़ाने खुले रक्खे ॥

(६) श्रीपन्नवणासूत्र में वेदनी कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की कही, और उत्तराध्ययन में अंत मुहूर्त की कही ॥

(७ श्रीउत्तराध्ययन में "लसन" अनंतकाय कहा, और श्रीपन्नवणाजी में प्रत्येक कहा ॥

(८) श्रीपन्नवणासूत्र में चारों भाषा बोलने वालेको आराधक कहा, और श्रीदशवैकालिक सूत्र में दो ही भाषा बोलनी कहीं ॥

(९) श्रीउत्तराध्ययन में रोग के होनेपर भी साधु दवाई न करे ऐसे कहा, और श्रीभगवतीसूत्र में प्रभुने बीजोरापाक दवाई के निमित्त लिया ऐसे कहा ॥

(१०) श्रीपन्नवणाजी में अठारवें कायस्थिति पद में स्त्री वेद की कायस्थिति पांच प्रकार की कही तो सर्वज्ञ के मत में पांच बातें क्या ॥

(११) श्रीठाणांग सूत्र में साधु को राजपिंड न कल्पे ऐसे कहा,और अंतगड सूत्र में श्रीगौतमस्वामीने श्रीदेवीके घर में आहार लिया ऐसे कहा ॥

(१२) श्रीठाणांगसूत्र में पांच महा नदी उतरनी ना कही, और दूसरे लगते ही सूत्र में हां कही यह क्या ?

(१३) श्रीदशवैकालिक तथा आचारांगसूत्र में साधु त्रिविध त्रिविध प्राणतिपात का पच्चक्खाण करे ऐसे कहा, और समवायांग सूत्र में तथा दशाश्रुतस्कंध में नदी उतरनी कही यह क्या ॥

(१४) श्रीदशवैकालिक में साधुको लूण प्रमुख अनाचीर्ण कहा, और आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के पाहिले अध्ययन के दश में उद्देसे में साधु को लूण किसी ने विहराया होवे तो वो लूण साधु आप खालेवे, अथवा सांभोगिकको बांटके देवे ऐसे कहा, यह क्या ॥

(१५) श्रीभगवती सूत्र में नींब तीखा कहा, और उत्तराध्ययन सूत्र में कौड़ा कहा यह क्या ॥

(१६) श्रीज्ञातासूत्र में श्रीमल्लिनाथजी ने (६०८)के साथ दीक्षा ली ऐसे कहा और श्रीठाणांग सूत्र में ६ पुरुष साथ दीक्षा ली ऐसे कहा यह क्या ? ॥

(१७) श्रीठाणांगसूत्र में श्रीमल्लिनाथजीके साथ ६ मित्रों ने दिक्षा ली ऐसे कहा, और श्रीज्ञातासूत्र में श्रीमल्लिनाथ जी को केवल ज्ञान होए बाद ६ मित्रों ने दिक्षा ली ऐसे कहा यह क्या ?

(१८) श्रीसूयगडांगसूत्र में कहा है कि साधु आधाकर्मी आहार लेता हुआ कर्मों से लिपायमान होवे भी, और नहीं भी होवे, इस तरह एकही गाथा में एक दूसरेका प्रतिपक्षी ऐसे दो प्रकारका कथन है, यह क्या ॥

ऊपर मूजिब सूत्रों में भी बहुत विरोध हैं परन्तु ग्रन्थ अधिक हो जाने के भयसे नहीं लिखागया हैं तोभी जिनको विशेष देखने की इच्छा होवे उन्होंको श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायकृत वीरस्तुति रूप हुंडीके स्तवनका पंडित श्रीपद्मविजय जी का करा बालावबोध देख लेना चाहिये ॥

जेकर ढुंढिये बत्तीससूत्रोंको परस्पर अविरोधी जानके मान्य करते हैं और अन्य सूत्र तथा ग्रन्थोंको विरोधी मानके नहीं मान्य करते हैं तो उपर लिखे विरोध जो कि बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ में ही हैं तिनका निर्युक्ति तथा टीका प्रमुख की मददके विना निराकरण कर देना चाहिये, हमको तो निश्चय ही है कि ढूंढीये जोकि जिनाज्ञा से पराङ्मुख हैं वे इनका निराकरण बिलकुल नहीं कर सकतेह, क्योंकि इनमें कोई तो पाठांतर, कोई उत्सर्ग, कोई अपवाद, कोई नय, कोई विधिवाद, और कोई चरितानुवाद इत्यादि सूत्रोंके गंभीर आशय हैं, उनको तो समुद्र सरीखी बुद्धिके धनी टीकाकार प्रमुखही जानें और कुल विरोधोंका निराकरण करसकें परन्तु ढूंढीयोंने तो फकत जिन प्रतिमाके द्वेषसे सर्व शास्त्र उत्थापे हैं तो इनका निराकरण कैसे करसकें ? ॥ इति ॥

---

(२६) सूत्रों में श्रावकों ने जिनपूजा करी कही है

२६ वें प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "सूत्र में किसी श्रावकने पूजाकरी नहीं कही है" उत्तर-जेठमलने आंखे खोलके देखा होता तो दीख पड़ता कि सूत्रों में तो ठिकाने२ पूजा का और श्रीजिनप्रतिमाकी- अधिकार है जिन में से कितनेक अधिकारोंकी शुचि (फैरिस्त) पत्र दृष्टांत तरीके भव्य जीवोंके उपकार निमित्त यांहां लिखते हैं ॥

श्रीआचारांगसूत्र में सिद्धार्थ राजा को श्रीपार्श्वनाथ का संतानीय श्रावक कहा है, उन्होने जिनपूजा के वास्ते लाख रूपये दीये तथा अनेक जिनप्रतिमा की पूजाकरी ऐसे कहा है इस अधिकार में सूत्रके अंदर "जायेअ" ऐसा शब्द है जिस का अर्थ याग (यज्ञ) होता है और याग शब्द देवपूजा वाची है "यज-देवपूजा या मिति वचनात्" तथा उनको श्रावक होनेसे अन्य यागका संभव होवेही

नहीं इस वास्ते उन्होने जिन पूजा करी है यही बात निः संशय है *

श्रीसूयगडांगसूत्र-निर्युक्ति-में जिन प्रतिमाको देखकर आर्द्रकुमार को प्रति-बोध हुआ और जबतक दीक्षा अंगीकार नहीं करी तबतक जिनप्रतिमा की पूजा करी ऐसा कथन है ॥

(३) श्रीसमवायांग सूत्र में समवसरण के अधिकार वास्ते कल्पसूत्र की भलां-वणादी है, उस मूजिब श्रीबृहत्कल्प सूत्र के भाष्य में समवसरण का अधिकार

---

* कितनेक बेसमज, वाचनकला से शून्य और शास्त्रकारके अभिप्राय से अज्ञ ढूंढीये इस ठिकाने कुतर्क करते हैं कि 'आत्मारामजी ने लिखा है कि सिद्धार्थ राजा ने पूजाकरी यह कथन आचारांगसूत्र में है सो झूठ है, क्योंकि आचारांग में यह कथन नहीं है" इसका उत्तर-जो आपझूठा होता है उसको सारा जगत् ही झूठा प्रतीत होता है, क्योंकि श्रीआत्माराम जी के पूर्वोक्त लेख में तुमारे कहे मूजिब लेख ही नहीं है, उन के लेख में तो सिद्धार्थ राजाको श्रावक सिद्ध करने वास्ते श्रीआचारांगसूत्र का प्रमाणदिया है; जो कि उन के "श्रीआचारांगसूत्र में सिद्धार्थ राजा को श्रीपार्श्वनाथका संतानीय श्रावक कहा है" इस लेखसे जाहिर होता है, और पूजाके वास्ते उन्होंने लाख रुपये दिये इत्यादि जो वर्णन है सो श्रीदशाश्रुतस्कंधके आठवें अध्ययन के अनुसार है क्योंकि उन्होंने "जायेश" यह पाठ लिखा है, सो श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्र के आठवें अध्ययन कल्पसूत्र में खुलासा है इसवास्ते तुमारा कहना झूठ है, तुमने श्रीआत्मारामजी का आशय समझाही नहीं है, तो भी (तुष्यन्तु दुर्जनाः) इस न्याय से जेकर तुमको श्रीआचारांग काही प्रमाण लेना है तो लीजिए, श्रीआचारांगसूत्र में भी श्रीमहावीरस्वामी के जन्म वर्णन में यह पाठ है (णिव्वत्तदसाहंसि वोक्कंतंसि सुचिभूतंसि) जरा हृदय चक्षुको खोलके इस पाठका भावार्थ शोचोगे तो मालूम होजावेगा कि सिद्धार्थराजा ने स्थितिपतिकामें क्यार काम करे! क्योंकि इस ठिकाने तो शास्त्रकारने समुच्चयही वर्णन किया है कि दशाहिका स्थितिपतिका से निवृत्त होय पीछे नामस्थापन करा तो इस से सिद्ध हुआ, कि इस ठिकाने शास्त्रकारने स्थितिपतिका का सूचन किया और स्थितिपतिका का खुलासा वर्णन श्रीदशाश्रुतस्कंधके आठवें अध्ययन में है इस से शास्त्रकारका यही आशय प्रकट होता है कि जैसे श्रीदशाश्रुतस्कंध में स्थितिपतिका खुलासा वर्णन श्रीमहावीरस्वामीके जन्मवर्णनमें जानलेना तो सिद्ध हुआकि श्रीदशाश्रुतस्कंध में जैसे सिद्धार्थ राजाकी करी पूजाका वर्णन है ऐसे ही श्रीआचारांगसूत्र में भी है इसवास्ते श्रीआत्मारामजीका पूर्वोक्त लेख सत्य है।

विस्तार से है उस में लिखा है कि समवसरण में पूर्व सन्मुख भाव अरिहंत विराजते हैं और तीन दिशा में उनके प्रतिबिंब अर्थात् स्थापना अरिहंत विराजते हैं॥

(४) श्रीठाणांग सूत्र में स्थापना सत्य कही है ॥

(५) श्रीभगवती सूत्र में तुंगीया नगरी के श्रावकोंने जिन प्रतिमा पूजी तिसका अधिकार है ॥

(६) श्रीज्ञाता सूत्र में द्रौपदी ने जिन प्रतिमाकी सतरें भेदी पूजा करी तिसका अधिकार है ॥

(७) श्रीउपासकदशांग सूत्र में आनंदादि दश श्रावकोंने जिन प्रतिमा वांदी पूजी ऐसा अधिकार है ॥

(८) श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र में साधु जिन प्रतिमाकी वैयावच्च करे ऐसे कहा है ॥

(९) श्रीउववाइसूत्र में बहुते जिन मंदिरोंका अधिकार है ॥

(१०) इसी सूत्र में अंबड श्रावक ने जिन प्रतिमा वांदी पूजी ऐसे कहा है ॥

(११) श्रीरायपसेणीसूत्र में सुर्याभ देवताने जिनप्रतिमा पूजी कहा है ॥

(१२) इसी सूत्र में चित्रसारथी तथा प्रदेशीराजा दोनों श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी ऐसे कहा है ॥

(१३) श्रीजीवाभिगमसूत्र में विजयदेवता प्रमुख देवताओं के जिन प्रतिमा को पूजनेका अधिकार है ॥

(१४) श्रीजंबूद्वीपपन्नत्तीसूत्र में यमक देवआदिकोंने पूजा करी है ॥

(१५) श्रीदशवैकालिक सूत्र-निर्युक्ति-में श्रीशय्यंभवसूरिके जिन प्रतिमाको देखकर प्रतिबोध होने का अधिकार है ॥

(१६) श्रीउत्तराध्ययन सूत्र-निर्युक्ति-दशवें अध्ययन में श्रीगौतमस्वामी अष्टापद परवत के ऊपर यात्रा करने को गये ऐसे कहा है ॥

(१७) इसी सूत्र के २९ में अध्ययन में "थय थूइ मंगल" में थापना को वंदना कही है ॥

(१८) श्रीनंदिसूत्र में विशालानगरी में श्रीमुनिसुव्रतस्वामीका महाप्रभाविक थूभ कहा है ॥

(१९) श्रीअनुयोगद्वारसूत्र में थापना माननी कही है ॥

(२०) श्रीआवश्यकसूत्र में भरत चक्रवर्तीने जिन मंदिर बनवाया तिसका अधिकार है ॥

(२१) इसी सुत्र में वग्गुर श्रावकने श्रीमल्लिनाथजी का मंदिर बनवाया ॥

(२२) इसी सूत्र में कहा है कि फूलोंसे जिनपूजा करे तो संसार क्षय होवे।

(२३) इसी सूत्र में कहा है कि प्रभावती श्राविका (उदायनराजाकीराणी) ने जिनमंदिर बनवाया तथा जिनप्रतिमाके आगे नाटक करा ॥

(२४) इसी सूत्र में कहा है कि श्रेणिकराजा एक सौ आठ (१०८) सोने के जव नित्य नये बनवाके उसका जिन प्रतिमा के आगे स्वस्तिक करता था ॥

(२५) इसी सूत्र में कहा है कि साधु कायोत्सर्ग में जिनप्रतिमा की पूजाकी अनुमोदना करे ॥

(२६) इसी सूत्र में कहा है कि सर्व लोक में जो जिनप्रतिमा हैं उन की आराधना निमित्त साधु तथा श्रावक कायोत्सर्ग करे ॥

(२७) श्रीव्यवहारसूत्र में प्रथम उद्देशे जिनप्रतिमा के आगे आलोयणा करनी कही है ॥

(२८) श्री महानिशीथसूत्र में जिनमंदिर बनवावे तो श्रावक उत्कृष्टा बारव देवलोक पर्यंत जावे ऐसा कहा है ॥

(२९) श्रीमहाकल्पसूत्र में जिनमंदिर में साधु श्रावक वंदना करनेको न जावे तो प्रायश्चित्त लिखा है ॥

(३०) श्रीजीतकल्पसूत्र में भी प्रायश्चित्त लिखा है ॥

(३१) श्रीप्रथमानुयोग में अनेक श्रावक श्राविकायोंने जिनमंदिर बनवाए तथा पूजा करी ऐसा अधिकार है ॥

इत्यादि सैंकड़ों ठिकाने जिनप्रतिमाकी पूजा करनेका तथा जिनमंदिर बनवाने वगैरा का खुलासा अधिकार है। और सर्व सूत्र देखके सामान्यपणे विचार करने से भी मालूम होता है कि चौथे आरे में जितने मंदिर थे उतने आजकाल नहीं हैं,क्योंकि सूत्रों में जहां जहां श्रावकोंका अधिकार है वहां वहां "ण्हायाकयबलिकम्मा" अर्थात् स्नान करके देवपूजा करी ऐसा प्रत्यक्ष पाठ है। इससे सर्व श्रावकोंके घरमें जिनमंदिर थे और वे निरंतर पूजा करते थे ऐसे सिद्ध होता है। तथा दशपूर्वधारी के श्रावक संप्रतिराजाने सवालाख जिनमंदिर और सवाक्रोड़ जिनबिंब बनवाए हैं जिन में से हजारों जिनमंदिर और जिनप्रतिमा अद्यापि पर्यंत विद्यमान हैं रतलाम, नाडोल आदि नगरोंमें तथा शत्रुंजय गिरनारादि तिर्थों में बहुत ठिकाने संप्रतिराजा के बनवाए जिनमंदिर दृष्टि गोचर होते हैं, और भी अनेक जिनमंदिर हजारों वर्षों के बने हुए दिखलाई देते

हैं, तथा आबुजी ऊपर विमलचंद्र तथा वस्तुपालतेजपाल के बनवाए क्रोड़ों रुपये की लागत के जिनमंदिर जिनकी शोभा अवर्णनीय है यद्यपि विद्यमान हैं तोभी मन्दमति जेठमल ढूंढक ने लिखा है कि' किसी श्रावकने जिनप्रतिमा पूजी नहीं है" तो इससे यही मालूम होता है कि उस के हृदय चक्षुतो नहीं थे परन्तु द्रव्य का भी अभाव ही था ! क्योंकि इसी कारण से उसने पूर्वोक्त सूत्रपाठ अपनी दृष्टि से देखे नहीं होवेंगे ॥ ॥ इति ॥

---

(२७) सावद्यकरणी बाबत ॥

(२७) वें प्रश्नोत्तर में जेठमल लिखता है कि "सावद्यकरणी में जिनाज्ञा नहीं है" यह लिखाण एकांत होनेसे जेठमलने आज्ञानताके कारण किया होवे ऐसे मालूम होता है, क्योंकि सावद्य निरवद्यकी उसको खबर ही नहीं थी ऐसे उसके इस प्रश्नोत्तर में लिखे २४ बोलों से सिद्ध होता है। जेठमल जिसर कार्य में हिंसा होती होवे उन सर्व कार्यों को सावद्यकरणी में गिनता है परन्तु सो झूठ है। क्योंकि जिन पूजादि कितनेक कार्यों में स्वरूप से तो हिंसा है परन्तु जिनाज्ञानुसार होने से अनुबंधे दया ही है परन्तु अभव्य, जमालिमती और ढूंढिये प्रमुख जो दया पालते हैं, सो स्वरूपे दया है परन्तु जिनाज्ञा बाहिर होने से अनुबंधे तो हिंसा ही है इसवास्ते कितनेक धर्म कार्यों में स्वरूपे हिंसा और अनुबंधे दया है और तिसका फलभी दयाका ही होता है तथा ऐसे कार्य में जिनेश्वर भगवंतने आज्ञा भी दी है, जिनमें कितनेक बोल दृष्टांत तरीके लिखते हैं ॥

(१) श्रीआचारांगसूत्र के दूसरे श्रुतस्कंधके ईर्या अध्ययन में लिखा है कि साधु खाडे में पड़जावेतो घांस वेलडी तथा वृक्षको पकड़कर बाहिर निकल आवे।

(२) इसी सूत्र में लिखा है कि साधु खांड शक्करके बदले लूंण ले आया होवे तो वो खाजावे, अपने आप न खाया जावे तो सांभोगिक को बांट देवे ॥

(३) इसी सूत्र में लिखा है कि मार्ग में नदी आवे तो साधु इस तरह उतरे ॥

(४) इसी सूत्र में कहा है कि साधु मृगपृच्छा में झूठ बोले ॥

(५) श्रीसूयगडांगसूत्र के नववें अध्ययन में कहा है कि मृगपृच्छा के विना साधु झूठ न बोले, अर्थात् मृगपृच्छा में बोले ॥

(६) श्रीठाणांगसूत्र के पांचवें ठाणे में पांचकारणसे साधु साध्वी को पकड़

लेव ऐसे कहा है, इनी पाचों कारणों में से येभी है कि नदी में वहती साध्वी को साधु बाहिर निकाले ऐसे कहा है ॥

(७) श्रीभगवती सूत्र में कहा है कि श्रावक साधुको असुझता और सचित्त चार प्रकार का आहार देवे तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा करे ॥

(८) श्रीउववाइसूत्रमें कहा है कि साधु शिष्यकी परीक्षावास्ते दोष लगावे ॥

(९) श्रीउत्तराध्ययनसूत्रमें कहा है कि साधु पडिलेहणा करे उसमें अवश्य वायुकायकी हिंसा होती है ॥

(१०) श्रीबृहत्कल्पसूत्र में चर्बीका लेप करना कहा है ॥

(११) इसी सूत्र में कारण से साध्वीको पकड़ना कहा है ॥

इत्यादि कितने ही कार्य जिन को एकांत पक्षी होनेसे जेठमल ढूंढक सावद्य गिनती है परन्तु इन में भगवंतकी आज्ञा है. इस वास्ते कर्म का बंधन नहीं है श्री आचारांग सूत्र के चौथे अध्ययन के दूसरे उद्देशेमें कहा है कि देखने में आश्रवका कारण है परन्तु शुद्ध प्रणामसे निर्जरा होती है, और देखनेमें संवर का कारण है परन्तु अशुद्ध प्रणामसे कर्मका बंधन होता है ॥

तथा सम्यग्दृष्टि श्रावकोंने पुण्य प्राप्ति के निमित्त कितनेक कार्य करे है, जिन में स्वरूपे हिंसा है परन्तु अनुबंधे दया है, और उनको फल भी दयाका ही प्राप्त हुआ है, ऐसे अधिकार सूत्रोंमें बहुत है जिन में से कुछक अधिकार लिखते है ॥

(१) श्रीज्ञाता सूत्र में कहा है कि सुबुद्धि प्रधान ने राजा के समझाने वास्ते गंदी खाइका पाणी शुद्ध (साफ) करा ॥

(२) श्रीमल्लिनाथ जी ने ६ राजा के प्रतिबोधने वास्ते मोहनघर कराया ॥

(३) उन्होंने ही ६ राजाओंका अपने ऊपरका का मोह हटाने के वास्ते अपने स्वरूप जैसी पूतली में प्रतिदिन आहार के ग्रास गेरे जिससे उनमें हजारों त्रस जीवोंकी उत्पत्ति और विनाश हुआ ॥

(४) उववाइसूत्रमें कोणिक राजाने भगवान्की भक्ति वास्ते बहुत आडंबरकरा ॥

(५) कोणिकराजाने रोज भगवंतकी खबर मंगवानेवास्ते आदमियों की डांक बांधी ॥

(६) प्रदेशी राजाने दानशाला मडाइ जिस में कई प्रकार का आरंभ था, परन्तु केशीकुमार ने उसका निषेध नहीं करा किन्तु कहा कि हे राजन्! पूर्व मनोज्ञ होके अब अमनोज्ञ नहीं होना ॥

(७) प्रदेशीराजा ने केशी गणधरको कहा कि हे स्वामिन्! कल को मैं

समग्र [कुल] अपनी ऋद्धि और आडंबर के साथ आकर अपको वंदना करुंगा, और वैसे ही करा, परन्तु केशीगणधरने निषेध नहीं करा ॥

(८) चित्रसारथी ने प्रदेशी राजा को प्रतिबोध कराने वास्ते श्रीकशीगणधरके पास लेजाने वास्ते रथ घोड़े दौड़ाये ॥

(९) सूर्याभ देवताने जिन भक्ति के वास्ते भगवंत के समीप नाटक करा ॥

(१०) द्रौपदी ने जिन प्रतिमाकी सतरे भेदी पूजा करी ॥

मंदमति जेठमलने इस प्रश्नोत्तर में जो जो बोल लिखे हैं उन में "अपनी इच्छा" ऐसा शब्द उन कार्योंको जिनाज्ञा विना के सिद्ध करने वास्ते लिखा है; परन्तु उन में से बहुते कृत्य तो पुन्य प्राप्तिके निमित्त ही करे हैं जिन में से कितनेक कारण सहित निचे लिखे जाते हैं ॥

(१) कोणिकराजाने प्रभुकी बधाई में नित्य प्रति साढ़े बारह हजार रुपये दीये सो जिनभक्ति के वास्ते ॥

(२ अनेक राजाओं ने तथा श्रावकों ने दीक्षा महोत्सव कीये सो जैनशासन की प्रभावना वास्ते ॥

(३) श्रीकृश्नमहाराजाने दीक्षा की दलाली वास्ते द्वारिका नगरी में पड़ह [ढंढोरा] फिरवाया सो धर्म की वृद्धि वास्ते ॥

(४) इन्द्र तथा देवतादिकोंने जिन जन्ममहोत्सव करे सो धर्म प्राप्ति के वास्ते ऐसा श्रीजंबूद्वीपपन्नत्ती सूत्र का कथन है ॥

(५) देवते नंदीश्वरद्वीप में अट्ठाई महोत्सव करते हैं सो धर्म प्राप्तिके वास्ते ।

(६) मुनी जंघाचारण तथा विद्याचारण लब्धि फोरते हैं सो जिन प्रतिमा के वांदने वास्ते ॥

(७) शंख श्रावकने सधर्मीवात्सल्य किया सो सम्यक्त्वकी शुद्धिके वास्ते इस मूजिब अद्यापि पर्यंत सधर्मी वात्सल्यका रिवाज चलता है, बहुते पुण्यवंत श्रावक सधर्मीकी भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं। जेकर जेठमल इसका अर्थात् सधर्मीवात्सल्य करनेका निषेध करता है और लिखता है कि इस कार्य में उस की इच्छा है, जिनाज्ञा नहीं है तो ढूंढिये अपने सधर्मी को जीमाते हैं, संवत्सरी का पारणा कराते हैं, पूज्य की तिथि में पोसह करके अपने सधर्मीको जीमाते है इन में जेठमल और ढूंढिये साधु पाप मानते होवेंगे, क्योंकि इन कार्यों में हिंसा जरूर होती है। जब ऐसे कार्य में पाप मानते हैं तो ढूंढिये तेरापंथी भीखमके भाई बनके यह कार्य किसवास्ते करते है ? क्या नरक में जानेवास्ते करते है ?

(८) तेतली प्रधान को पोट्टीलदेवताने समझाया सो धर्म के वास्ते ॥

(९) तीर्थंकर भगवंतने वर्षीदान दीया सो पुण्यदान धर्म प्रकट करने वास्ते।

(१०) देवता जिनप्रतिमा तथा जिनदाढ़ा पूजते हैं सो मोक्ष फल वास्ते ॥

(११) उद्रायनराजा बड़े आडंबरसे भगवंतको वंदना करने वास्ते गया सो पुण्य प्राप्ति वास्ते ॥

इत्यादिक अनेक कार्य सम्यग्दृष्टियोंने करे हैं जिन में महापुण्य प्राप्ति और तीर्थंकर की आज्ञा भी है। जेकर जेठमल एकांत दया से ही धर्म मानता है तो श्रीभगवतीसूत्र के नववें शतक में कहा है कि जमालिने शुद्ध चारित्र पाला है, एक मक्खी की पांख भी नहीं दुखाई है, परन्तु प्रभुका एकही वचन उत्थापने से उसको अहिंसा के फलकी प्राप्ति नहीं किन्तु हिंसा के फलकी प्राप्ति हुई। इसवास्ते यह समझना, कि जिनाज्ञाविनाकी दया तो स्वरूपे दया है, परन्तु अनुबंधतो हिंसा ही है, और इसी वास्ते जमालिकी दया साफल्यता को प्राप्त नहीं हुई; तो अरे ढूंढियो! उस सरीखी दया तुम्हारे से पलती भी नहीं है मात्र दया दया मुख से पुकारते हो परन्तु दयाक्या है सो नहीं जानते हो और भगवंतके वचन तो अनेक ही लोपते हो इसवास्ते तुमारा निस्तारा कैसे होवेगा सो विचार लेना? ॥ ॥ इति ॥

---

(२८) द्रव्यनिक्षेपा वंदनीक है इसबाबत ॥

(२८) वें प्रश्नोत्तर में "द्रव्यनिक्षेपा वंदनीक नहीं है" एसे सिद्ध करने वास्ते जेठमल लिखता है कि 'चौवीसथ्थे में जो द्रव्य जिनकी वंदना होती होवे तो वोह तो चारों गतियों में अविरती अपच्चक्खाणी है उनको वंदना कैसे होवे?" उत्तर-श्रीऋषभदेवके समय में साधु चौवीसथ्था करते थे उस में द्रव्यतीर्थंकर तेइस को तीर्थंकरकी भाववस्थाका आरोप करके वंदना करते थे, परन्तु चारों गतिमें जिस अवस्था में थे उस अवस्था को वंदना नहीं करते थे ॥

जेठमल लिखता है कि 'पहिले होचुके तीर्थंकरोंके समय में चौवीसथ्था कहने वक्त जितने तीर्थंकर होगये और जो विद्यमान थे उतने तीर्थंकरोंकी स्तुती वंदना करते थे" जेठमलका यह लिखना मिथ्या है। क्योंकि चौवीसथ्थे में वर्त्तमान चौवीसीके चौवीस तीर्थंकरके बदले कम तीर्थंकरको वंदना करना ऐसा कथन किसीभी जैन शास्त्र में नहीं है ॥

जेठमल लिखता है, कि श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में आवश्यक के ६ अध्ययन, कहे हैं उन में दूसरा अध्ययन उत्कीर्त्तना नामा है तो उत्कीर्त्तना नाम स्तुति वंदना करनेका है सो किसका उत्कीर्त्तन करना ? इस के उत्तर में चौवीसथ्था अर्थात् चौवीस तीर्थंकरका करना ऐसे समझना, परन्तु जेठे अज्ञानी के लिखे मूजिब चौवीसका मेल नहीं है ऐसे नहीं समझना; क्योंकि चौवीस न होंवे तो चौवीसथ्था न कहा जावे ॥

ऊपर लिखी बात में दृष्टांत तरीके जेठमल लिखता है कि "श्रीमहाविदेह में एक तीर्थंकरकी स्तुति करे चौवीसथ्था होता है" यह लिखना जेठमलका बिल कुल ही अकल विनाका है. क्योंकि इस मूजिब किसी भी जैनसिद्धांत में नहीं कहा है क्योंकि वहां तो जब साधुको दोष लगे तब पडिक्कमते हैं। इससे जेठमलका लेख स्वमतिकल्पना का है परन्तु शास्त्रोक्त नहीं ऐसे सिद्ध होता है। इस बाबत बारवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख के द्रव्यनिक्षेपा वंदनीक सिद्ध करा है ॥ ॥ इति ॥

(२६) स्थापना निक्षेपा वंदनीक है इस बाबत ॥

(२९) वें प्रश्नोत्तर में जेठमल स्थापना निक्षेपा वंदनीक नहीं, ऐसे सिद्ध करने के वास्ते कितनीक मिथ्या कुयुक्तियां लिखी हैं ॥

आद्य में श्रीदशवैकालिकसूत्र की गाथा लिखी है परन्तु उस गाथा से तो स्थापना निक्षेपा अच्छी तरह सिद्ध होता है यतः-

संघट्टइत्ता काएणं अहवा उवहिणामवि ।
खमेह अवराहं में वएज्ज न पुणोत्तिय ॥ १८ ॥

अर्थ-कायाकरके संघट्टा होवें-तो शिष्य कहें-मेरा अपराध क्षमो और दूसरीवार संघट्टादि अपराध नहीं करूंगा ऐसें कहें ॥

इस गाथा के अर्थ से प्रकट सिद्ध होता है कि गुरुके वस्त्रादि तथा पाटादिक.के संघट्टा करने से पाप है। यहां यद्यपि पाटादिक अजीव है इससे स्थापना निक्षेपा सिद्ध होता है, इसवास्ते जेठमल की करी कल्पना मिथ्या है। क्योंकि जिनप्रतिमा जिनवर अर्थात्, तीर्थंकरकी कहाती है, और वस्त्रादि उपाधि गुरु

महाराज की कही जाती है, इसवास्ते इन दोनों की जो भक्ति करनी सो देव गुरुकी हि भक्ति है, और इनकी जो आशातना करनी सो देवगुरुकी आशातना है। इससे स्थापना माननी तथा पूजनी सत्य सिद्ध होती है॥

जेठमल लिखता है कि' उपकरण प्रयोग परिणम्या द्रव्य है" सो महामिथ्या है कि उपकरण का प्रयोग परिणम्या पुग्दल किसी भी जैनशास्त्र में नहीं कहा है, परन्तु उसको तो मीसा पुग्दल कहा है। इसवास्ते मालूम होता है कि जेठमलको जैनशास्त्र की कुछ भी खबर नहीं थी। और जेठमल लिखता है कि 'जिस पृथ्वी शिलापट्ट के ऊपर बैठके भगवंतने उपदेश करा है उसी शिलापट्ट के ऊपर बैठ के गौतम सुधर्मास्वामी प्रमुखने उपदेश करा है" उत्तर-ऐसा कथन किसी भी जैनसिद्धांत में नहीं है, इसवास्ते जेठमल ढूंढक महामृषा वादी सिद्ध होता है॥

जेठमल गुरुके चरण बाबत कुयुक्ति लिख के अपना मत सिद्ध करना चाहता है, परन्तु सो मिथ्या है। क्योंकि गुरुके चरणकी रजभी पूजने योग्य है तो धरती ऊपर पड़े गुरुके चरणोंका तो क्या हि कहना? कितनेक ढूंढिये अपने गुरुके चरणों की रज मस्तकों पर चढ़ाते हैं, और जेठातो उनके साथभी नहीं मिलता है तो इससे यही सिद्ध होता है कि यह कोई महादुर्भवी था॥

इस प्रश्नोत्तर के अंत में कितनेक अनुचित वचन लिखके जेठे ने गुरुमहाराज की आशातना करी है, सो उसने संसार समुद्र में रुलनेका एक अधिक साधन पैदा करा है वार में प्रश्नोत्तर में इस बाबत विशेष खुलासा करके स्थापना निक्षेप वंदनीक सिद्ध करा है इसवास्ते यहां अधिक नहीं लिखते हैं॥इति॥

(३०) शासन के प्रत्यनीकको शिक्षा देनी इसबाबत।

(३०) वें प्रश्नोत्तर में जेमलने लिखा है कि 'धर्म अपराधी को मारने से लाभ है ऐसा जैनधर्मी कहते हैं" जेठे का यह लेख मिथ्या है। क्योंकि जैनमत के किसी भी शास्त्र में ऐसे नहीं लिखा है कि धर्म अपराधी को मारने से लाभ है। परन्तु जैनशास्त्र में ऐसे तो लिखा है कि जो दुष्ट पुरुष जिनशासनका उच्छेद करने वास्ते, जिन प्रतिमा तथा जिन मंदिर के खंडन करने वास्ते मुनिमहाराज की घात करने वास्ते तथा साध्वी का शील भंग करने वास्ते उद्यत होवे, उस अनुचित काम करने वालेको प्रथम तो साधु उपदेश देकर शांत करे जेकर वो पुरुष लोभी होवे तो उसको श्रावक जन धन देकर हटावे, जब किसी

तरह भी न माने तो जिस तरह उसका निवारण होवे उसी तरह करे। जो कहा है श्रीवीरजिन हस्त दीक्षित धर्म दासगणिकृत ग्रंथमें-तथाहि-

साहूण चेइयाणय पडिणीयं तह अवण्णवायं चजिण पवयणस्स अहियं सव्वथ्थामेण वारेइ ॥ २४१

और गुर्वादिके अपराधिका निवारण करना सो वयावच्च है, सोई श्री-उत्तराध्ययन सूत्र में श्रीहरिकेशी मुनिने कहा है-तथाहि-

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च मणप्पदोसो न मे अथ्थि कोइ। जक्खा हुवेयावडियं करेंति तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥ ३१ ॥

इस काव्य के तीसरे तथा चौथे पाद में हरिकेशी मुनिने कहा है कि यक्ष मेरी वेयावच्च करता है, उसने मेरी वेयावच्च के वास्ते कुमारों को हणा है ॥

इस बाबत जेठमल लिखता है 'हरिकेशीमुनि छद्मस्थ चारभाषा का बोल ने वालाथा उसका वचन प्रमाण नहीं" ऐसे वचन पुण्यहीन मिथ्यादृष्टिके विना अन्य कौन लिखे या बोले ? बड़ा आश्चर्य है कि सूत्रकार जिसकी महिमा और गुण वर्णन करते हैं, जिसको पांच समिति और तीन गुप्ति सहित लिखते हैं, ऐसे महामुनिका वचन प्रमाण नहीं ऐसे जेठा लिखता है ? परन्तु ऐसे लेख से जेठमलकुमतिकी भी मार्गानुसारीको मान्य करने योग्य नहीं है ऐसे सिद्ध होता है ॥

जेठमल लिखता है कि 'गुरुको बाधाकारी जूं लीख, मांगणु आदि बहुत सूक्ष्म जीवभी होते है तो इन का भी निराकर करना चाहिये" उत्तर-बेअकल जेठे का यह लिखना मिथ्या है, क्योंकि वो जीव कुछ द्वेषबुद्धिसे साधु को असाता पैदा नहीं करते हैं,-परन्तु उनका जाति स्वभावही ऐसा है, और इस से गुरु महाराजको कुछ विशेष असाता होने का भी संभव नहीं है। इसवास्ते इनके निवारण की कुछ जरूरत नहीं। परन्तु पूर्वोक्त दुष्ट पुरुषों के निवारण की तो अवश्य जरूरत है ॥

जेठमल सरिखे बेअकल रिखोंके ऐसे लेख तथा उपदेश से यह तो निश्च- होता है कि इनकी आर्या अर्थात् ढूंढनी साध्वी का कोई शील खंडन करे

अथवा ढूंढिये साधुओं को कोई प्रहार करे यावत् मरणांतकष्ट देवे तो भी अकल के दुश्मन ढूंढिये श्रावक उस कार्य करने वाले को अपराधी न गिने, रक्षाभी न करे, और उसका किसी प्रकार निवारणभी न करे इससे ढूंढिये तेरापंथी भीखम के भाई है ऐसा जेठमल ही सिद्ध कर देता है क्योंकि उसकी श्रद्धा उन जैसी ही है। यहां सत्य के खातर मालूम करना चाहते हैं कि कितनेक ढूंढियों की श्रद्धा पूर्वोक्त जेठे सदृश नहीं है. क्योंकि वो तो धर्म के प्रत्यनीकका निवारण करना चाहिये ऐसे समझते हैं। इसवास्ते जेठे की श्रद्धा समस्त जैनशास्त्रों से विपरीत है इतना ही नहीं बलकि ढूंढियों से भी विपरीत है॥

इस बाबत जेठेने लिखा है "जो ऐसी भक्ति करनेका जिन शासन में कहा होवे तो दो साधुओंको जला ने वाला गोशाला जीता क्यों जावे?" उत्तर-यह मूढजेठा इतनाभी नहीं समझता कि उस समय वीर भगवान् प्रत्यक्ष विराजते थे, और उन्होंने भावी भाव ऐसा ही देखा था। इसवास्ते ऐसी ऐसी कुतर्के करना तो महा मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी का काम है॥

इस प्रश्नोत्तर के अंतमें जेठेने श्रीआचारांगसूत्रका पाठ लिखा है जिसका भावार्थ यह है कि साधु को कोई उपसर्ग करे तो साधु उस का घात न चिंतवे। सो यह बात तो हमभी मंजूर करते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त पाठ में कहे मूजिब हरिकेशी मुनिने मन में ब्राह्मणों के पुत्रकी थोड़ी भी घात चिंतवन नहीं करी थी! और साधु को अपने वास्ते परिसह सहने का तो धर्म ही है, परन्तु जो कोई शासन को उपद्रवकरे तो साधु तथा श्रावक जिनाज्ञा पूर्वक यथा शक्ति उस के निवारण करने में ही उद्युक्त होवे॥ इति॥

---

(३१) बीस विहरमान के नाम बाबत

ढूंढियों के माने बत्तीस सूत्रों में बीस विहरमान के नाम किसी ठिकाने भी नहीं हैं परन्तु ढूंढिये मानते हैं सो किस शास्त्रानुसार? इस प्रश्न के उत्तर में जेठमल ढूंढक लिखता है कि 'तुम कहते हो वोही बीस नाम हैं ऐसा निश्चय मालूम नहीं होता है, क्योंकि श्रीविपाक सूत्र में कहा है कि भद्रनंदी कुमार ने पूर्वभव में महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरीगिणी नगरीमे जुगबाहुजिनको प्रतिलाभा और तुमतो पुण्डरीगिणी नगरी में श्रीसीमंधरस्वामी कहते हो सो कैसे मिलेगा उत्तर-श्रीसीमंधरस्वामी पुष्कलावती विजय में पुण्डरीगिणी नगरी में जन्मे हैं, सो सत्य है, परन्तु जिस विजय में जुगबाहु जिन विचरते हैं उस विजय में

क्या पुण्डरगिणी नामा नगरी नहीं होवेगी ? एकनाम की बहुत नगरियां एक देश में होती हैं जैसे काठियावाड़ सरीखे छोटे से प्रांत (सूबा) में भी एक नाम के बहुतशहर विद्यमान हैं तो वैसेही देश में जुदीर विजय में एक नामकी कई नगरियां होवें तो इस में कुछ आश्चर्य्य नहीं है, इसवास्ते जेठमलजी की करी कुयुक्ति झूठी है और जैन शास्त्रानुसार बीस विहरमान के नाम कहलाते हैं सो सच्चे हैं, जेकर जेठा हाल में कहलाते वीस नाम सच्चे सच्चे नहीं मानताहै तो कौनसे, बीस नाम सच्चे हैं। और वो क्यों नहीं लिखे ? विचारा कहां से लिखे फकत जिनप्रतिमा के द्वेषसे ही सर्व शास्त्र उत्थापे उन में विहरमानकी बातभी नहीं है तो अब लिखे कहां से ? जबबोलने का कोई ठिकाना न रहा तो सच्चे नाम को खोटे ठहराने के वास्ते धुयें की मुट्ठियां भरी हैं, परन्तु इस से उसके झूठे पंथकी कुछ सिद्धि नहीं हुई है, और होनेकी भी नहीं है ॥

तथा ढूंढिये बत्तीस सूत्रों में जो बात नहीं है सो तो मानतेही नहीं हैं तो यह बातभी उन को माननी न चाहिये,मतलब यह है कि बीस विहरमान भी नहीं मानने चाहियें; परन्तु उलटे कितनेक ढूंढिये बीस विहरमान की स्तुति करते हैं. जोड़कला बनाते हैं. परन्तु किसके आधार से बनाते हैं. इसके जवाब में उन के पास कुछ भी साबत नहीं है ॥

अन्त में जेठमल ने लिखा है कि इस बात में हमारा कुछ भी पक्षपात नहीं है यह लेख उसने ऐसा लिखा है कि जब कोई हथियार हाथ में नहीं रहा दोनो नीचे पड़गये तब शरण आने के वास्ते खुशामद करता है परन्तु यह उस ने मा या जाल का फंद रचा है इति ॥

(३२) चैत्यशब्दका अर्थ साधु तथा ज्ञान नहीं इस बाबत ।

(३२) वें प्रश्नोत्तर की आदि में चैत्यशब्द का अर्थ साधु ठहराने वास्ते जेठमल ने चौवीस बोल लिखे हैं सो सर्व झूठे हैं। क्योंकि चैत्य शब्दका अर्थ सूत्रों में किसी ठिकाने भी साधु नहीं कहा है। चौवीस ही बोललों में जेठेने चैत्यत्यशब्दका अर्थ "देवयं चेइयं" इसपाठ के अर्थ में साधु और अरिहंत ऐसा करा है, परन्तु यह दोनों ही अर्थ खोटे हैं। किसी भी सूत्र की टीका में अथवा टब्बे में ऐसा अर्थ नहीं करा है। उसका अर्थतो इष्ट देवजो अरिहंत तिसकी प्रतिमा की तरह "पज्जुवासामि" अर्थात् सेवा करूं ऐसा करा है, परन्तु कितनेक ढूंढियों ने हड़ताल से मेटके नवीन कितनेक पुस्तकों में जो मन मानासो

अर्थ लिख दिया है. इसवास्ते वो मानने योग्य नहीं है ॥

किसी कोषमें भी चैत्यशब्द का अर्थ साधु नहीं करा है और तीर्थंकर भी नहीं करा है. कोष में तो चैत्यं जिनौकस्तद्बिंबं चैत्यो जिनसभातरुः" अर्थात् जिन मंदिर और जिनप्रतिमाको' चैत्य"कहा है और चौतरेबन्ध वृक्षका नाम चैत्य' कहा है इनके उपरांत और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है। तथा तेइसवें और चौवीसवें बोल में आनंद तथा अंबड का अधिकार फिराकर लिखा है, उस बाबत सोलवें तथा सतरवें प्रश्न में हम लिख आए हैं। ढूंढिये चैत्य शब्दका अर्थ साधु कहते हैं परन्तु सूत्र में तो किसी ठिकाने भी साधु को चैत्य कहकर नहीं बुलाया है। "निग्गंथाणवा निग्गंथिणवा"ऐसे कहा है, "साहुवा साहुणीवा ऐसे कहा है और "भिक्खुवा भिक्खुणीवा" ऐसे भी कहा है. परन्तु "चैत्यवा चैत्या निवा" ऐसे तो एक ठिकाने भी नहीं लिखा है। तथा जेकर चैत्यशब्दका अर्थ साधु होवे तो सो चैत्यशब्द स्त्रीलिंग में तो बोलाही नहीं जाता है तो साध्वी को क्या कहना?

तथा श्रीमहावीरस्वामी के चौदह हजार साधु सूत्रोंमें कहे हैं परन्तु चौदह हजार चैत्य नहीं कहे, श्रीऋषभदेवस्वामी के चौरासी हजार साधु कहे परन्तु चौरासीहजार चैत्य नहीं कहे, केशीगणधरका पांचसौ साधुका परिवार कहा परन्तु चैत्य का परिवार नहीं कहा इसी तरह सूत्रों में अनेक ठिकाने आचार्य के साथ इतने साधु विचरते हैं ऐसे तो कहा है परन्तु किसी ठिकाने इतने चैत्य विचरते हैं ऐसे नहीं कहा है। फकत ढूंढियें स्वमति कल्पना से ही चैत्य शब्द का अर्थ साधु करते हैं परन्तु सो झूठा है ॥

और जेठेने जिस जिस बोल में चैत्यशब्दका अर्थ साधु करा है सो अर्थ फकत शब्द के यथार्थ अर्थ जानने वाले पुरुष देखेंगे तो मालूम होजावेगा कि उसका करा अर्थ विभक्ति सहित वाक्य योजना में किसी रीति से भी नहीं मिलता है। तथा जब सर्वत्र 'देवयं चेइयं" का अर्थ साधु अथवा तीर्थंकर ठहराता है तो श्रीभगवती सूत्र में दाढ़ा के अधिकार में भगवंतने गौतमस्वामी को कहा कि जिन दाढ़ा देवताको पूजने योग्य हैं यावत् देवयं चेइयं पज्जुवा सामि" ऐसा पाठ है उस ठिकाने ढुंढिये "चेइयं" शब्दका क्या अर्थ करेंगे; यदि "साधु" अर्थ करेंगे तो यह उपमा दाढ़ा के साथ अघटित है और यदि तीर्थंकर ऐसा अर्थ करेंगे तो दाढ़ा तीर्थंकर समान सेवा करने योग्य होवेगी जो कि दाढ़ा तीर्थंकरकी होनेसे उनके समान सेवा के लायक है तथापि उस ठिकाने तो दाढ़ा जिन प्रतिमा के समान सेवा करने योग्य कही हैं इसवास्ते "चेइयं" शब्द का अर्थ पूर्वोक्त हमारे कथन मूजिब सत्य है। क्योंकि पूर्वाचार्यों ने यहां

अर्थ करा है सो सत्य है ॥

२५ से २९ तक पांच बोलों में चैत्य शब्द का ज्ञान ठहराने वास्ते जेठमल ने कुयुक्तियां करी हैं परन्तु सो मिथ्या है. क्योंकि सूत्र में ज्ञानको चैत्य नहीं कहा है। श्रीनंदिसूत्रादि जिस जिस सूत्र में ज्ञानका अधिकार है वहां सर्वत्र ज्ञानार्थ वाचक 'नाण' शब्द लिखा है जैसे "नाणं पंचविहं पण्णत्तं" ऐसे कहा है परन्तु "चेइयं पंचविहं पण्णत्तं" ऐसे नहीं कहा है। तथा सूत्रों में जहां जहां ज्ञानी मुनिमहाराजा का अधिकार है वहां वहां "मइनाणी सुअनाणी ओहिनाणी मणपज्जवणाणी, केवलनाणी" ऐसे कहा है, परन्तु एक ठिकाने भी "मइचेत्ती, सुअचेत्थी, ओहिचेत्थी, मणपज्जव चेत्थी, केवल चेत्थी" ऐसे नहीं कहा है ॥

तथा जहां जहां भगवंत को तथा साधुओं को अवधिज्ञान मनपर्य्यवज्ञान, परमावधिज्ञान, तथा केवल ज्ञान उत्पन्न होने का अधिकार है, वहां वहां ज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसे तो कहा है. परन्तु अवधि चैत्य उत्पन्न हुआ, मनपर्यव चैत्य उत्पन्न हुआ, या केवल चैत्य उत्पन्न हुआ इत्यादि किसी ठिकाने भी नहीं कहा है। और सम्यग् दृष्टि श्रावक प्रमुखको जातिस्मरण ज्ञान तथा अवधिज्ञान उत्पन्न होनेका अधिकार सूत्र में जहां जहां है वहां वहां भी अमुक ज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसे तो कहा है, परन्तु जातिस्मरण चैत्य पैदा भया, अवधि चैत्य पैदा भया ऐसे नहीं कहा है। इत्यादि अनेक प्रकार से यही सिद्ध होता है कि सूत्रों में किसी ठिकाने भी ज्ञानको चैत्य नहीं कहा है इसवास्ते जेठका कथन मिथ्या है। चैत्य शब्दका अर्थ ज्ञान ठहरानेवास्ते जो बोल लिखे हैं उनको पुनः विस्तार पूर्वक लिखने से मालूम होता है कि २६ वें बोल में जंघा चारण मुनिके अधिकार में 'चेइयाइं वंदित्तए' ऐसा शब्द है उसका अर्थ जेठमलने वीतरागको वंदना करी ऐसा करा है सो खोटा है, वीतरागकी प्रतिमा को जंघाचारणने वंदना करी यह अर्थ सच्चा है इसवास्ते पंद्रवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है।

२७ वें बोल में जेठमल ने चमरेंद्र के अलावे में अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणिवा" और "अणगारेवा" ऐसा पाठ है ऐसे लिखा है इस पाठ से तो प्रत्यक्ष "चेइयं" शब्दका अर्थ 'प्रतिमा" सिद्ध होता है, क्योंकि इस पाठ में साधुभी जुदे कहे हैं, और अरिहंत भी जुदे कहे तथा "चेइयं" अर्थात् जिन प्रतिमाभी जुदी कही है. इसवास्ते इस अधिकार में अन्य कोई भी अर्थ नहीं हो सक्ता है तथापि जेठने तीनों ही बोलों का अर्थ अकेले अरिहंतही जानना ऐसा करा है,सो उसकी मूर्खताकी निशानी है,कोई सामान्य मनुष्य फकत शब्दार्थ के जानने वाला भी कह सक्ता है कि इन तीनों बोलों का अर्थ अकेले अरिहंत

ऐसा करनेवाला कोई मूर्ख शिरोमणिही होवेगा। जेठमल जी लिखते हैं कि "पूर्वोक्त पाठ में चैत्य शब्द से जिन प्रतिमा होवे और उस का शरण लेकर चमरेंद्र सुधर्मा देवलोक तक जासक्ता होवे तो तिरछे लोक में द्वीपसमुद्र में शाश्वती प्रतिमा थीं;ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत ऊपर तथा सुधर्मा विमान में सिद्धायतन में नजदीक शाश्वती प्रतिमा थीं तो जब शक्रेंद्र ने तिस के (चमरेंद्र के) ऊपर वज्र छोड़ा तब वो जिन प्रतिमा के शरणे नहीं गया और महावीरस्वामी के शरणे क्यों आया ?" इसका उत्तर-जेठमलने भद्रिक जीवों को फंसाने वास्ते यह प्रश्न जाल रूपगूंथा हैं, परन्तु इस का जवाब तो प्रत्यक्ष है कि जिसका शरण लेकर गया होवे उसीकी शरण पीछा आवे। चमरेंद्र श्रीमहावीरस्वामी का शरण लेकर गया था इसवास्ते पीछा उनके शरण आया है। जेठमल के कथनका आशय ऐसा है कि "उसके आते हुए रस्ते में बहुत शाश्वती प्रतिमा और सिद्धायतन थे तो भी चमरेंद्र उनकेशरण नहीं गया इसवास्ते चैत्य शब्द का अर्थ जिन प्रतिमा नहीं और उसका शरण भी नहीं"। वाहरे मूर्खशिरोमणि ! रस्ते में जिन प्रतिमा थीं उनके शरण चमरेंद्र नहीं गया परन्तु रस्ते में श्रीसीमंधर स्वामी तथा अन्य विहरमानजिन विचरते थे उनके शरणभी चमरेंद्र नहीं गया,तब जेठेके और अन्य ढूंढियोंके कहे मूजिब विहरमान तीर्थंकरभी उसको शरण करने योग्य नहीं होवेंगे ! समझने की तो बात यह है कि अरिहंतका शरण लेकर गया होवे तो अरिहंतके समीप पीछा आजावे, अरिहंत की प्रतिमाका शरण लेकर गया होवे तो अरिहंतकी प्रतिमाके समीप आजावे, और भावितात्मा अणगार का शरण लेकरगया होवे तो उसके समीप आजावे, इसवास्ते सिद्ध होता है कि जेठेने जिन प्रतिमा के निषेध करने के वास्ते झूठे अर्थ करने काही व्यापार चलाया है। तथा जेठेकी अकलका नमूना देखो कि इस अधिकार में तो बहुत ठिकाने सिद्धायतन हैं, और उन में शाश्वती जिन प्रतिमा हैं, ऐसे कबूल करता है; और पूर्वोक्त नवें प्रश्नोत्तर में तो सिद्धायतन ही नहीं हैं ऐसे कहता है। अफसोस !

२८ वें बोल में "वनको भी चैत्य कहा है" ऐसे जेठमल लिखता है, उत्तर जिस वनमें यक्षादिकका मंदिर होता है, उसी वनको सूत्रों में चैत्य कहा है अन्य वनको सूत्रों में किसी ठिकाने भी चैत्य नहीं कहा है। इससे भी चैत्यशब्दका ज्ञान अर्थ नहीं होता है ॥

२९ वें बोल में जेठमल जी लिखते हैं कि 'यक्षको भी चैत्य कहा है" उत्तर यह लेख भी मिथ्या है, क्योंकि सूत्र में किसी ठिकाने भी यक्षको चैत्य नहीं कहा है। जेकर कहा होवे तो अपने मतकी स्थापना करने की इच्छा वाले पुरुष

को सूत्रपाठ लिखकर उस का स्थापन करना चाहिये,परन्तु जेठमलजीने सूत्र पाठ लिखे विना जो मन में आया सो लिख दिया है ॥

३० तथा ३१ वें बोलमें दुर्मति जेठा लिखता है, कि "आरंभ के ठिकाने तो चैत्य शब्दका अर्थ प्रतिमा भी होता है" उत्तर—आहा! कैसी द्वेषबुद्धि!! कि जिस जिस ठिकाने जिनप्रतिमाका भक्ति, वंदना तथा स्तुति वगैरह के अधिकार सूत्रों में प्रत्यक्ष हैं उस ठिकाने तो चैत्य शब्दका अर्थ प्रतिमा नहीं ऐसे कहता है, और आरंभके स्थापन में चैत्य अर्थात् प्रतिमा ठहराता हैं, यह तो निःकेवल जिनप्रतिमा प्रति द्वेष दर्शाने वास्ते ही उसकी जबान ऊपर खर्ज (खुजली) हुई होवेगी ऐसे मालूम होता है। क्योंकि जिन तीनो वातों में चैत्य शब्दका अर्थ प्रतिमा ठहराता है उन तीनो बातोका प्रत्युत्तर प्रथम विस्तार से लिखा गया है ॥

३२ वें बोलमें चैत्य शब्दका अर्थ प्रतिमा है ऐसे जेठमलने मंजूर करा है। सो इस बात में भी उसने कपट करा है इसलिये ऐसी बातों में लिखान करके निकम्मा ग्रन्थ बधाना अयोग्यजानकर कुछभी नहीं लिखा है। पूर्वोक्त सर्व हकीकत ध्यान में लेकर निष्पक्षपाती होकर जो विचार करेगा उस को निश्चय होजावेगा कि ढुंढिये चैत्य शब्द का अर्थ साधु और ज्ञान ठहराते हैं सो मिथ्या है ॥ ॥ इति ॥

---

(३३) जिन प्रतिमा पूजनेके फल सूत्रों में कहे हैं इस बाबत।

(३३) वें प्रश्नोत्तरमें जेठमल लिखता है कि "सूत्रोंमें दश सामाचारी,तप,संयम, वेयावच्च वगैरह धर्मकरणी के तो फल कहे हैं; परन्तु जिनप्रतिमा को वंदन पूजन करने का फल सूत्रों में नहीं कहा है" उत्तर—जेठमल का यह लिखना बिलकुल असत्य है. सूत्रोंमें जिनप्रतिमा को वंदन पूजन करने का फल बहुत ठिकाने कहा है। तीर्थंकर भगवंतको वंदन पूजन करने से जिस फलकी प्राप्ति होती है उसी फलकी प्राप्ति जिन प्रतिमा के वंदन पूजन करने से होती है। क्योंकि जिनप्रतिमा जिनवर तुल्य है,तथा प्रतिमाद्वारा तीर्थंकर भगवंत कीही पूजाहोती है।इस तरह जिन प्रतिमाकी भक्ति करनेसे फल प्राप्ति के दृष्टांत सूत्रों में बहुत हैं. जिन में से कितनेक यहां लिखते है ॥

(१) श्रीजिनप्रतिमाकी भक्तिसे श्रीशांतिनाथ जी के जीवने तीर्थंकर गोत्र बांधा. यह कथन प्रथमानुयोग में है ॥

(२) श्रीजिनप्रतिमाकी पूजा करने से सम्यक्त्व शुद्धहोती है, यह कथन श्रीआचारांग की निर्युक्ति में है ॥

(३) 'थय थूइय मंगल"अर्थात् स्थापनाकी स्तुति करने से जीव सुलभबोधी होता है। यह कथन श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में है ॥

(४) जिनभक्ति करनेसे जीव तीर्थंकरगोत्र बांधता है। यह कथन श्रीज्ञाता सूत्र में हैं। जिनप्रतिमाकी जो पूजा है सो तीर्थंकरकी ही है, और इससे वीस स्थानक में से प्रथमस्थान की आराधना होती है ॥

(५) तीर्थंकर के नाम गोत्र के सुनने का महाफल है ऐसे श्रीभगवतीसूत्र में कहा है, और प्रतिमा में तो नाम और स्थापना दोनों हैं। इसवास्ते तिसके दर्शन से तथा पूजासे अत्यंत फल है ॥

(६) जिनप्रतिमाकी पूजा से संसार का क्षय होता है, ऐसे श्रीआवश्यक सूत्र में कहा है

(७) सर्व लोकमें जो अरिहंतकी प्रतिमा हैं तिनका कायोत्सर्ग बोधिबीजके लाभ वास्ते साधु तथा श्रावक करे. ऐसे श्रीआवश्यक सूत्र में कहा है ॥

(८) जिनप्रतिमा के पूजने से मोक्ष फल की प्राप्ति होती है, ऐसे श्रीरायप-सेणी सूत्र में कहा है ॥

(९) जिनमंदिर बनवाने वाला बारवें देवलोक तक जावे, ऐसे श्रीमहानि शीथ सूत्र में कहा है ॥

(१०) श्रेणिक राजाने जिनप्रतिमा के ध्यान से तीर्थंकरगोत्र बांधा है; यह कथन श्रीयोगशास्त्र में है ॥

(१२) श्रीगुणवर्मा महाराजा के सतरां पुत्रोंने सतरां भेदमें से एक एक प्रकार से जिन पूजा करी है. और उससे उसी भव में मोक्ष गये है। यह अधि कार श्रीसतरां भेदी पूजा के चरित्रोंमे है, और सतरां भेदी पूजा श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है ॥

इत्यादि अनेक ठिकाने जिन प्रतिमा पूजनेका महाफल कहा है, इसवास्ते जेठे की लिखी सर्व बातें स्वमतिकल्पनाकी हैं ॥

जेठने द्रौपदी की करी वी जिनप्रतिमाकी पूजा बाबत यहां कितनीक कुयुक्ति-यां लिखी हैं. परन्तु तिन सर्व का प्रत्युत्तर प्रथम (१२) वें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिख आये हैं सो देखलेना ॥

जेठा लिखता है कि पानी, फल, फूल, धूप, दीप वगैरहके भगवंत भोगी नहीं हैं, जेठे के सदृश श्रद्धा वाले ढूंढियों को हम पूछते है कि तुम भगवंतको वंदना नमस्कार करते हो तो क्या प्रभु वंदना नमस्कार के भोगी हैं? क्या प्रभु ऐसे कहते है कि मुझे वंदना नमस्कार करो? जैसे भगवंत वंदना नमस्कार के भोगी नहीं हैं और आप कहते भी नहीं हैं कि तुम मुझे वंदना नमस्कार करो; तैसे ही पानी, फल, फूल, धूप दीप वगैरह के प्रभु भोगी नहीं हैं, आप कहते भी नहीं हैं कि मेरी पूजा करो.परन्तु उस कार्य में तो करने वालेकी भक्ति है, महालाभ का कारण है, सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, और उस से बहुत जीव भवसमुद्र से पार होगए हैं, ऐसे शास्त्रों में कहा है। इसलिए इस में जिनेश्वरकी आज्ञा भी है॥ ॥ इति ॥

---

(३४) महिया शब्द का अर्थ

श्रीलोगस्स में "कित्तिय वंदिय महिया" ऐसा पाठ श्रीआवश्यक सूत्र का है, इन में प्रथम के दो शब्दोंका अर्थ "कीर्त्तिताः-कीर्तना करी और वंदिताः वंदनाकरी" ऐसा है अर्थात् यह दोनों शब्द भावपूजा वाची हैं, और तीसरे शब्द का अर्थ-महिताः पुष्पादिभिः-पुष्पादिक से पूजा करी है, अर्थात् महिया शब्द द्रव्य पूजा वाची है, टीकाकारोंने तथा प्रथम टब्बा बनाने वालोंने भी ऐसा ही अर्थ लिखा है परन्तु कितनीक प्रतियों में ढूंढियों ने सच्चा अर्थ फिराकर मनः कल्पित अर्थ लिख दिया है, उस मूजिब जेठमल भी इस प्रश्न में 'महिया' शब्द का अर्थ "भावपूजा" ठहराता है सो मिथ्या है॥

जेठमल फूलों से श्रावक पूजा करते हैं उस में हिंसा ठहराता है सो सत्य है, क्योंकि पुष्पपूजा से तो श्रावकों ने उन पुष्पों की दया पाली है, विचारो कि माली फूलों की चंगेरे लेकर बेचने को बैठा है, इतने में कोई श्रावक आनिकले और विचारे कि पुष्पोंको वेश्या लेजावेगी तो अपनी शय्या में बिछा के उसपर शयन करेगी, और उस में कितनीक कदर्थना भी होगी, कोई व्यसनी लेजावेगा तो फूल के गुच्छे गजरे बनाकर सूंघेगा, हार बनाकर गले में डालेगा या उनका मर्दन करेगा, कोई धनी गृहस्थी लेजावे तो वोभी उनका यथच्छ भोग करेगा और स्त्रियों के शिर में गूंथे जावेंगे, जो अतर के व्यापारी लेजावेंगे तो चुल्हेपर चढ़ाके उनका अतर निकालेंगे तेलके व्यापारी लेजावेंगे तो फुलेल वगैरह बनाने में उनकी बहुत विटंबना करेंगे इत्यादि अनेक विटंबनाका संभव होने से प्राप्त होने वाली विटंबना के दूर करने वास्ते और अरिहंतकी

भक्तिरूप शुद्ध भावना निमित्त वोह पुष्प श्रावक खरीद करके जिन प्रतिमाको चढ़ावे तो उससे अरिहंतदेवकी भक्ति होती है, और फूलोंकी भी दया पलती है हिंसा क्या हुई ?

जेठमल लिखता है कि "गणधरदेव सावद्य करणी में आज्ञा न देवें" उत्तर सावद्यकरणी किस को कहना ? और निर्वद्यकरणी किसको कहना ! इसका जेठको और अन्य ढूंढियों को ज्ञान होवे ऐसा मालूम नहीं होता है जिन पूजादि करणी को वे सावद्य गिनते हैं, परन्तु यह उनकी मूर्खता है क्योंकि मुनियों को आहार, विहार निहारादिक क्रिया में और श्रावकों को जिनपूजा साधर्मि वात्सल्य प्रमुख कितनी क धर्म करणीयों में तीर्थकरदेवने भी आज्ञा दी है, और जिस में आज्ञा होवे सो करणी सावद्य नहीं कहलानी है । इसबाबत २७ वें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है । तथा गणधर माहाराजाओं ने भी उपदेश में सर्व साधु श्रावकोंको अपना अपना धर्म करनेकी आज्ञा दी है । ढूंढियोंके कहे मूजिब गणधरदेव ऐसी करणी मे आज्ञा न देते होवें तो साधुको नदी उतरने की आज्ञा क्यों देते ? वरसती वरसात में लघुनीति वड़ीनीति परिठवनेकी आज्ञा क्यों देते ? साध्वी नदी में वहती जाती होवे तो उसको निकाल लेनेको साधु को आज्ञा क्यों देते ? इसी तरह कितनी ही आज्ञा दी हैं; इसवास्ते यह समझना कि जिस जिस कार्य में उन्होंने आज्ञा दी हैं हिंसा जानकर नहीं दी हैं, इसवास्ते इसबाबत जेठे मूढ़मतिका लेख बिलकुल मिथ्या सिद्ध होता है ॥

सामायिक में साधु तथा श्रावक पूर्वोक्त महिया शब्द से पुष्पादिक द्रव्य पूजाकी अनुमोदना करते है । साधुको द्रव्य पूजा करनेका निषेध है, परन्तु उपदेश द्वारा द्रव्य पूजा करवानेका और उसकी अनुमोदना करनेका त्याग नहीं है ऐसा भाष्यकारने कहा है ॥

जेठमल पांच अभिगम बावत लिखता है परन्तु पांच अभिगम में जो सचित्तवस्तु का त्याग करना है सो अपने शरीर के भोगकी वस्तुका है, प्रभु पुजाके निमित्त पुष्पादि द्रव्य लेजानेका त्याग नहीं । जेकर सर्व सचित्त वस्तु का त्याग करके समवसरण में जाना कहोगे तो समवसरण में जानु प्रमाण सचित्त फूलों की वर्षा होती है सो क्योंकर ? इस बाबत सुर्याभ के अधिकार में खुलासा लिखागया है ॥ ॥ इति ॥

(३५) छकायाके आरंभ बाबत ।

(३५) वें प्रश्नोत्तर में छकायाके आरंभ निषेधने के वास्ते जेठमलने श्रीआचारांगसूत्र का पाठ लिखा है-यत –

तत्थ खलु भगवया परिन्ना पवेइया इमस्स चेव जीवियस्स १ परिवंदण २ माणण ३ पूयणाए ४ जाइमरण मोयणाए ५ दुक्खपडिघाय हेउ ६ तं से अहियाए तं से अबोहिए ऐस खलु गंथे १ एस खलु मोहे २ एस खलु मारे ३ एस खलु निरए ४ ॥

अर्थ-कर्म बन्धन के कारण में निश्चय भगवंतने ज्ञान बुद्धि करके हिंसा यह कर्मबंध है, और दया यह निर्जरा है, ऐसी प्रज्ञा कही, जीवितव्य के वास्ते १ प्रशंसा के वास्ते २ मान के वास्ते ३ पुजा श्लाघा के वास्ते ४ जन्म मरण से छूटने वास्ते ५ दुःख दूर करने वास्ते ६ इन पुर्वोक्त ६ कारणोंसे जीव हिंसा करते हैं, उसका फल उस पुरुष को अहित के वास्ते और मिथ्यात्वके वास्ते है तथा पुर्वोक्त ६ कारणोंसे जो हिंसा करे तिस को निश्चय कर्म बंधका कारण है १, यह निश्चय अज्ञान पणेका कारण है, २, यह निश्चय अनंतमरण वधाने वाला है, ३ यह निश्चय नरकका कारण है ४ ॥ इस पाठ के लेखसें तो जितने ढूंढिये साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका है वे सर्व अहित, मिथ्यात्व, कर्म गांठ, मोह और अनंत मरण को प्राप्त होंवेंगे और नरक में भी जावेंगे, क्योंकि ढूंढक साधु साध्वी विहार में नदी उतरते हैं, उस में छकाया की हिंसा धर्म के वास्ते करते है पडिलेहणमें असंख्य वायुकायाके जीव हणते हैं, तथा प्रतिक्रमणादि अनुष्ठानों में वायुकायादि जीवोंकी हिंसा धर्म के वास्ते अर्थात् पुर्वोक्त पांच वे कारण में कहे मूजिब जन्म मरण से छूटने वास्ते करते हैं, इस लिये नरकादि विटंबना को पावेंगे ॥

और ढूंढक श्रावक श्राविका आजीविकाके वास्ते छकायाकी हिंसा करते हैं, अपनी प्रशंसा के वास्ते कितनेक कार्यों में हिंसा करते हैं, अपने वास्ते पुत्र पुत्री के विवाहादि कार्यों में छकाया की हिंसा करते हैं; गुरुके दर्शनवास्ते जाते हुए, सामायिकके वास्ते जाते हुए, पाडिलेहण पडिक्रमणा करते हुए, थानक बनवाते हुए, दीक्षा महोत्सव करतें हुए, छकायाकी हिंसा करते हैं;

तथा कोई ढूंढक साधु साध्वी मरजावे तो विमान बनवाते हैं, दीवे जलाते हैं, अन्न उडाते हैं. वाजे बजवाते हैं. और अंतमें लकड़ियों से चितावना के उस में ढूंढक ढूंढकनीको अग्निदाह करते हैं, जिस में भी छकाया की हिंसा करते हैं; इत्यादि धर्म के काम करके जन्म मरण से छूटना चाहते हैं; तथा शारीरिक और मानसिक दुःख दूर करने वास्ते भी छकायाकी हिंसा करते है; इसवास्ते ढूंढक श्रावक श्राविका जेठे के लिखे मूजिब पुर्वोक्त कामों के करनेसे नरक में जावेंगे ऐसे सिद्ध होता है जेठका यह सिद्धांत ढूंढियोंके वास्ते तो सच्चा ही है, क्योंकि उनके सरीखे देवगुरु और शास्त्रों के निंदक, म्लेच्छ सरीखे पंथके मानने वालोंकी तो ऐसी ही गति होनेका संभव है। यह प्रश्नोत्तर लिख के तो जेठमल ढूंढकने ढूंढियों की जड़ उखाड़ी है और सर्व ढूंढक साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकायोंको नरक में पहुंचा दीया है ॥

तत्त्वानु बोधी और सत्यार्थ के इच्छक भव्य जीवों के वास्ते मालूम करते हैं कि पूर्वोक्त श्रीआचारांग सूत्र का पाठ मिथ्यात्वीयों की अपेक्षा है ऐसे टीकाकार और महापंडित पुर्वाचार्य कहगये है, इसवास्ते इस पाठ में कहे फलके भागी जीव नहीं सम्यग्दृष्टि जीव तो तेतीस वें प्रश्नोत्तर मे लिखे जिन प्रतिमा की पूजादि शुभ कार्य के फल के भोगी है। और जिन प्रतिमाकी पूजादिका फल श्रीतीर्थंकर भगवतने यावत मोक्ष कहा है ॥

इस प्रश्नके अतमें जेठा लिखता है कि "मंदिर में वृक्ष लगा होवे तो साधु आप काट डाले. ऐसे जैनधर्मी कहते हैं।" उत्तर-यह लेख जेठमल की मूढ़ता का सूचक है क्योंकि यह बात किस शास्त्र में कही है ? किसने कही है ? किस तरह कही है ? उसका कारण क्या दर्शाया है ? उस कथन में क्या अपेक्षा है ? इत्यादि कुछ भी जेठेने लिखा नहीं है, इस तरह सूत्र के या ग्रंथ के प्रमाणविना लिखना सो उचित नहीं है. क्योंकि सूत्रादि के नाम लिखने से उस बातका ठीक खुलासा मिल सक्ता है. अन्यथा नहीं ॥ ॥ इति ॥

---

(३६) जीवदया के निमित्त साधुके वचन बाबत

(३६) वे प्रश्नोत्तर में जेठमलने श्रीआचारांग सूत्र का पाठ और अर्थ फिरा कर खोटा लिखकर प्रत्यक्ष उत्सूत्र की प्ररूपणा करी है, इसवास्ते वो सूत्रपाठ यथार्थ अर्थ सहित तथा पूर्ण हकीकत सहित लिखते हैं ॥

श्री आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध में ऐसे कहा है कि साधु ग्रामानु

ग्राम विहार करता जाता है रस्ते में साधु के आगे होकर मृगाकी डार निकल गई होवे, और पीछे से उन हिरणों के पीछे वधक (अहेड़ी) आजावे, और वो साधु को पूछे कि हे साधो! तैने यहां से जाते हुए मृग देखे है? तब साधु जो कहे सो पाठ यह है; "जाणं वा नो जाणं वदेज्जा"–अर्थ–साधु जाणता होवे तो भी कह देवे कि मै नहीं जानता हूं. अर्थात् मैने नहीं देखे है, तथा श्रीसूयगडांग सूत्र के आठवें अध्ययन में कहा है कि–"सादियं न मुसं बूया एस धम्मे वुसि-मओ"–अर्थ–मृग पृच्छादि विना मृषा न बोले, यह धर्म संयमवतका है, तथा श्रीभगवती सूत्र के आठवें शतकके पहिले उद्देशे में लिखा है कि–"मणसच्च जोग परिणया वयमोस जोग परिणया"–अर्थ–मृग पृच्छादिक में मनमें तो सत्य है, और वचन में मृषा है, इन तीनों पाठों का अर्थ हड़ताल से मिटाके ढुंढकोंने मनः कल्पित और का और ही लिख छोड़ा है, इसवास्ते ढुंढिये महामिथ्या दृष्टि अनंत संसारी हैं, तथा जेठमल ढुंढकने जो जो सूत्र पाठ मृषावाद बोलने के निषेध वास्ते लिखे हैं, उन सर्व में उत्सर्ग मार्ग में मृषा बोलने का निषेध वास्ते हैं, परन्तु अपवाद में नहीं. अपवाद में तो मृषा बोलने की आज्ञा भी है, सो पाठ ऊपर लिख आए हैं॥

जेठा मूढ़मति लिखता है कि "पांचोंही आश्रवका फल सरीखा है" तब तो जेठा प्रमुख सर्व ढुंढक जैसे कारण से नदी उतरते हैं, मेघ वर्षते में लघुनीति परिठवते हैं. और स्थंडिल जाते हैं, प्रतिलेखना, प्रतिक्रमण करते वायुकायकी हिंसा करते हैं, ऐसेही कारण से मैथुन भी सेवते होंगे, मूली गाजरभी खालेते होंगे, तथा जैसा ढुंढकों का श्रद्धान है, ऐसाही इनके श्रावकोंका भी होगा तब तो तिनके श्रावक ढुंढिये भी जैसा पाप अपनी स्त्री से मैथुन सेवनेसे मानते होवेंगे, वैसाही पाप अपनी माता, बहिन बेटीसे मैथुन सेवनेसे मानते होवेंगे "स्त्रीत्वाविशेषात्" स्त्री पणे में विशेष न होने से मूर्ख जेठेका "पांचों ही आश्रवका फल सरीखा है" यह लिखना अज्ञनताका और एकांत पक्षका है. क्योंकि वह जिनमार्गकी स्याद्वादशैलिको समझाही नहीं है॥

जेठा लिखता है, कि 'तीर्थंकर भी झूठ बोलते हैं ऐसा जैन धर्मी कहते है" उत्तर–यह लिखना बिलकुल असत्य है. क्योंकि तीर्थंकर असत्य बोले ऐसा कोई भी जैनधर्मी नहीं कहता है. तीर्थंकर कभी भी असत्य न बोलें ऐसा निश्चय है, तो भी इसतरे जेठा तीर्थंकर भगवंत के वास्ते भी कलंकित वचन लिखता है तो इससे यही निश्चय होता है कि वह महामिथ्यादृष्टि था॥

श्री पन्नवणासूत्र में ग्यार वें पदे–सत्य, असत्य, सत्यामृषा और असत्यामृषा यह चारों भाषा उपयोगयुक्त बोलते को आराधक कहा है इस बाबत जेठा

लिखता है कि "शासनका उड्डाह होता होवे, चौथा आश्रव सेव्या होवे तो झूठ बोले ऐसे जैनधर्मी कहते हैं. उत्तर-यह लेख असत्य है क्योंकि शासन का उड्डाह होता होवे तब तो मुनि महाराज भी असत्य बोले. ऐसा पन्नवणा सूत्र के पूर्वोक्त पाठकी टीका में खुलासा कहा है. परन्तु चौथा आश्रव सेव्या होवे तो झूठ बोले, इस कथन रूप खोटा कलंक जेठा निन्हव जैन धर्मियों के सिर पर चढ़ाता है सो असत्य है, क्योंकि इसतरह हम नहीं कहते हैं। परन्तु कदापि जेठ को ऐसा प्रसंग आवना होवे और उससे ऐसा लिखा गया होवे तो वो जाने और उसके कर्म जाने ?

इस प्रश्नोत्तर के अंतमें जेठा लिखता है कि "सम्यग्दृष्टि को चार भाषा बोलने की भगवंतकी आज्ञा नहीं है" और वह आपही समकितसार (शल्य) के पृष्ठ १६५ की तीसरी पंक्ति में 'सम्यग्दृष्टि चार भाषा बोलते आराधक है ऐसा पन्नवणाजी के ग्यारवें पदमें कहा है" ऐसे लिखता है। इसतरह एक दूसरे से विरुद्ध वचन जेठेने वारंवार लिखे हैं। इसलिये मालूम होता है कि जेठेने नशे में ऐसे परस्पर विरोधी वचन लिखे हैं॥

श्रीपन्नवणाजीका पूर्वोक्त सूत्र पाठ साधु आश्री है, ऐसे टीका कारने कहा है, जब साधुको उपयोगयुक्त चार भाषा बोलते आराधक कहा, तब सम्यग्दृष्टि श्रावक उसी तरह चारभाषा बोलते आराधक होवे उस में क्या आश्चर्य है ? इसवास्ते जेठे की कल्पना मिथ्या है॥ इति॥

---

(३७) आज्ञा यह धर्म है इस बाबत।

(३७) वें प्रश्नोत्तर के प्रारंभ में ही जेठेने लिखा है कि "आज्ञा यह धर्म, दया यह नहीं ऐसे कहते है" यह मिथ्या है, क्योंकि दया यह धर्म नहीं ऐसा कोई भी जैन धर्मी नहीं कहता है परन्तु जिनाज्ञा युक्त जो दया है उस में ही धर्म है, ऐसा शास्त्रकार लिखते हैं॥

जेठा लिखता है कि" दया में ही धर्म है, और भगवंतकी आज्ञा भी दया में ही है, हिंसा में नहीं" उत्तर-जेकर एकांत दयाही में धर्म है तो कितनेक अभव्यजीव अनंतीवार तीनकरण तीनयोग से दया पालके इक्कीसवें देवलोक तक उत्पन्न हुए परन्तु मिथ्या दृष्टि क्यों रहे ? और जमालिने शुद्ध रीति दया पाली तोभी निन्हव क्यों कहाया ? और संसार में पर्यटन क्यों किया ? इस वास्ते ढूंढियों ! समझो कि अभव्य तथा निन्हवोंने दया तो पूरी पाली परन्तु

भगवन्तकी आज्ञा नहीं आराधी इससे उनकी अनंतसंसार रुलने की गति हुई इसवास्ते आज्ञाही में धर्म है ऐसे समझना ॥

(१) जेकर भगवंत की आज्ञा दया ही में है तो श्रीआचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के ईर्याध्ययन में लिखा है कि साधु ग्रामानुग्राम विहार करता रस्ते में नदी आजावे तब एक पग जल में और एक पग थल में करता हुआ उतरे सो पाठ यह है ॥

"भिक्खु गामाणु गामं दूइज्जमाणे अंतरा से नई आगच्छेज्ज एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवएहं संतरइ" ॥

यहां भगवंतने हिंसा करने की आज्ञा क्यों दीनी ?

(२) श्रीठाणांग सूत्र के पांचवें ठाणे में कहा है । यतः–

णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसिवा पंकंसिवा पणगंसिवा उदगंसिवा उक्कस्समाणिं वा उवुज्जमाणिं वा गिराहमाणे अवलंबमाणे णातिक्कमति ॥

अर्थ–काठा चीकड़ पतला चीकड़ पंचवरणी फूलन और पाणी इन में साध्वी खूंच जावे, अथवा पाणी में वही जाती होवे, उस को साधु काढ़ लेवे तो भगवंतकी आज्ञा न अतिक्रमे ॥

इस पाठ में भगवंतने हिंसा की आज्ञा क्यों दी ?

(३) ढूंढिये भी धर्मानुष्ठान की क्रिया करते हैं, मेंघ बर्षते में स्थंडिल जाते हैं, शिष्यों के केशोंका लोच करते हैं, आहार विहार निहारादिक कार्य करते हैं, इन सर्व कार्यों में जीव विराधना होती है, और इन सर्व कार्यों में भगवंतने आज्ञा दी है । परन्तु जेठा तथा अन्य ढुंढियों को आज्ञा, आनाज्ञा दया, हिंसा, धर्म, अधर्मकी कुछ भी खबर नहीं है; फकत मुख से दया दया पुकारनी जानते हैं; इस वास्ते हम पूछते हैं कि पूर्वोक्त कार्य जिन में हिंसा होने का संभव है तो फिर ढुंढिये क्यों करते हैं ?

(४) धर्मरुचि अणगारने जिनाज्ञा में धर्म जानके और निरवद्य स्थंडिल का

अभाव देखके कड़वे तूंबे का आहार किया है, इस बाबत जेठेने जो लिखा है सो मिथ्या है धर्मरुचि अणगारने तो उस कार्यके करने से तीर्थंकर भगवंतकी तथा गुरुमहाराजकी आज्ञा आराधी है,औरइससेही सर्वार्थसिद्ध विमानमें गयाहै।

(५) श्रीआचारांग सूत्र के पांचवें अध्ययन में कहा है ॥ यतः-

अणाणाए एगे सोवठाणे आणाए एगे निरुवट्ठाणे एवंते मा होउ ॥

अर्थ-जिनाज्ञासे बाहिर उद्यम, और जिनाज्ञा में आलस, यह दोनों ही कर्म बंधके कारण है, हे शिष्य ! यह दोनोंही तुझको न होवे इस पाठ से जो मूढ मति जिनाज्ञासे बाहिर धर्म मानते हैं,वो महामिथ्या दृष्टि है ऐसे सिद्ध होता है ॥

(६) जेठा लिखता है कि "साधु नदी उतरते हैं सो तो अशक्य परिहार है" यह लिखना उसका स्वमतिकल्पनाका है क्योंकि सूत्रकारने भी अशक्य परिहार नहीं कहा है; नदी उतरनी सो तो विधिमार्ग है, इसवास्ते जेठेका लिखना स्वयमेव मिथ्या सिद्ध होता है ॥

जेठा लिखता है कि "साधु नदी न उतरे तो पश्चात्ताप नहीं करते है,और जैनधर्मी श्रावक तो जिनपूजा न होवे तो पश्चात्ताप करते हैं" उत्तर-जैसे किसी साधुको रोगादि कारण से एक क्षेत्र में ज्यादह दिन रहना पड़ता है तो उस के दिल में मेरे से विहार नहीं हो सका, जुदे जुदे क्षेत्रोंमें विचर के भव्यजीवों को उपदेश नहीं दिया गया, ऐसा पश्चात्ताप होता है; परन्तु विहार करते हिंसा होती है सो न हुई उसका कुछ पश्चात्ताप नहीं होता है। तैसे ही श्रावकों को भी जिन भक्ति न होवे तो पश्चात्ताप होता है, परन्तु स्नानादि न होनेका पश्चात्ताप नहीं होता है, इसवास्ते जेठेकी कुयुक्ति मिथ्या है ॥ इति ॥

---

(३८) पूजा सो दया है इस बाबत ।

(३८) वें प्रश्नोत्तर में पूजा शब्द दयावाची है, और जिन पूजा अनुबंध दयारूपही है,इसका निषेध करने के वास्ते जेठेने कितनीक कुयुक्तियां लिखी हैं सो मिथ्या है, क्योंकि जिनराजकी पूजा जो श्रावक फूलादिसे करते हैं वो स्वदया है। श्रीआवश्यक सूत्र में कहा है कि :-

अकसिण पवत्तगाणं विरया विरयाण एस खलु जुत्तो ।
संसार पयणु करणो दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो ॥ १ ॥

अर्थ-सर्वथा व्रतो में न प्रवृत्त हुए विरता विरती अर्थात् श्रावक को यह पुष्पादिकसे पूजा करणरूप द्रव्यस्तव निश्चयही युक्त उचित है, संसार पतला करने में अर्थात् घटाने में क्षय करने में कूपका दृष्टान्त जानना ॥

ऊपर के पाठ में श्रावकको द्रव्य पूजा करने का भगवंतका उपदेश है, कूपके पाणी समान भाव सो शुचि- जल है, और शुभ अध्यवसाय रूप पाणी होने से अशुभबंध रूप मल करके आत्मा मलीन होता ही नहीं है, यह पूर्वोक्त सूत्र चौदह पूर्वधर का रचा हुआ है। जब ढूंढिये इस सूत्रको नहीं मानते हैं तो नीच लोकों के शास्त्र को मानते होवेंगे ऐसा मालूम होता है ॥

जब पुष्पादिक से जिनराजकी पूजा करने से कर्मका क्षय हो जाता है तो इस से उपरंत अन्य दूसरी दया कौनसी है ? जेठा लिखता है कि "जेकर जिन मंदिर बनवाना, प्रतिमाजी स्थापन करना, यावत् नाटक पूजा करनी इन सर्व में हिंसारूप धूल निकलती है तो पाणी निकलनेका कूपका दृष्टांत कैसे मिलेगा उत्तर-हम ऊपर लिख चुके हैं, उसी मूजिब शुभ अध्यवसायरूप जलकरी संयुक्त होनेसे अशुभबंधरूप मलकरी आत्मा मलीन नहीं होता है, मतलब यह है कि जिन मंदिर बनवाने से लेकर यावत्सतरेंभेदी पूजाकरनी यह सर्व श्रावकोंको शुभभावकारी संयुक्त है, इससे हिंसा क्षय करने को पीछे नहीं रहती है, हिंसातो द्रव्यपूजा भावसंयुक्त करने से, ही क्षय हो जाती है, और पुण्यकी राशिकाबंध होती जाती है। दृष्टांत जो होता है इसवास्ते यहां बंध रूप मल, और शुभ अध्यवसायरूप जल, इतनाही कूप के दृष्टान्त के साथ मिलानका है, क्योंकि जैसा आत्माका अध्यवसाय होवे वैसा ही उस को बंध होता है, जिन पूजामें जो फूल पाणी प्रमुखकी हिंसा कहाती है,सो उपचार करके है. क्योंकि पूजा करने वाले श्रावक के अध्यवासय हिंसा के नहीं होते हैं; इसवास्ते फूल प्रमुख के आरंभ का अध्यवसाय विशेष करके नाश होता है, जैसे नदी उतरते हुए मुनिमहाराजाका पाणी के ऊपर दयाका भाव है; अंशमात्रभी हिंसा का प्रणाम नहीं; ऐसे ही श्रावकोंका भी जल, पुष्प, धूप, दीप प्रमुख से पूजा करते हुए पुष्पादिक के ऊपर दयाका भाव है,हिंसा का प्रमाण अंशमात्र भी नहीं है ॥

जेकर कोई कुमति कहे कि "मिथ्यात्व गुणठाणे में पूजा करे तो उसको क्या फल होवे ? " उत्तर-श्रीविपाकसूत्र में सुबाहुकुमार का अधिकार है, वहां

कहा है कि पूर्व भव में सुबाहुकुमार पाहिले गुणठाणे था, भाद्रिक सरलस्वभावी था उसने सुपात्र में दान देनेसे बड़ा भारी पुण्य बांधा, संसार परित्त किया, और शुभविपाक (फल) प्राप्त करा। इसी तरह मिथ्यात्वी होवे, परन्तु उदार भक्ति से जिन पूजा करे तो शुभ विपाक प्राप्त करे। इसबाबत श्रीमहानिशीथ सूत्र में सविस्तार पूजाके फल कहे हैं, सो आत्मार्थी प्राणियों को देखलेना चाहिये जोसंदेह होतो ॥

श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र के पहिले संवरद्वार में दया के ६० नाम कहे हैं उन में 'पूया' अर्थात् पूजा सो भी दयाका नाम है इसवास्ते पूजा सो दयाही जाननी, इसबातको खोटी ठहराने के वास्ते जेठा लिखता है कि 'पूर्वोक्त"६०नाम दया के जो हैं उन में 'यज्ञ" भी दया का नाम कहा है तो पशुवध सहित जो यज्ञ सो दया में कैसे ठहरेगा?" उत्तर-पशुवध करी संयुक्त जो यज्ञ है उस को दया में ठहराने को हम नहीं कहते हैं; हम तो श्रीहरिकेशी मुनिने जो यज्ञ (श्रीउत्तराध्ययनसूत्रमें) वर्णन किया है, और जेठेने भी पृष्ठ (१६८) में लिखा है, उस यज्ञको दया कहते है, इसवास्ते इसबाबत करी जेठेकी कुयुक्ति वृथा है।

तथा हरिकेशी मुनिकी वर्णन करी यज्ञपूजा मुनियोंके वास्ते है, और यहां तो श्रावक को द्रव्य पूजा का करना सिद्ध करना है, सो श्रावकके और यहां साधु की पूजा भाद्रिक जीवोंको भुलाने वास्ते लिखनी यह महाधूर्त्त मिथ्यादृष्टि योंका काम है और मूढमति जेठा तीस वें प्रश्नोत्तर में लिख आया है कि "हरिकेशी मुनि चार भाषा का बोलने वाला उस के वचनकी प्रतीति नहीं" तो फेर वोही जेठा यहां हरिकेशी मुनिके वचन मानने योग्य क्यों लिखता है? परन्तु इस में अकेले जेठे का ही दोष नहीं है, किन्तु जिनके हृदयकी आंख न होवे है, ऐसे सर्व ढूंढियोंका हाल देखने में आता है ॥

और पूजा, श्रमण, माहन, मंगल, ओच्छव प्रमुख दयाके नाम हैं, इसबाबत जेठा कुयुक्तियां करता है परन्तु सो वृथा है, क्योंकि वे नाम लोकोत्तर पक्षके ही ग्रहण करने के है; लौकिक पक्षके नहीं क्योंकि लौकिक में तो अन्य दर्शनी भी साधु, आचार्य, ब्रह्मचारी, धर्म प्रमुख शब्द अपने गुरु तथा धर्म के संबन्ध में लिखते हैं तो जैसे वोहसाधु आदि नाम जैनमत मुजिब मंजूर नहीं होते हैं; तैसे ही यहां दया के नाम में भी पूजासो जिन पूजा समझनी, श्रमण माहण सो जैनमुनि मानने, मंगल, सो धर्म गिनना ओच्छव सो धर्म के अठाई महोत्सवादि महोत्सव समझने; परन्तु इसबाबत निकम्मी कुतर्कें नहीं करनी, जेकर पूजा ऐसा हिंसा का नाम होवे तो उसी सूत्र में हिंसा के नाम है, उनमें पूजा ऐसा शब्द क्यों नहीं है? सो आंख खोलकर देखना चाहिये ॥

श्रीमहानिशीथसूत्रका जो पाठ नयानगर (ब्यावर) के बेअकल ढूंढकों की तर्फसे आया हुआ था समकितसार (शल्य)के छपाने वाले बुद्धिहीन नेमचंद कोठारी ने जैसा था वैसाही इस प्रश्नोत्तर के अंत में पृष्ठ १५९ में लिखा है, परन्तु उस ने इतना विचार भी नहीं करा है कि यह पाठ शुद्ध है या अशुद्ध ? खरा है कि खोटा ? और भावार्थ इसका क्या है ? प्रथम तो वोह पाठही महा अशुद्ध है, और जो अर्थ लिखा है सो भी खोटा लिखा है, तथा उसका भावार्थ तो साधु को द्रव्य पूजा नहीं करनी ऐसा है, परन्तु सो उसकी समझ में बिलकुल आया ही नहीं है; इसीवास्ते उसने यह सूत्र पाठ श्रावक के संबंध में लिख मारा है ? जब ढूंढिये श्रीमहानिशीथसूत्र को मानतेही नहीं हैं तो उस ने पूर्वोक्त सूत्र पाठ क्यों लिखा है ? जेकर मानते हैं तो इसी सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है कि "जिनमंदिर बनवाने वाले श्रावक यावत् बार व देवलोक जावें" यह पाठ क्यों नहीं लिखा है ? इसवास्ते निश्चय होता है कि ढूंढियोंने फकत भद्रिक जीवों के फंसाने वास्ते समिकतसार (शल्य) पोथीरूप जाल गूंथा है,परन्तु उस जाल में न फस ने वास्ते और फसे हुए के उद्धार वास्ते हम ने यह उद्यम किया है, सो बांचकर यदि ढूंढक पक्षी, निष्पक्ष न्याय से विचार करेंगे तो उनको भी सत्यमार्ग की पिछान होजावेगी ॥ इति ॥

---

(३८) प्रवचन के प्रत्यनीकको शिक्षा करने बाबत

"जैन धर्मी कहते हैं कि प्रवचन के प्रत्यनीक को हनने में दोष नहीं ऐसा ३९ वें प्रश्नोत्तर में मूढ़मति जेठेने लिखा है, परन्तु हम इस तरह एकांत नहीं कहते हैं इसवास्ते जेठे का लिखना मिथ्या है, जैनशास्त्रों में उत्सर्गमार्ग में तो किसी जीवको हनना नहीं ऐसे कहा है,और अपवाद मार्ग में द्रव्य,क्षेत्र,काल, भाव देखके महालब्धिवंत विष्णुकुमार की तरह शिक्षा भी करनी पड़जाती है; क्योंकि जैनशास्त्रों में जिनशासन के उच्छेद करने वाले को शिक्षा देनी लिखी है श्रीदशाश्रुतस्कंध सूत्र के चौथे उद्देश में कहा है कि "अवण्णवाइणं पडिह-णित्ता भवइ" जब ढूंढिये प्रवचनके प्रत्यनीक को भी शिक्षा नहीं करनी ऐसा कहकर दयावान् बनना चाहते हैं तो ढूंढिये साधु रेच (जुलाब) लेकरहजारों कृमियों को अपने शरीर के सुखवास्ते मार देते हैं तो उस वक्त दया कहां चली जाती है जराविचार करना चाहिये ॥

जेठने श्री निशीथचूर्णिका तीन सिंहके मारनेका अधिकार लिखा है परन्तु उस मुनिने सिंहको मारने के भाव से लाठी नहीं मारी थी, उसने तो सिंहको

हटाने वास्ते यष्टिप्रहार कियाथा, इसतरह करते हुए यदि सिंह मरगये तो उस में मुनि क्या करे ? और गुरुमहाराजाने भी सिंह को जान से मारने को नहीं कहाथा, उन्होंने कहा था कि जो सहजमें न हटे तो लाठी से हटादेना; इस-तरह चूर्णि में खुलासा कथन है तथापि जेठे सरीखे ढुंढिये कुयुक्तियां करके तथा झूठे लेख लिखके सत्यधर्म की निंदा करते हैं सो उनकी मूर्खता है ॥

इसकी पुष्टि वास्ते जेठेने गोशालेके दो साधु जलानेका दृष्टांत लिखा है, परन्तु सो मिलता नहीं हैं,क्योंकि उन मुनियोंने तो काल किया था और पूर्वोक्त दृष्टांत में ऐसे नहीं था, तथा पूर्वोक्त दृष्टांत में साधुने गुरुमहाराजाकी आज्ञा से यष्टिप्रहार किया है, और गोशालेकी बाबत प्रभुने आज्ञा नहीं दी है, इसवास्ते गोशाले के शिक्षा करने का दृष्टांत पूर्वोक्त दृष्टांत के साथ नहीं मिलता है ॥

फिर जेठेने गजसुकमालका दृष्टांत दिया है परन्तु जब गजसुकमाल काल करगया तो पीछे उसने उपसर्ग करने वाले का निवारणही क्या करना था ? अगर कृष्ण महाराजा को पहले मालूम होता कि सोमिल इसतरह उपसर्ग करेगा तो जरूर उसका निवारण करते, तथा गजसुकमाल के काल करने पीछे कृष्णजी हृदय में उस को शिक्षा करनेका भाव था, परन्तु उपसर्ग करने वाले को तो स्वयंमेव शिक्षा होचुकी थी, क्योंकि उस सोमिल ने श्रीकृष्ण जी को देखतेही काल करा है, तो भी देखो कि कृष्णजीने उस के मृतक (मुरदे) को जमीन ऊपर घसीटा है, और उसकी बहुत निंदा करी है और मृतक को जितनी भूमिपर घसीटा उतनी जमीन उस महादुष्ट के स्पर्शसे अशुद्ध हाई मान के उसपर पानी छिड़काया है ऐसा श्रीअंतगडदशांग सूत्र में कहा है,इस वास्ते विचारो, क्योंकि मृत्यु हुए बाद भी इस तरह की विटंबना करी है तो जीता होता तो कृष्ण जी उसकी कितनी विटंबना करते । इसवास्ते प्रवचनके प्रत्यनीक को शिक्षा करनी शास्त्रोक्तरीतिसे सिद्ध है विशेष करके तीस वें प्र-श्नोत्तर में लिखागया है ॥ इति

(४०) देवगुरुकी यथायोग्य भक्ति करने बाबत

(४०) वें प्रश्नोत्तर में जेठा लिखता है कि"जैनधर्मी गुरु महाव्रती और देवअ व्रती मानते,हैं"उत्तर–यह लेख लिखके जेठेने जैनधर्मियों को झूठा कलंक दीया है, क्योंकि ऐसी श्रद्धा किसी भी जैनी की नहीं है,जेठा इसबात में भक्ति की भिन्नता को कारण बताता है परन्तु जैनी जिसरीतिसे जिसकी भक्ति करनी उचित है उस

रीति से उस की भक्ति करते हैं, देवकी भक्ति जल. कुसुम से करनी उचित है, और गुरु की भक्ति वंदना नमस्कार से करनी उचित है सो उसरीति से श्रावकजन करते हैं ॥

अक्षकी स्थापना का निषेध करने वास्ते जेठेने अक्षको हाड़ लिख के स्थापनाचार्यकी अवज्ञा, निंदा तथा आशातनाकरी है; सो उसकी मूर्खता है; क्योंकि आवश्यक करने के समय अक्षके स्थापनाचार्य की स्थापनाकरनी श्रीअनुयोगद्वार सूत्र के मूल पाठ में कही है कि "अक्खेवा" इत्यादि "ठवण ठविज्जइ" अर्थात् अक्षादिकी स्थापना स्थापनी; सो उस मूजिब अक्षकी स्थापना करते हैं; तथा श्री विशेषावश्यक सूत्र में लिखा है कि 'गुरु विरहम्मिय ठवणा" अर्थात् गुरु प्रत्यक्ष न होवे तो गुरुकी स्थापनाकरनी और तिस को द्वादशावर्त वंदना करनी जेठेने स्थापनाचार्य को हाड़ कहकर अशातना करी है, हम पूछते भी हैं कि ढूंढिये अपने गुरुको वंदना नमस्कार करते हैं उसका शरीर तो हाड़, मांस, रुधिर, तथा विष्ठा से भरा हुआ होता है तो उस को वंदना नमस्कार क्यों करते हैं ? इसवास्ते प्यारे ढूंढियो ! विचार करो, और ऐसे कुमतियों के जाल में फंसना छोड़ के सत्यमार्गको अंगीकार करो ॥

ढुंढिये शास्त्रोक्त विधि अनुसार स्थापनाचार्य स्थापे विना प्रतिक्रमणादि क्रिया करते है उनको हम पूछते हैं कि जब उनको प्रत्यक्ष गुरु का विरह होता है, तब वोह पडिक्कमणे में वंद ना किसका करते है ? तथा "अहोकायं काय संफासं" इस पाठ से गुरुकी अधोकाया चरण रूप को फरसना है सो जब गुरु ही नहीं तो अधोकाया कहां से आई ? तथा जब गुरु नहीं तो ढुंढिये वंदना करते हैं, । तब किसके साथ मस्तकपात करते हैं । और गुरु के अवग्रह से बाहिर निकलते हुए 'आवस्सही" कहते है, तो जब गुरुही नहीं तो अवग्रह कैसे होवे ? इससे सिद्ध होता है, कि स्थापनाचार्य विना जितनी क्रिया ढुंढिये श्रावक तथा साधु करते हैं, सो सर्व शास्त्र विरुद्ध और निष्फल है ।

श्रावकजन द्रव्य और भाव दोनों पूजा करते हैं, उन में जिनेश्वर भगवंत की जल चंदन, कुसुम, धूप दीप, अक्षत, फल और नैवेद्य प्रमुख से द्रव्य पूजा जिस रीति से करते हैं उसीरीति से स्थापनाचार्य की भी जल, चंदन, वरास, वासक्षेप प्रमुख से पूजा करते हैं इसवास्ते जेठ ढुंढक का लिखना कि "स्थापनाचार्यको जल, चंदन धूप, दीप कुछ भी नहीं करते है" सो झूठ है. और साधु मुनिराज जैसे अरिहंत भगवंतकी भाव पूजा ही करते हैं, तैसे स्थापनाचार्य की भावपूजा ही करते है; इसवास्तेजेठे की करी कुयुक्ति वृथा है ॥

इस प्रश्नोत्तर के अंत में जेठा लिखता है "सचित्त का संघट्टा देव जो तीर्थंकर उनको कैसे घटेगा ?" उत्तर-जो भावतीर्थंकर हैं उनको सचितका संघट्टा नहीं है और स्थापनातीर्थंकरको सचित का संघट्टा कुछ भी बाधक नहीं हैं. ऐसे प्रश्नोंके लिखनेसे सिद्ध होता है कि जेठे को चार निक्षेपेका ज्ञान बिलकुल नहीं था ॥ ॥ इति ॥

---

(४१) जिनप्रतिमा जिनसरीखी हैं इसबाबत ।

(४१) वें प्रश्नोत्तर में जेठे हीनपुण्यीने 'जिन प्रतिमा जिन सरीखी नहीं' ऐसे सिद्ध करने वास्ते कितनीक कुयुक्तियां लिखी है परन्तु सो सर्व मिथ्या हैं; क्योंकि सूत्रोंमें बहुत ठिकाने जिन प्रतिमा को जिनसरीखी कहा है जहां २ भाव तीर्थंकरको वंदना नमस्कार करने वास्ते आने का अधिकार है वहां वहां "देवयं चेइयं पज्जुवासामि" अर्थात् देव संबंधी चैत्य जो जिन प्रतिमा उसकी तरह पर्युपासना करूंगा ऐसे कहा है. तथा श्रीरायपसेणी सूत्र में कहा है "धूवं दाऊण जिणवराणं" यह पाठ सूर्याभ देवताने जिन प्रतिमा पूजी तब धूपकरा उस वक्तका है, और इस में कहा है कि जिनेश्वरको धूप करा और इसपाठ में जिन प्रतिमा को जिनवर कहा इससे तथा पूर्वोक्त दृष्टांतसे जिन प्रतिमा जिन सरीखी सिद्ध होती है, इसवास्ते इसबात के निषेधने को जेठे मूढमतिने जो आल जाल लिखा है सो सर्व झूठ और स्वकपोलकल्पित है ।

जेठा लिखता है कि "प्रभु जल, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, भूषण वगैरह के भोगी नहीं थे और तुम भोगी ठहराते हो" उत्तर-यह लेख अज्ञानताका है क्योंकि प्रभु गृहस्थावस्था में तो सर्व वस्तु के भोगी थे इस मुजिब श्रावकवर्ग जन्मावस्थाको आरोप के स्नान कराते है, पुष्प चढ़ाते हैं, यौवनावस्था को आरोपके अलंकार पहनाते हैं. और दीक्षावस्था का आरोप करके नमस्कार करते हैं इसवास्ते अरिहंतदेव भोगी अवस्थामें भोगी है, और त्यागीअवस्था में त्यागी हैं भोगी नहीं परन्तु भोगी तथा त्यागी दोनों अवस्थाओं में तीर्थंकरपना तो है ही. और उससे तीर्थंकर देवगर्भ से लेकर निर्वाण पर्यंत पूजनीक ही है, इसवास्ते जेठेके लिखे दूषण जिनप्रतिमाको नहीं लगते है तथा ढूंढियोंको हम पूछते हैं कि समवसरण में जब तीर्थंकर भगवंत विराजते थे तब रत्न जड़ित सिंहासन ऊपर बैठते थे, चामर होतेथे, सिर ऊपर-तीन छत्र थे, इत्यादि कितनीक संपदा थी तो वो अवस्था त्यागीकी हैं कि भोगी की ? जो त्यागी है तो चमरादि क्यों ? और भोगी हैं तो त्यागी क्यों कहते हो ! इस में

समझने का तो यही है कि भगवंत तो त्यागी ही है परन्तु भक्ति भावसे चामरादि करते हैं, ऐसे ही जिन प्रतिमा की भक्तजन पूजा करते हैं तो उसको देख के ढूंढियों के हृदय में त्यागी भोगीका शूल क्यों उठता है ? जेठा लिखता है कि "भगवंत को त्यागी हुई वस्तुका तुम भोग कराते हो तो उस में पाप लगता है" तथा इसबाबत अनाथी मुनिका दृष्टांत लिखा है. परन्तु उसदृष्टांतका जिनप्रतिमा के साथ कुछ भी संबंध नहीं है, क्योंकि जिनप्रतिमा है सो स्थापनातीर्थंकर है उसको भोगने न भोगने से कुछ भी नहीं हैं. केवल करने वालेकी भक्ति है, त्यागी हुई वस्तु नहीं भोगनी सो तो भावतीर्थंकर आश्री बात है, इसवास्ते यह बात यहां लिखनेकी कुछभी जरूरत नहीं थी. तोभी जेठेने लिखी है सो वृथा है वस्त्र बाबत जेठेने इस प्रश्नोत्तर में फिर लिखा है, सो इसका प्रत्युत्तर द्रौपदी के अधिकार में लिखागया है इसवास्ते यहां नहीं लिखते है।

जेठेने लिखा है कि 'जिनप्रतिमा जिन सरीखी है. तो भरत एरावत में पांचवें आरे तीर्थंकरका विरह क्यों कहा है ?" उत्तर–यह लेखभी जेठेकी बेसमझीका है, क्योंकि विरह जो कहाता है सो भावतीर्थंकर आश्री है जेठा ढूंढक लिखता है कि "एक क्षेत्र में दो इकट्ठे नहीं होवें, होवें तो अच्छेरा कहाजावे, और तुमतो बहुत तीर्थंकरों की प्रतिमा एकत्र करते हो" उत्तर-मूर्ख जेठेको इतनी भी समझ नहीं थी कि दो तीर्थंकर एकट्ठे नहीं होने की बात तो भाव तीर्थंकर आश्री है और हम जो जिन प्रतिमा एकट्ठी स्थापते हैं सो स्थापना तीर्थंकर है. जैसे सर्व तीर्थंकर निर्वाणपद को पाकर सिद्ध होते हैं तब वे द्रव्य तीर्थंकर होए हुए अनंते इकट्ठे होते हैं तैसे स्थापना तीर्थंकर भी इकट्ठे स्थापे जाते है. तथा सिद्धायतन का विस्तार से अधिकार श्रीजीवाभिगम सूत्र में कहा है. वहां भी एक सिद्धायतन में एक सौ आठ जिनप्रतिमा प्रकटतया कही हैं, इस वास्ते जेठका लिखा यह प्रश्न बिलकुल असत्य है, जेकर स्थापना से भी इकट्ठा होना न होवेतो जंबूद्वीप में (२६९) पर्वत न्यारे न्यारे (जुदे जुदे) ठिकाने है. उन सबको मांडले में एकत्र करके अरे ढूंढियो ! पोथी में क्यों बांधे फिरते हो ? तथा वो चित्राम लोगों को दिखाते हो. समझाते हो और शाश्वती वस्तुओंके एकत्र होने का भाव है तो वे पर्वत जुदे२ हैं और शाश्वती वस्तुओंके एकत्र होनेका अभाव है तो तुम इकट्ठे क्यों करते हो सो बताओ ? जेठा लिखता है कि "तीर्थंकर जहां विचरे वहां मरी और स्वचक्र परचक्रका भय न होवे तो जिन प्रतिमा के होते हुए भय क्यों होता है ?"–इसतरह के कुवचनों करके जेठा और अन्य ढूंढिये जिनप्रतिमा की महत्व घटाना चाहते है, परन्तु मूर्ख ढूंढिये इतना भी नहीं समझते हैं कि वो अतिशय तो सिद्धांतकार ने भाव तीर्थंकरके कहे हैं, और प्रतिमातो स्थापना तीर्थंकर है. इसवास्ते इस बाबत तुम्हारी

कोई भी कुयुक्ति चल नहीं सकी है ॥ इति ॥

---

(४२) ढूंढक मतिका गोशालामती तथा मुसलमानों के साथ मुकाबला।

(४२) वें प्रश्नोत्तर में जेठे निन्हवने जैन संवेगी मुनियों को गोशालेसमान ठहराने वास्ते (११) बोल लिखे हैं परन्तु उनमें से एक बोल भी जैन संवेगी मुनियों को नहीं लगता है ये सर्व बोल तो ढुंढियोंके ऊपर लगते है और इससे ये गोशाला मति समान हैं ऐसे निश्चय होता है।

(१) पहिले बोल में जेठेने मूर्खवत् असंबद्ध प्रलाप करा है परन्तु उसका तात्पर्य कुछ लिखा नहीं है. इसवास्ते उसके प्रत्युत्तर लिखने की जरूर नहीं है

(२) दूसरे बोल में जेठा लिखता है कि "ढूंढियों को जैनमुनि तथा श्रावक सताते हैं". उत्तर-जैसे सूर्य को देखके उल्लू की आंखें बंद हो जाती हैं, और उस के मनको दुःख उत्पन्न होता है तैसे ही शुद्ध साधुको देखके गोशालामति समान ढुंढियोंके नेत्र मिलजाते हैं. और उनके हृदय में स्वयमेव संताप उत्पन्न होता है. मुनिमहाराजा किसीको संताप करने का नहीं इच्छते हैं, परन्तु सत्य के आगे असत्य का स्वयमेव नाश होजाता है।

(३) तीसरे बोल में "जैनधर्मियोंने नये ग्रंथ बनाये हैं" ऐसे जेठा लिखता है परन्तु जो ग्रंथ बने हैं, वो सर्व ग्रंथ गणधर महाराजा, पूर्वाचार्योंका नेश्राय से बने हैं, और उनमें कोई भी बात शास्त्रविरुद्ध नहीं है; परन्तु ढुंढियों को ग्रंथ वांचने ही नहीं आते हैं,तो बनानेकी शक्ति कहांसे लावें? फकत ग्रंथकर्त्ताओंकी कीर्ती सहन नहीं होने से जेठेने इस तरह लिख के पूर्वाचार्यों की अवज्ञा की है॥

(४) चौथे बोल में "मंत्र जंत्र ज्योतिष वैद्क करके आजीविका करते हो" ऐसे जेठने लिखा है सो असत्य है क्योंकि संवेगी मुनि तो मंत्र जंत्रादि करते ही नहीं है ढुंढिये साधु मंत्र जंत्र, ज्योतिष, वैद्यक वगैरह करते हैं नाम लेकर विस्तार से प्रथम प्रश्नोत्तर में लिखा गया है इसवास्ते ढुंढियोंका मत आजीविकमत ठहरता है।

(५) पांचवें बोल में "१४४४-बौद्धों को जलादिया" ऐसे जेठा लिखता है,

परन्तु किसीभी जैन मुनिने ऐसा कार्य नहीं करा है किसी ग्रंथ में जलादि ऐसे भी नहीं लिखा है, इसवास्ते जेठे का लिखना झूठ है, जेठा इसतरह गोशालेके साथ जैनमति की साहश्यता करनी चाहता है परन्तु सो नहीं होसकी है, किन्तु ढुंढिये बासी सड़ा हुआ अचार, विद्ल वगैरह अभक्ष्य वस्तु खाते हैं, जिससे बेइंद्रिय जीवों का भक्षण करते हैं इससे इनकी तो गोशाला मतिके साथ साहश्यता होसकी है ॥

(६ छठे बोल में "गोशाले को दाह ज्वर हुआ तब मिट्टी पाणी छिटकाके साता मानी" ऐसे जेठा लिखता है। उत्तर-यह दृष्टांत जैन मुनियोंको नहीं लगता है, परन्तु ढुंढियों से संबंध रखता है। क्योंकि ढुंढिये लघुनीति (पिशाब) से गुदा प्रमुख धोते हैं और खुशीयां मानते हैं * ॥

(७) सातवें बोल में जेठा लिखता है कि गोशालेने अपना नाम तीर्थंकर ठहराया अर्थात् तेईस होगये और चोबीसवां मैं ऐसे कहा इसी तरह जैनधर्मीभी गौतम, सुधर्मा, जंबू वगैरह अनुक्रम से पाट बताते हैं" उत्तर-जेठे का यह लेख स्वयमेव स्खलनाको प्राप्त होता हैं, क्योंकि गोशाला तो खुद वीर परमात्माका निषेध करके तीर्थंकर बन बैठा था, और हम तो अनुक्रम से परंपराय पाटानुपाट बताके शिष्यपणा धारण करते हैं, इस वास्ते हमारी बाततो प्रत्यक्ष सत्य है; परन्तु ढुंढकमती जिनाज्ञा रहित नवीन पंथके निकालनेसे गोशाले सदृस सिद्ध होते हैं ॥

(८) आठवें बोल में लिखता है कि "गोशाले ने मरने समय कहा कि मेरा मरणोत्सव करीयो और मुझे शिविकामें रखकर निकालियो, इसीतरह जैनमुनि भी कहते हैं" उत्तर-जेठका यह लिखना बिलकुल झूठ है, क्योंकि जैनमुनि ऐसा कभी भी नहीं कहते हैं; परन्तु ढुंढियेसाधु मर जाते हैं तब इस तरह करनेको कह जाते होंगे कि मेरा बिमान बनाके मुझे निकालीयो, पांच झंडे रखीयो इस वास्ते ही जेठे आदि ढूंढियोंका इसतरह लिखनेका याद आगया होगा ऐसे मालूम होता है, इन्द्रने जिस तरह प्रभुका निर्वाण महोत्सव करा है जैनमति श्रावक तो उसीतरह अपने गुरु की भक्ति के निमित्त स्वइच्छासे यथा शक्ति निर्वाणमहोत्सव करते हैं ॥

(९) नवमें बोल में स्थापना असत्य ठहराने वास्ते जेठेने कुयुक्ति लिखी है,

---

* यह तो प्रकट ही है कि जब रात को पानी नहीं रखते कभी बडी नीति (पखाना) हो तो जरूर पिशाब से ही गुदा धोकर अशुचि टालते होंगे। बलिहार इस शुचिके।

परन्तु श्रीठाणांगसूत्र वगैरह में स्थापना सत्य कही है। तोभी सूत्रों के कथन को ढूंढिये उत्थापते हैं इसलिये वह गोशालेमती समान हैं ऐसे मालूम होता है॥

(१०) दशवें बोल में जेठा लिखता है कि "क्रिया करने से मुक्ति नहीं मिलेगी, ऐसे जैनधर्मी कहते हैं" यह लेख मिथ्या है, क्योंकि जैनमुनि इसतरह नहीं कहते हैं। जैनमुनियोंका कहना तो जैनसिद्धांतानुसार यह है कि ज्ञानसहित क्रिया करने से मोक्ष प्राप्त होता है, परन्तु जो एकांत खोटी क्रियासेही मोक्ष मानते हैं वो जैनसिद्धांतकी स्याद्वाद शैलीसे विपरीत प्ररूपणा करने वाले हैं और इसीवास्ते ढूंढिये गोशाला मति सदृश सिद्ध होते हैं॥

(११) ग्यारहवें बोलमें जेठा लिखता है कि "जैनधर्मी जिनप्रतिमा को जिनवर सरीखी मानते हैं इससे ऐसे सिद्ध होता है कि वे अजिनको जिनतरीके मानते हैं" उत्तर-पुण्यहीन जेठेका यह लेख महामूर्खता युक्त है क्योंकि सूत्र में जिनप्रतिमा जिनवर सरीखी कही है, और हम प्रथम इसबाबत विस्तारसे लिख आए हैं अब ढूंढिये देवीदेवताकी मूर्तियोंको तथा भुत प्रेतको मानते हैं, तो मालूम होता है कि फकत जिनप्रतिमाके साथ ही द्वेष रखते हैं; इससे वे तो गोशालामतिके शरीक सिद्ध होते हैं॥

ऊपर मूजिब जेठेके लिखे (११) बोलके प्रत्युत्तर हैं। अब ढूंढिये जरूरही गोशाले समान हैं यह दर्शाने वास्ते यहां और (११) बोल लिखते हैं॥

(१) जैसे गोशाला भगवंत का निंदक था, तैसे ढूंढियेभी जिन प्रतिमा के निंदक हैं॥

(२) जैसे गोशाला जिनवाणी का निंदक था, तसे ढूंढिये भी जिनशास्त्रों के निंदक हैं॥

(३) जैसे गोशाला चतुर्विधसंघका निंदक था, तैसे ढूंढिये भी जैनसंघ के निंदक हैं॥

(४) जैसे गोशाला कुलिंगी था, तैसे ढूंढिये भी कुलिंगी हैं। क्योंकि इनका वेष जैनशास्त्रों से विपरीत है॥

(५) जैसे गोशाला झूठा तीर्थंकर बन बैठा था तैसे ढूंढिये भी खोटे साधु बन बैठे हैं॥

(६) जैसे गोशाला का पंथ सन्मूर्च्छिम था वैसे ढूंढियोंका पंथ भी सन्मूर्च्छिम है क्योंकि इनकी परंपराय शुद्ध जैनमुनियोंके साथ नहीं मिलती है॥

(७) जैसे गोशाला स्वकपोल कल्पित वचन बोलता था, तैसे ढुंढिये भी स्वकपोल कल्पित शास्त्रार्थ करते हैं ॥

(८) जैसे गोशाला धूर्त्त था, तैसे ढूंढिये भी धूर्त्त हैं। क्योंकि यह भद्रिक जीवोंको अपने फंदेसें फसाते हैं ॥

(९) जैसे गोशाला अपने मनमें अपने आप को झूठा जानता था परन्तु बाहिर से अपनी रूढी तानता था, तैसे कितनेक ढूंढिये भी अपने मनमें अपने मतको झूठा जानते हैं परन्तु अपनी रूढीको नहीं छोड़ते ॥

(१०) जैसे गोशाले के देवगुरु नहीं थे. तैसे ढूंढियोंके भी देवगुरु नहीं हैं। क्योंकि इनका पथतो गृहस्थीका निकाला हुआ है ॥

(११) जैसे गोशाला महा अविनीत था, तैसे ढूंढिये भी जैनमत में महा अविनीत हैं। इत्यादि अनेक बातोंसे ढूंढिये गोशाले तुल्य सिद्ध होते है। तथा ढूंढिये कितनेक कारणोंसे मुसलमानों सरीखे भी होसक्ते हैं,सो वह लिखते है ॥

(१) जैसे मुसलमान नीला तहमत पहनते हैं, तैसे कितनेक ढूंढिये भी काली धोती पहनते है ॥

(२) जैसे मुसलमानों के भक्ष्याभक्ष्य खानेका विवेक नहीं है तैसे ढूंढियेके भी बासी, संधान (आचार) वगैरह अभक्ष्य वस्तु के भक्षणका विवेक नहीं है ॥

(३) जैसे मुसलमान मूर्ति को नहीं मानते हैं, तैसे ढूंढियेभी जिनप्रतिमा को नहीं मानते है ॥

(४) जैसे मुसलमान पेरोंतक धोती करते हैं तैसे ढुंढिये भी पेरोंतक धोती (चोलपट्टा) करते ह ॥

(५) जैसे मुसल्मान हाजीको अच्छा मानते हैं, तैसे ढुंढिये भी वंदना करने वालेको "हाजी" कहते हैं ॥

(६) जैसे मुसलमान लस्सण डुंगली अर्थात् प्याज कांदा गंडे खाते हैं, तैसे ढूंढिये भी खाते है ॥

(७) जैसे मुसलमानोका चालचलन हिन्दुओंसे विपर्यय है. तैसे ढुंढियोंका चालचलन भी जैनमुनियों से तथा जैनशास्त्रों से विपरीत हैं ॥

(८) जैसे मुसलमान सर्व जातिके घरका खा लेते हैं, वैसे ढुंढिये भी कोली

भारवाड़, छींबे, नाई, कुम्हार वगैरह सर्व वर्णका खालेते हैं ॥

इत्यादि बहुत बोलों करके ढुंढिये मुसलमानों के समान सिद्ध होते हैं। और ढूंढिये श्रावक तो स्त्री के ऋतु के दिन न पालने से उन से भी निषिद्ध सिद्ध होते हैं ॥ * ॥ इति ॥

(४३) मुंहपर मुहपत्ती बँधी रखनी सो कुलिंग है इसबाबत ।

(४३) वें प्रश्नोत्तर में मुंहपत्ती बांधी रखनी सिद्ध करने के वास्ते जेठेने कितनीक युक्तियां लिखी है, परन्तु उन्हीं युक्तियोंसे वो झूठा होता है, और मुहपत्ती मुंह को नहीं बांधनी ऐसे होता है। क्योंकि जेठने इसबाबत मृगाराणीके पुत्र मृगालोढीयको देखने वास्ते श्रीगौतमस्वामीकी आनेका दृष्टांत दिया है, तो उस संबंध में श्रीविपाकसूत्र में खुलासा पाठ है कि मृगाराणीने श्रीगौतमस्वामी को कहा कि:-

"तुम्भेणं भंते मुहपत्तियाए मुहं बंधह"

अर्थ-तुम हे भगवान्! मुख व स्त्रिका करके मुख बांध लेवो इस पाठ से सिद्ध है कि गौतमस्वामीका मुख वस्त्रिका करके बांधा हुआ नहीं था, इससे विपरीत ढूंढिये मुख बांधते है, और वह विरुद्धाचरणके सेवन करने वाले सिद्ध होते है ॥

जेठा लिखता है "जो गोतमस्वामी ने उस वक्तही मुहपत्ती बांधी तो पहिले क्या खुले मुखसे बोलते थे?" उत्तर-अकलके दुश्मन ढूंढियों मे इतनी भी समझ नहीं है कि उघाड़े (खुले) मुखसे बोलतेथे ऐसे हम नहीं कहते हैं, परन्तु हम तो मुहपत्ती मुखके आगे हस्तमें रखकर यत्नो से बोलते थे ऐसे कहते हैं श्रीअंगच्चूलिया सूत्र में दीक्षा के समय मुहपत्ती हाथ में देनी कही है यतः-

* ढूंढिनिया श्रावकनी अर्थात ढूंढक साध्वीयां (आरजा) भी ऋतुके दिन नहीं पालती हैं! प्रतिक्रमणा करती हैं तथा सूत्रों को छूती है ॥

तओ सूरिहं तदाणुणाएहिं पिट्टोवरि कूपरि विंठ्ठिएहिं रय हरणं ठवित्ता वामकरानामियाए मुहपत्तिलवंधरित्तु ॥

अर्थ-तब आचार्यकी आज्ञा के होए हुए कूणी ऊपर रजोहरण रक्खे.रजो हरण की दशीयां दाक्षिण दिशी (सज्जे पासे) रक्खे,और वामें हाथ में अनामिका अंगुली ऊपर लाके मुहपत्ती धारण करे।

पूर्वोक्त सूत्र में सूत्रकार ने मुहपत्ती हाथ में रखनी कही है. परन्तु मुंहको बांधनी नहीं कही है, ढूंढिये मुंहपत्ती मुंह को बांधते हैं इसलिये जिनाज्ञा के बाहिर हैं। श्रीआवश्यकसूत्रमें तथा, ओघानिर्युक्ति में (कायोत्सर्ग करनेकी विधि में) कहा है कि "मुहपोत्तियं अज्जु हत्थे" अर्थात् मुखवस्त्रिका जीमणे हाथ में रखनी, इस तरह कहा है, तो भी ढूंढिये सदा मुंहको मुखपाटी बांधके फिरते हैं, इसवास्ते ये मूर्ख शिरोमणि हैं ॥

ढूंढिये मुंहको मुखपाटी बांधके कुलिंगी बननेसे, जैनमतके साधुओंकी निंदा और हांसी कराते हैं। जेकर वायुकायकी रक्षा वास्ते मुंहको पाटी बांधते हैं तो नाक तथा गुदा को पाटी क्यों नहीं बांधते हैं ? जेठा लिखता है कि "जितना पलता है उतना पालते हैं" जब ढुंढिये जितना पले उतना पालते हैं तो मुखसे तो ज्यादा नाक से वायुकाय के जीवहणेजाते हैं; क्योंकि मुख से जब बोले और मुखकी पवन बाहिर निकले तबही वायुकायकी हिंसाका संभव हो सका है, और नाकसे तो व्यवधान रहित निरंतर श्वासोच्छ्वास वहा करते हैं इसवास्ते मुंहको बांधने से पहले नाकको पट्टी क्यों नहीं बांधी ? और साधु के तो ६ काया की हिंसा करनेका त्रिविध२ पच्चक्खाण होता है तथापि जेठेके लिखे मूजिब जब इतना भी पाल नहीं सकते हैं तो किस वास्ते चारित्र लेकर ऋषि जी बन बैठे हैं ॥

ढुंढियो! इससे तो तुम तुम्हारे ही मतसे चारित्र कि विराधना करने वाले सिद्ध होते हो ॥

यता ढुंढियों के ऋष-साधु को मुंहको मुखपाटी बांधाहुआ कौतुकी वेष देखकर किसीर वक्त पशुडरते हैं,स्त्रियें डरती हैं.बालक डरते हैं कुत्ते भौंकते हैं और मुंहको सदा पट्टी बांधनेसे असंख्याते सन्मूर्च्छिम जीव मरते हैं, निगोदिये जीव उत्पन्न होते हैं, इससे यह मालूम होता है कि ढुंढियोंने जीवदया के वास्ते मुखपट्टी नहीं बांधी किन्तु जीव हिंसा करने वाला एक अधिकरण (शस्त्र) बांधा है इस बाबत पांचवें प्रश्नोत्तर में खुलासा लिखा गया है ॥ इति ॥

(४४) देवता जिनप्रतिमा पूजते हैं सो मोक्ष के वास्ते है इस बाबत ।

(४४) वें प्रश्नोत्तर में जेठा लिखता है कि "देवता जिनप्रतिमा पूजते हैं सो संसार खाते हैं" उत्तर-यह लेख मिथ्या है. क्योंकि श्रीरायपसेणीसूत्र में जिन प्रतिमा पूजने के फलका पाठ ऐसा है। यतः-

हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ ॥

अर्थ-जिनप्रतिमा के पूजने का फल पूजने वाले को हितके तांई योग्यता के तांई सुखके तांई, मोक्षके तांई, और जन्मांतर में भी साथ आनेवाला है।

इस बाबत जेठेने श्रीआवश्यक निर्युक्तिका पाठ लिखके ऐसे दिखलाया है कि "अभव्य देवता भी जिनप्रतिमा को पूजते हैं इसवास्ते सो संसार खाता है" उत्तर-फलकी प्राप्ति भावानुसार होती है। अभव्यमिथ्यादृष्टि जो प्रतिमा पूजते हैं उनको अपने भावानुसार फल मिलता है और भव्यसम्यग्दृष्टि पूजते हैं, उन को मोक्षफल प्राप्त होता है, जैसे जैनमत की दिक्षा अभव्यमिथ्यादृष्टियों को मोक्ष दायक नहीं है और भव्यसम्यग्दृष्टियों को मोक्ष दायक है दोनों को फल जुदे जुदे मिलते हैं, जैसे जैनमतकी दिक्षा सच्ची और मुक्ति का हेतु है ऐसेही जिनप्रतिमा भी भक्त जनोंको मुक्ति का हेतु है। और उस के निन्दक ढुंढकमति वगैरह को नरकका हेतु है अर्थात् जिन पापी जीवों के निन्दकपणेके भाव है उनको तो जरूर नरकका फल प्राप्त होता है, और जिन के भक्तिपणेके भाव है उनको जरूर मोक्षफल प्राप्त होता है। ॥ इति ॥

---

(४५) श्रावक सूत्र न पढ़े इस बाबत

(४५) वें प्रश्नोत्तर में "श्रावकसूत्र पढ़े" इस बातको सिद्ध करने वास्ते जेठे ने कितनीक कुयुक्तियां लिखी है. परन्तु उन में से एकभी कुयुक्ति बन नहीं सकी है उलटा उन्हीं कुयुक्तियों से वो झूठा होता है तो भी 'मीयां गिरपड़ा लेकिन टांग ऊंची' इस कहावत के अनुसार जो मनमें आया, सो लिख मारा है, और इससे जैसे डूबता आदमी झग को हाथ मारे ऐसे करा है, इस बाबत

लिखने को बहुत है परन्तु ग्रंथ अधिक होजाने से जेठे की कुयुक्तियों को ध्यान म न लेकर फकत कितनेक सूत्रों के प्रमाण पूर्वक दृष्टांत लिखके श्रावककोसूत्र पढ़नेका निषेध सिद्ध करते हैं ॥

श्रीभगवती सूत्र के दूसरे शतक के पांच वें उद्देशे में तुंगिया नगरीके श्रावकोंके अधिकार में कहा है यतः–

लद्धठ्ठा गहियठ्ठा पुच्छियठ्ठा अभिगयठ्ठा विणिच्छियठ्ठा॥

अर्थ–प्राप्त करा है अर्थ जिन्होंने ग्रहण करा है अर्थ जिन्होंने संसय के होए पुछा है अर्थ जिन्होंने प्रश्न करके अर्थ निर्णय किया है जिन्होंने, इसवास्ते निश्चय किया है अर्थ जिन्होंने इस तरह कहा परन्तु (लद्ध सुत्ता गहिय सुत्ता) ऐसे नहीं कहा है तथा श्रीव्यवहार सूत्र के दशवें उद्देशे में कहा है यतः–

तिवास परियागस्स निग्गंथस्स कप्पइ आयारकप्पे नामं अभ्फयणे उद्दिसित्तएवा चउवास परियागस्स निग्गंथस्स कप्पति सूयगडेनामं अंगे उद्दिसित्तए पंचवासपरियागस्स समणस्स कप्पति दसाकप्पववहारा नामभ्फयणे उद्दिसित्तए अठवास सरियागस्स समणस्स कप्पति ठाणसमवाए नामं अंगे उद्दिसित्तए दसवास परियागस्स कप्पति विवाह नामं अंगे उद्दिसित्तए एक्कारस वास परियागस्स कप्पति खुड्डियाविमाणपविभत्ति महाल्लिया विमाणपविभत्ति अंग चूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिया नामं उद्दिसित्तए बारसवास परियागस्स कप्पति अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए धरणोववाए वेसमणोववाए वेलंधरोववाए अभ्फयणे उद्दिसित्तए तेरसवास परियाए कप्पति उट्ठाणसुए समुट्ठाणसुए देविंदोववाए नागपरियावलिया नामं अभ्फयणे उद्दि

सित्ताए चउदसवास०कप्पतिसुवरणा भावणा नामं अभयणं उद्दिसित्तए पन्नरसवास० कप्पति चारणभावणा नामं अभ-यणे उद्दिसित्तए सोलसवास० कप्पति तेयणिसग्गं नामं अभयणं उद्दिसित्तए सतरवास०कप्पति आसीविस नामं अभयणेउद्दिसित्तए सुहारसवास०कप्पति दिहिविसभावणा नामं अभयणे उद्दिसित्ताए एगुणा वीसइवास परियागस्स कप्पति दिहिवाए नामं अंगे उद्दिसित्तए वीसवास परियाग समणे निग्गंथे सव्वसूत्राणा वाइ भवति ॥

अर्थ-तीन वर्षकी दीक्षापर्यायवाले साधु को आचार प्रकल्प अर्थात् आचारांगसूत्र पढ़ना कल्पे है, चार वर्ष की दीक्षा वाले को श्रीसूयगडांग सूत्र पढ़ना कल्पे है, पांच वर्ष के दीक्षितको दशा कल्प तथा व्यवहार अध्ययन पढ़ने कल्पे है. आठ वर्षकी पर्यायवालेको ठाणांग समवायांग पढ़ना कल्पे है दशवर्षकी पर्यायवालेको श्रीभगवतीसूत्र पढ़ना कल्पे है. इग्यारह वर्ष की पर्यायवालासाधुखुड्डियाविमान प्रविभक्ति, महल्लिया विमान प्रविभक्ति, अंगचुलिया, वग्गचूलिया पढ़े, बारह वर्षकी पर्यायवाला अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात और वेलंधरोपपात पढ़े. तेरांवर्षकीपर्याय वाला उवट्ठाणश्रुत समुट्ठाणश्रुत देवेंद्रोपपात और नागपरियावलिया अध्ययन पढ़े चौदह वर्ष की पर्यायवाला सुवर्णभावना अध्ययन पढ़े, पंदरह वर्षकी पर्याय वाला चारणभावना अध्ययन पढ़े, सोलह वर्षकी पर्याय वाला तेयनिसग्ग अध्ययन पढ़े, सतरह वर्ष की पर्याय वाला आशीविष अध्ययन पढ़े, उन्नसि वर्षकी पर्याय वाला दृष्टिवाद पढ़े और बीस वर्ष की पर्यायवाला सर्व सूत्रों का वादी होवे ॥

मूढ़मति ढूंढिये कहते है कि श्रावक सूत्र पढ़े तो उन श्रावकोंके चारित्रकी पर्याय कितने कितने वर्ष की है सो कहां ? अरे मूढ़मतियों ! इतनाभि विचार नहीं करते हो कि सूत्र में साधुको भी तीन वर्ष दीक्षा पर्याय पीछे आचारांग पढ़ना कल्पे ऐसे खुलासा कहा है तो श्रावक सर्वथाही न पढ़े ऐसा प्रत्यक्ष सिद्ध होता है ॥

श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र के दूसरे संवरद्वार में कहा है कि-

तं सच्चं भगवंत तित्थगर सुभासियं दसविहं चउदस पुव्वीहिं पाहुडत्थवेइयं महरिसिणायं समयप्प दिन्नं देविंद नरिंदे भासियत्थं ॥

भावार्थ यह है कि भगवंत वीतरागने साधु सत्य वचन जाने और बोले इसवास्ते सिद्धांत उनको दिये, और देवेंद्र तथा नरेंद्र को सिद्धांतका अर्थ सुन के सत्य वचन बोले इसवास्ते अर्थ दिया इस पाठ में भी खुलासा साधुको सूत्र पढ़ना और श्रावकको अर्थ सुनना ऐसे भगवंतने कहा है जेठा लिखता है कि "श्रावक सूत्र वांचे तो अनंत संसारी होवे ऐसा पाठ किस सूत्र में है ?" उत्तर-श्रीदशवैकालिक सूत्र के षट्जीवनिका नामा चौथे अध्ययन तक श्रावक पढ़े आगे नहीं; ऐसे श्री आवश्यकसूत्र में कहा है;इस के उपरांत आचा-रांगादि सूत्रों के पढ़ने की आज्ञा भगवंतने नहीं दी है, तो भी जो श्रावक पढ़ते हैं वे भगवंतकी आज्ञा का भंग करते हैं और आज्ञा भंग करने वाला यावत् अनंत संसारी होवे ऐसे सूत्रों में बहुत ठिकाने कहा है, और ढुंढिये भी इस बातको मान्य करते हैं; ॥

जेठा लिखता है कि "श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में श्रावकको 'कोविद' कहा है, तो सूत्र पढ़े बिना 'कोविद' कैसे कहा जावे ?"

उत्तर-'कोविद' का अर्थ 'चतुर-समझवाला' ऐसा होता है तो श्रावक जिनप्रवचन में चतुर होता है, परन्तु इससे कुछ सूत्र पढ़े हुए नहीं सिद्ध होते हैं जेकर सूत्र पढ़े होवें तो "अधित" क्यों नहीं कहा ? जेठा मंदमति लिखता है कि "श्रीभगवती सूत्र में केवली प्रमुख दशके समीप केवली प्ररूप्या धर्म सुनने केवलज्ञान प्राप्त करे उनको 'सुच्चा केवली कहीये ऐसे कहा है उन दश बोलों में श्रावक श्राविका भी कहे हैं तो उनके मुख से केवली प्ररूप्या धर्म सुने सो सिद्धांत या अन्य कुछ होगा ? इसवास्ते सिद्धांत पढ़ने की आज्ञा सबको मालूम होती है" उत्तर-सिद्धांत वांचके सुनाना उस का नामही फकत केवली प्ररूप्या धर्म नहीं है परन्तु जो भावार्थ केवली भगवंतने प्ररूप्या है सो भावार्थ कहना उसका नाम भी केवली प्ररूप्या धर्म ही कहलाता है इसवास्ते जेठकी करी कल्पना असत्य है तथा श्रीनिशीथ सूत्र में कहा है कि-

सेभिक्खु अन्नउत्थियंवा गारत्थियंवा वाएइ वायं तंवा साइज्जइ तस्सणं चउमासियं ॥

अर्थ–जो कोई साधु अन्य तीर्थी को वांचना देवे.तथा गृहस्थी को वांचना देवे अथवा वांचना देतां साहाय्य देवे, उस को चौमासी प्रायश्चित आवे ॥

इस बाबत जेठा लिखता है कि इस पाठ में अन्य तीर्थी तथा अन्य तीर्थीके गृहस्थ का निषेध है. परन्तु वो मूर्ख इतना भी नहीं समझा है कि अन्य तीर्थी के गृहस्थ तो अन्य तीर्थी में आगये तो फेर उसके कहने का क्या प्रयोजन ? इसवास्ते गृहस्थ शब्द से इस पाठ में श्रावकही समझ ने ॥

जेकर श्रावक सूत्र पढ़ते होवें तो श्रीठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में साधु के तथा श्रावकके तीन तीन मनोरथ कहे हैं. उन में साधु श्रुत पढ़नेका मनोरथ करे ऐसे लिखा है. श्रावकके श्रुतपढ़नेका मनोरथ नहीं लिखा है अब विचारना चाहिये कि श्रावक सूत्र पढ़ते होवें तो मनोरथ क्यों न करें ? सो सूत्र पाठ यह है-यतः–

तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ कयाणं अहं अप्पंवा बहुं वा सुअं अहिज्जिस्सामि कयाणं अहं एकल्लविहारं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरिस्सामि कयाणं अहं अपच्छिममारणंतियं संलेहणा झूसणा झूसिए भत्तपाण पडिया इक्खिए पाओवगमं कालमणवक्कंखेमाणे विहरिस्सामि एवं समणसा सवयसा सकायसा पडिजागरमाणे निग्गंथे महाणिज्जरे पज्जवसाणे भवइ ॥

अर्थ–तीनस्थान के श्रमणनिर्ग्रंथ महानिर्जरा और महापर्यवसान करे (वे तीन स्थान कहते हैं) कब मै अल्प (थोड़ा) और बहुत श्रुत सिद्धांत पढूंगा ? १. कब मे एकल्लविहारी प्रतिमा अंगीकार करके विचरूंगा ? २, और कब में अंतिममारणांतिक संलेषणा जो तप उस का सेवन करके रुक्षहोकर भातपाणी का पञ्चक्खाण करके पादपोगम अनशन करके मृत्यु की वांच्छा नहीं करता हुआ विचरूंगा ? ३, इसतरह साधु मन वचन काया तीनों कारण करके प्रति आचरण करता हुआ महा निर्जरा पर्यवसान करे ॥

अब श्रावक के तीन मनोरथों का पाठ कहते हैं ॥

तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तंजहा कयाणं अहं अप्पं वा बहुंवा परिग्गहं चइस्सामि कयाणं अहंमुंडेभवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि कयाणं अहं अपच्छिममारणंतियं संलेहणा झूसिय भत्तपाण पाडिया इक्खिए पाओवगमं कालमण वक्कंखेमाणे विहारिस्सामि एवं समणसा सवयसा सकायसा पडिजागर माणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जव साणे भवइ ॥

अर्थ–तीन स्थान के श्रावक महानिर्जरा महा पर्यवसान करें तद्यथा कब मैं धन धन्यादिक नव प्रकार का परिग्रह थोड़ा और बहुता त्यागन करूंगा ? १, कब मैं मुंड होकर आगार जो गृहवास उसको त्यागके अणगारवास साधुपणा अंगीकार करूंगा ? २, तीसरी संलेषणाका मनोरथ पूर्ववत् जानना ॥

इससे भी ऐसे ही सिद्ध होता है कि श्रावक सूत्र वांचे नहीं इत्यादि अनेक दृष्टांतो से खुलासा सिद्ध होता है कि मुनि सिद्धांत पढ़े और मुनियों को ही पढ़ावें, श्रावकों को तो आवश्यक, दशवैकालिक के चार अध्ययन और प्रकरणादि अनेक ग्रंथ पढ़ने, परन्तु श्रावकको सिद्धांतपढ़नेकी भगवंतने आज्ञा नहीं दी है ॥इति ॥
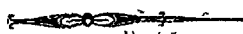
(४६) ढूंढिये हिंसा धर्मी हैं इस बाबत ।

इस ग्रन्थ को पूर्ण करते हुए मालूम होता है कि जेठे ढूंढकका बनाया समकितसार नामा ग्रन्थ गोंडल (सूबा काठीयावाड़) वाले कोठारि नेमचंदने छपवाया है उस ने आदि से अंततक जैन शास्त्रानुसार और जिनाज्ञा मूजब वर्त्तने वाले परंपरायगत जैन मुनि तथा श्रावकोंको (हिंसा धर्मी) ऐसा उपनाम दिया है और आप दया धर्मीबनगये हैं, परन्तु शास्त्रानुसार देखने से तथा इन ढुंढीयोंका आचार व्यवहार, रीतिभांति और चालचलन देखने से खुलासा मालूम होता है कि यह ढूंढियेही हिंसाधर्मी हैं और दयाका यथार्थ भी स्वरूप नहीं समझते हैं ॥

सामान्य दृष्टि से भी विचार करें तो जैसे गोशाले जमालि प्रमुख कितनेक निन्हवोंने तथा कितनेक अभव्य जीवोंने जितनी स्वरूपदया पाली है। उतनी तो किसी ढूंढकसे भी नहीं पल सक्ती है; फक्त मुंह से दया दया पुकारना ही जानते हैं, और जितनी यह स्वरूपदया पालते हैं उतनी भी इनको निन्हवोंकी तरह, जिनआज्ञा के विराधक होने से हिंसाका ही फल देनेवाली है। निन्हवों ने तो भगवंतका एक एक ही वचन उत्थाप्या है और उनको शास्त्रकारने मिथ्यादृष्टि कहा है यतः—

पयमक्खरंपि एक्कंपि जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं। सेसं रोयंतो विहु मिच्छदिट्ठी जमालिव्व ॥ १ ॥

मूढ़मति ढुंढियोंने तो भगवंतके अनेक वचन उत्थापे है, सूत्र विराधे हैं, सूत्रपाठ फेरदिये हैं, सूलपाठ लोपे है, विपरीत अर्थ लिखे हैं, और विपरीत ही कहते हैं; इसवास्ते यह तो सर्व निन्हवों में शिरोमणि भूत है ॥

अब ढूंढिये दयाधर्मी बनते हैं परन्तु वे कैसी दया पालते हैं गरज दयाका नाम लेकर किस किस तरहकी हिंसा करते है सो दिखाने वास्ते कितनेक दृष्टांत लिखके वे हिंसाधर्मी हैं एसे सत्यासत्य के निर्णय करने वाले सुज्ञपुरुषों के समक्ष मालूम करते हैं ॥

(१) सूत्रोंमें उष्णपाणीका गरमी में श्याले में तथा चौमासे में जुदा जुदा काल कहा है उस काल के उपरांत उष्णपाणी में भी सचित्तपणेका सम्भव है तो भी ढुंढीये काल के प्रमाण विना पाणीपीते हैं इसवास्ते काल उल्लंघन करा पाणी कच्चाही समझना * ॥

(२ रात्रिको चुल्हे पर धरा पाणी प्रातः को लेकर पीते हैं, जो पाणी रात्रि को चुल्हा खुला न रखने वास्ते धरनेमें आता है (प्रायःयह रिवाजगुजरात मारवाड़ काठीयावाड़ में है) जोकि, गरम तो क्या, परन्तु कवोष्ण अर्थात् थोड़ासा गरम होना भी असंभव है इसवास्ते वो पाणी भी कच्चा ही समझना।

(३) कुम्हार के घर से मिट्टी सहित पाणी लाकर पीते है जिस में भी सचित्त और पाणीभी सचित्त होनेसे अचित्त तो क्या होना है परन्तु उकर

---

* ढूंढीये धोवणका पाणी शास्त्रोक्त मर्यादारहित कच्चाही पीते है।

अधिक समय जैसेका वैसा पड़ा रहे तो उसमे बेइन्द्रि जीवकी उत्पत्ति होनेका सम्भव है।

(४, पाथीयां (उपले) थापनेका पाणी लाकर पीते हैं जो अचित्त तो नहीं होता है परन्तु उस में बेइन्द्रि जीवकी उत्पत्ति हुई दृष्टि गोचर होती है॥

(५) स्त्रियोंके कंचुकी (चोली) वगैरह कपड़ोंका धोवण लाकर पीते हैं जिस में प्रायः जूंवां अथवा मरी हुई जूंवों के कलेवर होने का सम्भव है ऐसा पाणी पीने से ही कई रिखों को जलोदर होने का समाचार सुणने में आया है।*

(६) पूर्वोक्त पाणी में फकत एकेंद्रि का ही भक्षण नहीं है. परन्तु बेइन्द्रिका भी भक्षण है; क्योंकि ऐसे पाणी में प्रायः पूरे निकलते हैं तथापि ढूंढियों को इस बातका कुछभी विचार नहीं है। देखो इनका दया धर्म ! ×

(७) गत दिनकी अथवा रात्रि की रखी अर्थात् बासी, रोटी दाल,खिचड़ी वगैरह लाते हैं और खाते हैं,शास्त्रकारोंने उस में बेइन्द्रि जीवोंकी उत्पत्ति कही है

(८) मर्यादा उपरांतका सड़ा हुआ अचार लाकर खाते हैं. उस में भी बेइन्द्रि जीवों की उत्पत्ति कही है॥

(९) विदल अर्थात् कच्चीछाछ, कच्चादूध, तथा कच्चीदही में कठोल * खाते हैं, जिसको शास्त्रकारने अभक्ष्य कहा है और उस में बेइन्द्रि जीवकी उत्पत्ति कही है। ढूंढकोंको तो विदलका स्वाद अधिक आता है क्योंकि कितनेक तो फकत मुफतकी खीचड़ी और छाछ वगैरह खाने के लोभसेही प्रायः ऋषजी

---

*झूठे वर्त्तनों का धोवण हलवाई की कड़ायोंका पाणी जिस में से कई दफा कुत्ते भी पीजाते हैं जिस में मरी हुई मक्खियां भी होती हैं. सुनारोंके कुंडों का पाणी जिस में सूअर के बालों से गहने आदि धोये जाते हैं अत्तारों के अरक निकालनेका पाणी इत्यादि अनेक प्रकार का पाणी भी लेते हैं ?

× झूठे वर्त्तनों के धोवण में अन्नादिकी लाग होने से तथा माटी आदिके पाणी में हाथआदिके मैलआदि अशुचि होनेसे सन्मूर्छिम पचेंद्रि की भी खूब दया पलती है।

* जिस अनाजके दो फाड़ होजावें और जिसके पीड़ने से तेल न निकले, ऐसा जो कठोल; मांह, मूंगी, मोठ, चने, हरवें, मैथे, मसूर, हरर आदि जिसका अनाज, उसको 'विदल' संज्ञा है।

बनते है, परन्तु इससे अपने महाव्रतों का भंग होता है उसका विचार नहीं करते हैं।

(१०) पूर्वोक्त बोलोंमें दर्शाये मूजिब ढूंढिये बेइन्द्रि जीवोंका भक्षण करते हैं देखीये इनके दयाधर्म की खूबी ॥

(११) सूत्रों में बाईस अभक्ष्य खाने वर्जे हैं तो भी ढूंढिये साधु तथा श्रावक प्रायः सर्व खाते हैं श्रीअंगचूलिया सूत्र के मूल पाठ में कहा है यतः-

एवं खलु जंबु महाणुभावेहिं सूरिवरेहिं मिच्छत्तकुलाओ उस्सग्गोववाएणं पडिबोहिउण जिणमए ठाविया बत्तीस अणंतकायभक्खणाओ वारिया महु मज्ज मंसाई बावीस अभक्खणाओ णिसेहिया ॥

अर्थ-ऐसे निश्चय हे जंबु ! महानुभाव प्रधाना चार्योंने मिथ्यात्वीयों के कुल से उत्सर्गापवाद करके प्रतिबोध के जिनमत में स्थापन करे, बत्तीस अनंत काय खानेसे हटाये. और शहत, शराब मांस वगैरह बाईस अभक्ष्य खाने का निषेध किया, शास्त्रकारोंने बाईस अभक्ष्यमें एकेन्द्रि. बेइन्द्रि तेइन्द्रि और निगोदिये जीवोंकी उत्पत्ति कही है तोभी ढूंढीये इनको भक्षण करते हैं।

(१२) ढुंढीये अपने शरीर से अथवा वस्त्र में से निकली जूओंको अपने पहने हुए वस्त्रमेंही रखते है जिनका नाश शरीरकी दाबसे प्रायःतत्काल ही होजाता है यह भी दयाका प्रत्यक्ष नमूना है ॥

(१३) ढुंढीये साधु साध्वी सदा मुंह के मुखपाटीबांधीरखते हैं उस में वारं वार बोलनेसे थूक के स्पर्शसे सन्मूर्च्छिम जीवकी उत्पत्ति होती है और निगोदिये जीवोंकी उत्पत्ति भी शास्त्रकारोंने कही है निर्विवेकी ढुंढिये इसबातको समझते हैं तोभी अपनी विपरीत रु ढ़ का त्यागनहीं करते हैं इससे वे सन्मूर्च्छिम जीवकी हिंसा करने वाले निश्चय होते है ॥

(१४) कितनेक ढुंढिये जंगल जाते हैं तब अशुचिको राख में मिला देते हैं, जिस में चूर्णिये जीवों की हिंसा करते हैं ऐसे जानने में आया है यही इनके दया धर्म की प्रशंशा के कारण मालूम होते हैं।

(१५ ढूंढिये जब गोचरी जाते हैं तब कितनीक जगह के श्रावक उनको चौकेसे दूर खड़े रखते हैं मालूम होता है कि चौके में आने से वे लोक भ्रष्ट होना मानते होंगे, * दूर खड़ा होकर रिखजी सूझते हो ? ऐसे पूछकर जो देवे सो ले लेता है इससे मालूम होता है कि ढुंढिये असूझता आहार ले आते हैं ॥

(१६) ढुंढीये शहत खा लेते हैं, परन्तु शास्त्रकार उसमें तद्वर्ण वाले सन्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति कही है।

(१७ ढुंढीये मक्खण खाते हैं उस में भी शास्त्रकार ने तद्वर्ण जीवों की उत्पति कही है।

(१८) ढुंढीये लस्सणकी चटनी भावनगर आदि शहरों में दुकान दुकान से लेते है देखो इनके दया धर्म की प्रशंसा ? इत्यादि अनेक कार्यों में ढुढीये प्रत्यक्ष हिंसा करते मालूम होते है इसवास्ते दयाधर्मी ऐसा नाम धराना बिलकुल झूठा है थोड़े ही दृष्टांतोंसे बुद्धिमान और निष्पक्षपाती न्यायवान् पुरुष समझ जावेंगे और ढूंढीयों के कुफंदे को त्याग देवेंगे ऐसे समझकर इसविषय को सम्पूर्ण करा है ॥ ॥ इति ॥

ग्रन्थकी पूर्णाहुति

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्

स्वांतं ध्वांतमयं मुखं विषमयं दृग् धूमधारामयी तेषांयैर्न नता स्तुता न भगवन्मूर्त्तिर्नवाप्रेक्षिता देवैश्चारणपुंगवैः सहृदयै रानंदितैर्वंदिता ।
येत्वेतां समुपासते कृतधिय स्तेषां पवित्रंजनुः ॥ १

---

* बेशक उन लोगों की बिलकुल नादानी मालूम होती है जो इन को अपने चौके में आने देते हैं क्योंकि-प्रथम तो इन ढूंढीयों में प्रायः जाति भातिका कुछ भी परहेज नहीं है, नाई, कुम्हार छींवे, झीवर चमार वगैरह हरेक जातिको साधु बना लेते हैं, दूसरे रात्रि में पानी न होनेसे गुदा भी नहीं धोते हैं अगर धोते भी है, तो पेशावसे ऐसे भ्रष्टाचारी होते हैं ॥

भावार्थ-सम्यग्दृष्टि देवताओंने और जंघाचारण विद्याचारणादि मुनि पुंगवान शुद्ध हृदय और आनंदकरके वंदना करी है जिसको, ऐसी श्रीजिनेश्वर भगवंतकी मूर्त्ति को जिन्होंने नमस्कार नहीं करा है,उनका स्वांत जो हृदय सो अंधकारमय है, जिन्होंने उसकी स्तुति नहीं करी है, उनका मुख विषमय है, और जिन्होंने भगवंतकी मूर्त्तिका दर्शन नहीं करा है, उनके नेत्र धूंयेंकी शिखा समान हैं; अर्थात् जिन प्रतिमा से विमुख रहने वालों के हृदय, मुख और नेत्र निरर्थक है; और जो बुद्धिमान् भगवंत की प्रतिमा की उपासना अर्थात् भक्ति पूजा प्रमुख करते हैं उनका मनुष्य जन्म पवित्र अर्थात् सफल है ॥

इस पूर्वोक्त काव्य के सार को स्वहृदय में अंकित करके और इस ग्रन्थको आद्यंत पर्यंत एकाग्रचित्त से पढ़कर ढूंढकमती अथवा जो कोई शुद्धमार्ग गवेशक भव्यप्राणी सम्यक् प्रकार से निष्पक्षपात दृष्टिसे विचार करेंगे तो उन को भ्रांतिसे रहित जैनमार्ग जो संवेग पक्ष में निर्मलपणे प्रवर्त्तमान है सो सत्य और ढूंढक वगैरह जिनाज्ञा से विपरीतमत असत्य है ऐसा निश्चय हो जावेगा और ग्रन्थ बनाने का हमारा प्रयत्न भी तबही साफल्यता को प्राप्त होगा ॥

शुद्धमार्ग गवेशक और सम्यक्त्वाभिलाषी प्राणियोंका मुख्य लक्षण यही है कि शुद्ध देव गुरु और धर्मको पिछानके उनको अंगीकार करना और धर्म अशुद्ध देव गुरु धर्मका त्याग करना, परन्तु चित्त में दंभ रखके अपना कक्का खरा मान बैठके सत्या सत्यका विचार नहीं करना, अथवा विचार करने से सत्यकी पिछान होनेसे भी अपना ग्रहण किया मार्ग असत्य मालूम होनेसे भी उस को नहीं छोड़ना और सत्यमार्ग को ग्रहण नहीं करना, यह लक्षण सम्यक्त्व प्राप्तिकी उत्कंठावाले जीवोंका नहीं है, और जो ऐसे होवे, तो हमारा यह प्रयत्न भी निष्फल गिनाजावे इस वास्ते प्रत्येक भव्य प्राणी को हठ छोड़के सत्य मार्ग के धारण करने में उद्यत होना चाहिये ॥

यह ग्रन्थ हमने फकत शुद्धबुद्धिसे सम्यक्त्वदृष्टि जीवोंके सत्या सत्य के निर्णय वास्ते रचा है हम को कोई पक्षपात नहीं है और किसी पर द्वेष बुद्धि भी नहीं है इसवास्ते समस्त भव्यजीवों को यह ग्रन्थ निष्पक्षपणे लक्ष में लेकर इस का सदुपयोग करना, जिस से बांचने वालेकी और रचना करने वालेकी धारणा साफल्यता को प्राप्त होवे ॥ तथास्तु ॥

इति न्यायांभोनिधितपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि (श्रीआत्मारामजी) विरचित. सम्यक्त्वशल्योद्धार समाप्तः ॥

"सवैय्ये"

माखन शहत पाव गसत असंख जीव,
कुगुरु कुपंथ लीव यही वानी वाची है।
विदल निगल रस गसत असंख तस,
रसना रसक रस स्वादन में राची है॥
असन की खान है संधान महा पाप खान,
जाने न अज्ञान एतो मूरी जैसे काची है!
फेर मूढ़ दया दया रटत है रात दिन,
दयाका न भेद जाने दया तोरी चाची है॥ १॥
प्रथम जिनेश बिंब मूढ़ माति करे निंद,
मनमत धार चिंद लोग करे हासी है।
गौतम सुधर्मस्वामी भद्रबाहु गुणधामी,
उमास्वाति शुद्धख्याति निंद परे फासी है॥
हरिभद्र जिनभद्र अभैदेव अर्थ कीध,
मलैगिरि हैमचंद छोर ओर भासी है।
विना गुरु पंथ काढ़ जननाथ मत फाढ़,
फेर कहे दया दया दया तोरी मासी है॥ २॥
उसन उदक नित भोगत अमित चित,
अरक सिरक तील चखत अनाइ है।
चलत अनेक रस दधि तक्र कांजीकस,
कंदमूल पूर कूर ऊतमति आइ है॥
बैंगन अनंतकाय खावत है दौर धाय,
मन में न घिन काय ऊंधीमति छाइ है।
फेर मूढ़ दया दया रटत है निशदिन,
दयाका न भेद जाने दया तोरी ताइ है॥ ३॥
लिखत सिद्धांत जैन मनमांही अति फैन,
हिरदे अंधेर ऐन मूढ़ बहुताइ है।
अतिहि किलेश कर लेही मन रोश धर,
सात पन्ने छोरकर राड़ अति छाई है॥
मिथ्यामति वानी कहे पूरव न रीत गहे।
मूढ़ माति पंथ गहे दीक्षा मन ठाइ है।
विना गुरुवेश धर जिनमत दूर कर,
फेर मूढ़ दया कहे लोंकेकी लुगाइ है॥ ४॥ इति॥

॥ श्री आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचार मंडल का चंदा ॥

जिन दाता लोगों ने दान देकर श्री आत्मानन्द जैनपुस्तकप्रचार मंडल को सुदृढ़ बनाया है उनका नाम धन्यवाद सहित प्रकट करते हैं और जो महाशय अबदान भेजेंगे उनका नाम आगामिक ग्रन्थों में प्रकाशित किया जावेगा ॥

चन्देकी फेरिस्त

१००)	शेठ हिराचन्दजी, सचेती	अजमेर
७५)	शे० गंगारामजी बनारसीदासजी	अम्बाला
७५)	शे० मेहरचन्दजी दौलतरामजी, सर्राफ	होशयारपु,
५०)	शे० जवाहरलालजी जैनी	सिकन्दराबाद यू पि
५०)	शे० दयालचन्दजी, जौहरी	आगरा
५०)	शे० रिषबदासजी कन्हैयालालजी	दिल्ली
५०)	शे० दुलेलसिंहजी टीकमचन्दजी, जौहरी	,,
२५)	शे० केशरीचन्दजी हजारीमलरी	,,
२५)	शे० सोहनलालजी वत्तनलालजी	,,
२५)	शे० हरकचन्दजी श्रीरामजी	,,
२५)	शे० मुसद्दीलालजी श्रीचन्दजी	बिनोली जि० मेरठ
२५)	शे० सुमेरचन्दजी, सुरांणां	बीकानेर
११)	शे० हरसुखदासजी तखतमलजी, डोसी	दिल्ली
११)	शे० पदमचन्दजी आशारामजी	,,
११)	शे० मोहनलालजी, गुजराती	,,
१०)	शे० इन्द्रजीतजी प्यारेलालजी, जौहरी	,,
५)	शे० सागरमलजी, सुरांणां	जोधपुर
५)	शे० पन्नालालजी जौहरीलालजी	कांधी
५)	शे० विहारीलालजी, सुखलेचा	हाथरस
४)	शे० धनराजजी ग्यानचन्दजी	दिल्ली
२)	शे० हिम्मतसिंहजी हिरालालजी जौहरी	,,
२)	शे० चम्पालालजी कन्हैयालालजी, जौहरी	,,
२)	शे० मोहनलालजी केसरीचन्दजी	,,
२)	शे० मनिलाल जी गुजराति	,,
२)	शे० वल्लभदासजी, गुजराती	,,
२)	शे० मानकलालजी दानमलजी	,,
२)	शे० खुशीलालजी, चोपड़ा	अनवरपुर

२)	शे० सरूपचन्दजी जेठमलजी	कलकता
१)	शे० लखमीचन्दजी बाफना	दिल्ली
१)	शे० अनन्दीलालजी, जौहरी	"
१)	शे० किशनचन्दजी, झुनीवाल	"

२५।) बाइयोंकी तरफ से चन्दा

५)	शेठ दलेलसिंह टीकमचन्द जौहरी की, माता	दिल्ली
५)	प्यारी बीबी	"
५)	चुनियांबाइ	"
२)	चम्पाबाइ	"
२)	पांनकुंवरीबाइ	"
१)	तीजांबाइ	जैपुर
१)	मनीबाइ	दिल्ली
१)	झवरीबाइ	"
१)	मैनांबाइ	"
१)	फूलांबाइ	"
॥)	पारवतीबाइ	"
॥)	पांचीबाइ	"
।)	कलावतीबाइ	"

६८१।) जोड़ कुल रक़मका है

कुल रूपया आजतक हमारे निकट पहुंचा है आगे को श्री संघसे प्रार्थना है कि शीघ्रता पूर्वक इस मंडल की सहायता करें, जितनी सहायता बढ़गी उतना हीं धर्म का प्रचार अधिक होगा ॥

जनेल सेक्रट्री

- शेठ हीराचन्द जी सचेती जैनी (अजमेर)
- शेठ दौलतराम जी जैनी मिवुनसपिल कमिशनर (होशीयापुर)
- शेठ दलेलसिंह जी जैनी जौहरी (दिल्ली)
- शेठ दयालचंद जी जैनी जौहरी (आगरा)
- शेठ जवाहरलाल जी जैनी (सिकंदरावाद यू. पी.)

विक्रयार्थ पुस्तकें

स्वर्गवासी जैनाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरी (आत्मारामजी) महाराज रचित वो उनके भक्तों रचित ग्रन्थों की सूची

पुस्तक		मूल्य	रचयिता	
१ जैन तत्वादर्श हिन्दी	...	५)	श्रीमद्विजयानन्द सूरी श्वर	
,, बालाव बोध	...	४)	(श्रीआत्मारामजी) रचित	
,, गुजराती	...	३)	,,	,,
२ तत्व निर्णय प्रसाद हिन्दी	...	४)	,,	,,
३ अज्ञानतिमर भास्कर हिन्दी	...	२॥)	,,	,,
४ सम्यक्त्वशल्योद्धार हिन्दी	...	॥=)	,,	,,
,, बालाव बोध	...	१।)	,,	,,
५ जैनमत वृक्ष नकशा बड़ा	...	१।)	,,	,,
,, ,, छोटा पुस्तक सहित हिन्दी		।=)	,,	,,
६ चिकागो प्रश्नोत्तर हिन्दी	...	१)	,,	,,
७ चतुर्थस्तुतिनिर्णय प्रथमभाग हिंदी		॥=)	,,	,,
,, दूसरा भाग ,,		=)	,,	,,
९ जैन प्रश्नोत्तर हिन्दी	...	॥)	,,	,,
१० आत्म विलास हिन्दी	...	।=)	,,	,,
११ जैन गायन संग्रह हिन्दी	...	≡)	,,	,,
१२ पूजा संग्रह	...	॥)	,,	,,
१३ स्नात्र पूजा	...	=)	,,	,,
१४ नवपद पूजा	...	−)॥	,,	,,
१५ सत्तर भेदी पूजा	...		,,	,,
१६ जैन धर्म का स्वरूप हिन्दी	...	=)	,,	,,
१७ ईसाई मत समीक्षा	...	॥)	,,	,,
१८ नवतत्व	...	छपता है	,,	,,
१९ स्तवनावली	...	छपेगी	,,	,,
१२० सिद्धांत सामाचारी हिन्दी	...	॥)	प्रवर्तक कांति विजयजी तथा मुनी श्री अमर विजयजी रचित	

२१ तत्वार्थसूत्र भाषांतर हिन्दी ... छपेगा मुनी अमरविजय जी रचित
२२ ढुंढक नेत्रांजन ... छपता है „ „ „
२३ धर्मना दरवाजा ने जोवनी दिश्ग ॥) „ „ „
२४ आर्य देश दर्पण ... ॥ मुनीशांतिविजयजीरचितजबआयामेंथे
२५ पूर्व देश तीर्थ स्तवनावली ... ।-) मुनी हंसविजयजी रचित
२६ हंस विनोद प्रथम भाग ... ॥) „ „ „
२७ „ दूसरा भाग ... ॥।) „ „ „
२८ प्रश्नोत्तर पुष्पमाला ... ॥।) „ „ „
२९ पंजाब देश तीर्थ स्तवनावली ॥) मुनी वल्लभविजयजी रचित
३० ढुंढक हित शिक्षा गप्प दीपिका शमीर ॥) „ „
३१ नन्यानवे प्रकारी पूजा ... ।) „ „
३२ पंच कल्याणक तथा गुरु महाराजकी अष्टप्रकारीपूजा ।) „ „
३३ चर्चा पत्र (समतरी का खुलास है) मुफत „ „
३४ भजना नन्द प्रकाश ... छपताहै „ „ „
३५ जैन भानु ... छपताहै „ „ „
३६ ढुंढक मत समीक्षा ... ॥) लाला जददयालजी रचित
३७ दयानन्द मुख चपेटी का ... ।=) „ ठाकुरदासजी रचित
३८ समकित वाला निबंध ... ।=) शेठ गुलाबचन्दजी ढढ्ढा एम, ए
३९ जम्बू नाटक ... ।) बाबू मंगलसेनजी भरतपुर रचित
४० अंजना सुन्दरी नाटक ... ॥) „ कन्हैयालालजी „ रचित
४१ प्रश्नोत्तर रत्न चिंतामणी ... ।=) शेठ अनूपचन्द मलूकचन्द रचित
४२ अढार दूषण निवारक ... ।=) „ „ „
४३ कलयुगी कुलदेवी ... मुफत शेठ जवाहरलाल सिकन्दराबादरचित
४४ भजन पचासा ... छपता „ „ „
४५ विजयानंदाभ्युदय महाकाव्य संस्कृत गुजराति भाषा सहित ३)
४६ पूज्यपाद श्री १००८ श्रीविजयानन्दसूरि जीवन चरित्र मु० अमरचंद परमार
४७ रात्री भोजन अभक्ष विचार उर्दू मुफत शेठ रिखबदास सिकन्दराबाद रचित
„ हिन्दी ... „ „ „ „ „
४८ बालोपदेश हिन्दी ...)॥ बाबू जसवंतरात जैनी
४९ वृतांत बंश औसवाल ...)। पोष्टमास्टर लेखूराम रचित
५० ढुंढक पोल उर्दू ... मुफ़त बाबू हुकमचन्दजी जैनी लुधीयाना
५१ भजन मुक्तावली ...)॥ आत्मानन्द जैन सभाएँ पंजाब
५२ नेमनाथका बारामासा उर्दू ... -) „ „ „
५३ गुलदस्ता स्तवन उर्दू ... -) „ „ „

५४ गुलदस्ता आत्मप्रकाश उर्दू ...	-)	श्रीआत्मानन्दजी जैन सभायें पंजाब
५५ श्रीमदानन्द विजय हिन्दी ...	=)	,, ,, ,,
५६ जहालते ढुंढिया उर्दू ...	)॥	,, ,, ,,
५७ गुलशन रामपुर विहार उर्दू ...	-)॥	,, ,, ,,
५८ भजन रत्नाकर उर्दू ...	-)॥	,, ,, ,,
५९ ढूंढक मत पराजय ...	मुफ्त	,, ,, ,,
६० अनुभव प्रकाश ...	,,	,, ,, ,,
६१ तीन थुईनों पन्थ शास्त्र विरुद्ध...	,,	गुजराती श्रावकों रचित
६२ सुधारस स्तवन संग्रह ...	।)	,, ,, ,,
६३ सुभाषित स्तवनावली ...	।)	,, ,, ,,

चिकागो प्रश्नोत्तर—यह एक नवीन ग्रन्थ है, इस के कर्त्ता जगत्प्रसिद्ध महामुनीराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वर (श्रीआत्मारामजी) महाराज हैं विदित होकि सं० १८९३ ई० में जब मि० वीरचंदराघवजी गांधी चिकागो (अमरीका) की धर्म समाजमें इन महात्माके प्रतिनिधि होकर गये थे,उस समय मि० गांधी के कहने से तथा चिकागोधर्मसमाजकी खास प्रेरणा से इन महात्मा ने अपने अगाध ज्ञानभंडार से तत्वपुंज रूप यह ग्रन्थ निर्मान किया था. इस में ईश्वर क्या है जैन कैसा ईश्वर मानते हैं अन्य मतावलंबी कैसा२ ईश्वर मानते हैं जगत् का कर्त्ता है वा नहीं, कर्म क्या है, कर्मके कितने भेद हैं, जीव और कर्म का क्या संबंध है, कर्म का कर्त्ता जीव आपही है वा अन्य कोइ इससे करवाता है, अपने किये का फल निमित्त द्वारा जीव भोगता है, वा अन्य कोई भुक्ताने वाला है, सर्व मतों का किस२ विषय में परस्पर ऐक्यता है.मोक्षपद से जीव पुनः संसार में नहीं आता पुनर्जन्म की सिद्धि आत्मा की सिद्धि, ईश्वर की भक्ति का फायदा. और किस रीति से करनी चाहिये मूर्ति कैसी और क्यों माननी चाहिये. मनुष्य का और ईश्वर का क्या२ संबंध सर्व मतों वाले मानते है. साधु और गृहस्थी का धर्म और सांसारिक जिन्दगी के नीतिपूर्वक लक्षण. नाना प्रकार के धर्मशास्त्रों के अवलोकन की आवश्यक्ता और उस से होते फायदे, धर्मशास्त्रावलोकनके नियम, इत्यादि अनेक तत्वपदार्थों का स्वरूप इस में भरा है. अति मनोहर कपड़े की जिल्द कर्त्ता की बड़ी फोटो सहित मूल्य केवल एक १) रुपया है ॥

जैन भानु:—कुछ समय हुआ ढूंढक मताध्यक्षणी श्रीमती पार्वती ने सत्यार्थ-चन्द्रोदयजैन" नामकी एक पोथी रची थी, जो लाहोर से छपकर प्रकट हुई थी जिसमें मूर्तिपूजनादि सनातनजैनधर्मीयकृत्यो पर अनेक कुतर्क कर कागज काले किये है, जगत्प्रसिद्ध एक महान् विद्वान ने प्रत्युतर रूप उस

का खंडन किया है, जिस को छपवा कर प्रकट करने का साहस हमने उठाया है, प्रथम भाग चार आने में और पीछे से अधिक मूल्यमें मिलेगा ॥

जैनधर्मका स्वरूप—नाम से ही प्रकट है कि इस में जैनधर्म के तत्वों का स्वरूप है मानो सागर को गागर में बंद किया है इस के कर्त्ता भी प्रसिद्ध महामुनिराज श्रीआत्मारामजी ही है इसके अधिकतर प्रचारार्थ कर्त्ता के फोटो सहित इसका मूल्य हमने केवल दो आने रखा है, सौ दोसो के खरीदार को एक आना प्रति कापी दी जावेगी ॥

नवग्रह शांति—श्री मद्भद्रबाहुस्वामीजी महाराजने यह नवग्रहशांति रचकर जैनजाति प्रति अतीव उपकार किया,परन्तु आधुनिक समय के अलबत्ता जैन संस्कृत समझ नहीं सकते अतःरोगादि के समय हमारे भाई लाचार अन्य देवोकी पूजादि करा कर निर्वाह करते हैं इस त्रुटि को दूरकरने के लिये गुरु महाराजकी सहायता से हमने इसको भाषांतर सहित छपवाया है इस में प्रत्येक ग्रह को दशामें यंत्र दान की वस्तुयें आदि सर्व विधि है ऐसे अमूल्य रत्न का मूल्यरत्न ही रखा जावे.तो उचित है परन्तु सर्व साधारणके सुलभार्थ हमने इस का मूल्य केवल डेढ आना- ॥रखा है.सामर्थ्यवान श्रावकों को ऐसा रत्न मुफत बांटना चाहिये बांटने वास्ते जो खरीदे उससे एक आना प्रति कापी लिया जावेगा ॥

निन्यानवें प्रकार की पूजा—पंडितराज श्रीमान् श्रीवीरविजयजी महाराजने विक्रम सम्वत् १८८४ में तीर्थाधिराज सिद्धक्षेत्र श्रीसिद्धाचलजी की यात्रा करके चढावारूप निन्यानवें प्रकार की पूजा रचकर श्रीगिरिराज को समर्पण की थी जिस में जो कुछ पंडितयता भरी है पंडितजन ही जानते हैं परन्तु जो राग रागनीयां देशीयां है, वह प्रातः आजकल लोग न गा सकते है और न ठीक२ समझ सकते है और खासकर पंजाब मारवाड़ आदि देशों के लोगोंको तो गुजराती भाषा का समझना अति कठिन होरहा है अतः श्रीमान महामुनिराज प्रसिद्ध श्रीआत्मारामजी महाराज के शिष्य प्रशिष्य परमविख्यात विद्वान् मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराजने आधुनिक समयके प्रचिलत तथा नाटक कंपनियों के राग रागनीयोंकी देसी. पर हिन्दुस्तानी भाषामें निन्यानवें प्रकारकी पूजा रचकर महोपकार किया है हमने इसे मोटे कागज पर स्थूलाक्षरों में छपवाया है, मूल्य केवल ।) है डाकव्यय माफ़ ॥

मिलने का पता—जसवंतराय जैनी
लाहौर (पंजाब)